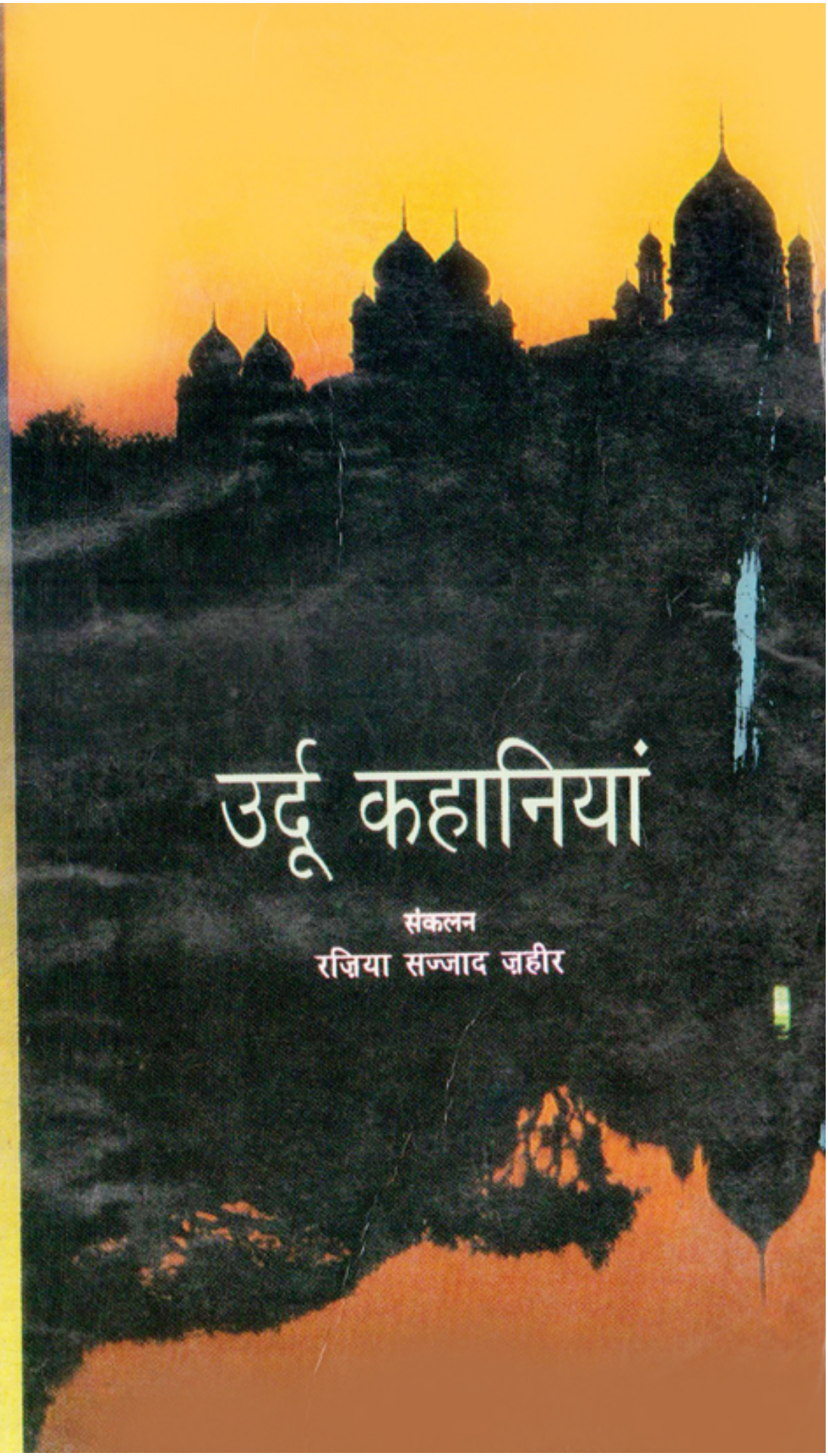

उर्दू कहानियां

संकलन

रज़िया सज्जाद ज़हीर

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

उर्दू कहानियां

संकलन
रज़िया सज्जाद ज़हीर

अनुवाद
गुलवंत फ़ारिग़

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2019-X

पहला संस्करण : 1986 (*शक 1908*)
पहली आवृत्ति : 1997 (*शक 1918*)
© नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1986

Original Title : Urdu Afsane (*Urdu*)
Translation : Urdu Kahaniyan (*Hindi*)

रु. 37.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका		*सात*
एक से आगे	अहमद यूसुफ़	1
कैंडल कालोनी	इक़बाल मतीन	5
मेरी मैया	आमना अबुल हसन	15
दर्द का साहिल कोई नहीं	अनवर अज़ीम	23
जब हम न होंगे	बशेषर प्रदीप	43
चांद और कमंद	बलवंत सिंह	50
वह	बलराज मैनरा	55
कंप्यूटर प्रेम	जुगिंदर पाल	61
मोम की मरियम	जिलानी बानो	66
लाल और पीला	ख्वाजा अहमद अब्बास	78
कब्र	राम लाल	87
हजारों साल लंबी रात	रतन सिंह	98
अल्हा दे बंदा ले	रज़िया सज्जाद ज़हीर	101
भाभी	सुहेल अज़ीमाबादी	108
मनोरंजन	सालेह आबिद हुसैन	115
खुशी के मौसम	अली बाक़र	120
पहिया	ग़यास अहमद गद्दी	124
रज्जो बाजी	काज़ी अब्दुस्सत्तार	133
कारमन	कुर्रतुल-एन हैदर	142
कैदी	क़लाम हैदरी	154
एक जख्म और सही	मोहिन्दर नाथ	159
मिट्टी	मसीह-उल-हसन रिज़वी	170
आशियां	नूर शाह	177
उतरन	वाजिदा तबस्सुम	188

भूमिका

उर्दू में प्रेमचंद से पहले कहानी का कोई नियमित रूप प्राप्त नहीं। सरशार के उपन्यासों के टुकड़े जो धारावाहिक प्रकाशित हुआ करते थे, उनमें से कुछ अपने आप में भी संपूर्ण होते थे, परंतु फिर भी उनको कहानी का रूप नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद की कहानियां 1908 ई. से सामने आती हैं जिसका अर्थ यह है कि उर्दू कहानी की उम्र लगभग अठत्तर वर्ष है।

प्रेमचंद की शुरू की जो कहानियां मिलती हैं, उनसे वह एक रोमांटिक साहित्यकार नजर आते हैं, मगर धीरे-धीरे वह प्रगतिशील होते चले गए और 'साहित्य जीवन के लिए' का रुझान उनके यहां इस प्रकार बढ़ता गया कि उनकी कहानियों का एक संकलन 'सोज़े-वतन' अंग्रेज सरकार के हुक्म से खुले आम जलाया गया और उसकी सारी प्रतियां जब्त कर ली गईं।

1908 ई. से लेकर पहला विश्व-युद्ध समाप्त होने तक, कहानी लेखकों का एक काफी बड़ा वर्ग पैदा हो गया जिसको उर्दू वाले आम तौर पर रोमांटिक कहानीकार कहते हैं। उनके यहां वर्णन और भाषा की बड़ी खूबसूरती है, मगर साधारणतया रंग ऐसा है जो काल्पनिक अधिक है और वास्तविक कम। उनमें प्रेमचंद (प्रारंभिक काल में), एम. असलम, पंडित सुदर्शन, सज्जाद हैदर यल्दरम, मजनू गोरखपुरी, ल. अहमद, हिजाब इस्माईल आदि के नाम विशेष हैं।

प्रेमचंद का नाम उन सब से बड़ा इसलिए है कि उनके यहां पहली बार उर्दू साहित्य में जनसाधारण का सही और सच्चा चित्र मिलता है। जनसाधारण से प्यार, श्रमिकों के लिए आदर-सम्मान और 'साहित्य जीवन के लिए' का विवेक उपलब्ध है। निश्चय ही कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने उर्दू गद्य को जनतिक साहित्य का विचार दिया और उसे यथार्थवादी बनाने और जीवन के निकट लाने की नींव डाली।

1932 ई. में लखनऊ में 'अंगारे' के नाम से कहानियों का एक संकलन प्रकाशित हुआ था। उसमें सज्जाद ज़हीर, डाक्टर मिस रशीद जहां, अहमद अली और महमूद-उल-ज़फ़र इत्यादि की कहानियां थीं। यह विवाद का विषय है कि साहित्यिक दृष्टि से ये कहानियां

उत्कृष्ट थीं या नहीं, परंतु इस बात पर सब एकमत हैं कि 'अंगारे' में उर्दू कहानी ने एक ऐसी जबर्दस्त छलांग लगाई कि इसमें हर प्रकार के विषयों पर निर्भीक होकर विचार प्रगट करने के दरवाजे खुल गए। बेलाग लिखने का साहस और प्रवृत्ति, विशेषकर धर्म, भ्रमात्मक विश्वास, परंपरा आदि पर इस पुस्तक ने करारी चोट की। यौन जो एक वर्जित विषय था, उस पर भी कलम उठने लगे। इस लिहाज से यह पुस्तक जिसे अश्लील मानकर जब्त किया गया था, एक ऐतिहासिक महत्व रखती है।

1936 ई. में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रेमचंद ने लखनऊ में आयोजित इसके प्रथम सम्मेलन की अध्यक्षता की। सज्जाद ज़हीर इस संघ के सचिव और इसके संस्थापकों में से एक थे। इसे टैगोर, इक़बाल, नज़रुल इस्लाम और वलाथौल की शुभकामनाएं प्राप्त थीं। इस संघ की छत्रछाया में बहुत से लेखक इकट्ठे हो गए। कृष्णचंदर, राजेंद्र सिंह बेदी, इस्मत चुग़ताई, अहमद अली, अली अब्बास हुसैनी, मुल्क राज आनंद, मंटो, अब्बास, शौकत सिद्दीक़ी, गुलाम अब्बास, अहमद नदीम क़ासमी इत्यादि। ये लोग सही अर्थों में प्रेमचंद के उत्तराधिकारी थे। इनके कारण उर्दू कहानी जीवन की प्रतिनिधि और मानव-मुक्ति की समर्थक बनी। इसमें भाषा तथा तकनीक की खूबसूरती आई। इसमें संपूर्णता आई—चूंकि ये कहानियां देश के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ चल रही थीं, इसलिए इनमें विषयों का फैलाव और चेतना का रुझान बड़ा प्रबल था—उच्च वर्ग की झूठी और जर्जर जिंदगी, जनसाधारण के कष्ट और उनके परिश्रम का शोषण और उसके बावजूद उनका निरंतर संघर्ष और आशा, भारत की प्राकृतिक सुंदरता और उस पर लगे कोढ़ के दागों की तरह गरीबी, लोगों की यौन संबंधी उलझनें, वेश्याएं और उनकी समस्याएं, स्त्री और उसकी मुश्किलें, पीढ़ियों का आपसी टकराव। इस समय में अनेकों उत्कृष्ट कहानियां लिखी गईं जैसे कि मंटो की "काली शलवार", इस्मत चुग़ताई की "गेंदा", बेदी की "ग्रहण", कृष्णचंदर की "बालकोनी" और "कालू भंगी", अहमद अली की "हमारी गली", अली अब्बास हुसैनी की "आम का फल", प्रेमचंद की "कफन", गुलाम अब्बास की "आनंदी" ...तथा ऐसी ही अनगिनत कहानियां जो कला और जीवन दोनों को अपनी पकड़ में लिए दृष्टिगोचर होती हैं।

1945 ई. के लगभग एक नयी पीढ़ी उर्दू कहानी में प्रवेश करती दिखाई पड़ती है और वह उन पुराने (जो प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही आ गए थे) साहित्यकारों के साथ-साथ ही चलने लगती है। उनमें मुमताज़ शीरीं, कर्तार सिंह दुग्गल, मोहिन्दर नाथ, इंतज़ार हुसैन, सुहेल अज़ीमाबादी, इक़बाल मतीन, रज़िया सज्जाद ज़हीर, फ़िक्र तौंसवी, हसन अस्करी, कुर्रतुल-एन हैदर, हाजिरा मसरूर, खदीजा मस्तूर, सुरेंद्र प्रकाश, देवेन्द्र इस्सर—इन लोगों की धारणाएं कमोबेश प्रगतिशील लेखकों जैसी ही थीं, परंतु इनमें से कुछेक के यहां पात्रों का व्यक्तिगत विश्लेषण और परिस्थितियों के विश्लेषण पर अप्रत्यक्ष

रूप से अधिक बल दिया जाने लगा था।

1947 ई. में स्वतंत्रता आई जो अपने साथ देश का विभाजन भी लाई...उर्दू के सभी कहानीकार इस दुखांत पर एक साथ चीख उठे। कई वर्षों तक इसका प्रभाव रहा और अत्यंत करुणामयी और प्रभावशाली कहानियां लिखी गईं। कहानीकारों तथा साहित्य की सभी विधाओं के रचनाकारों की पंक्ति में भी दरार पड़ गई, क्योंकि बहुत से लोग जो पाकिस्तान में थे, वे अब पहले जैसा संपर्क न रख सके और कुछ इधर से उधर भी चले गए।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कुछ नाम और आए जैसे कि जिलानी बानो, आमना अबुलहसन, रत्न सिंह, कलाम हैदरी, काज़ी अब्दुस्सत्तार, बलवंत सिंह, अनवर अज़ीम, आतक़शाह, अली मोहम्मद लौन, नूर शाह, अहमद यूसुफ़, बलराज मैनरा, जुहरा जमाल, शमीम नक़हत, अफ़्त मोहानी, रज़िया फ़सीह अहमद, ज़ीनत साजिदा, वाजिदा तबस्सुम और बहुत से ऐसे नये नाम जो पुरानी और नयी पीढ़ी के साथ-साथ बराबर लिख रहे हैं।

हास्य कहानी-लेखकों में पितरस बुखारी से लेकर फ़िक्र तौंसवी, मुज़त्बा हुसैन, अहमद जमाल पाशा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। मेरे विचार में इस समय हास्य-व्यंग्य लेखकों में फ़िक्र तौंसवी का दर्जा सब से ऊंचा है। उनका अनुभव और विषय-वस्तु बहुत विचित्र, दृष्टि दूर-रस और शैली तथा भाषा और व्यंग्य बेहद ताजा और तीक्ष्ण है। उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है और उद्देश्य समाज की दुखती रगों पर चोट करना है जिसे वह अत्यंत प्रवीणता के साथ अदा करते हैं।

उर्दू कहानी में सदा दो प्रकार के साहित्यकार रहे—एक वे जो साहित्य को जनतिक, सामाजिक और सामूहिक समझते हैं, दूसरे वे जो काल्पनिक, रोमांटिक, निजी और व्यक्तिगत रंग को पसंद करते हैं। कुछ साहित्यकारों का हाल ही में यह दृष्टिकोण भी बन गया है कि लेखक के किसी सामाजिक संस्था या संगठन से संबंधित होने से उसकी कला को क्षति पहुंचती है। हिन्दी में यह नारा उर्दू से अधिक है और उर्दू में उसके आने का एक कारण यह भी हो सकता है कि हिन्दी की शिक्षा अब सभी के लिए आम है। अभी इस प्रकार के व्यक्तिगत और असफलताओं को प्रतिबिंबित करने वाले साहित्य की आयु बहुत थोड़ी है। इसलिए इसके भविष्य के संबंध में तो कुछ कहा नहीं जा सकता, लेकिन इतना अवश्य है कि यह प्रवृत्ति एक स्थायी स्थिति बन सकती है, लोगों में निराशा तथा भाग्यवाद की भावना उत्पन्न कर सकती है तथा बाहरी तत्वों से अलग करके, आदमी को अपने आप ही में घुटे रहने और विष घोलते रहने पर तत्पर कर सकती है; अहसास के बाद अमल के तर्कसंगत रास्ते से हटा कर, उनको जीवन की शक्ति और हरकत की बरकत से अलग करके मृत्यु को प्रत्येक समस्या का समाधान बना कर प्रस्तुत कर सकती है। प्रत्येक सचेत व्यक्ति यह समझ सकता है कि यह प्रवृत्तियां कितनी अर्थहीन और साथ ही कितनी खतरनाक

हैं। पराजय, घुटन, रोष, पलायन, अपने आप में ही उलझे रहना, किसी भी साहित्य को अधिक आगे नहीं ले जा सकता।

हमारी त्रुटिपूर्ण अर्थव्यवस्था, शिक्षा, बेरोजगारी, सामाजिक कुरीतियां, नैतिक भ्रष्टाचार, भाषाओं की समस्याओं का समाधान न होना, विदेशी प्रभाव—ये सब उस प्रवृत्ति के जिम्मेदार हैं। मजे की बात यह है कि जिन विदेशों से जोड़ कर इन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया जाता है वहां ये प्रवृत्तियां कब की समाप्त हो चुकी हैं।

हमारे युवक-युवतियां यदि अपने महान विरसे और जीवन के अत्यंत निकट अपने सनातन साहित्य की आत्मा को समझने और उससे कुछ सीखने का प्रयास करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके अतीत का साहित्य सदा 'साहित्य जीवन के लिए और साहित्य मनुष्य के लिए' का समर्थक रहा है और कोई भी साहित्य अपने विरसे से बिलकुल अलग नहीं हो सकता।

उर्दू कहानी में तकनीक के नये-नये प्रयोग हमेशा होते रहे हैं, परंतु जिस प्रकार एक स्वस्थ बीज से पौधा और फिर एक बड़ा-घना वृक्ष बन जाता है और प्रत्येक वृक्ष की शाखाएं अपने ही अंदाज से फैलती और बढ़ती हैं, उसी प्रकार एक सजीव, स्वस्थ और सशक्त विचार अपने आप को एक स्वस्थ और कलासंपन्न साहित्यिक रूप में ढालता है ओर उसका पालन-पोषण स्वाभाविक ही होता है। तकनीक को अधिक जटिल बनाना ऐसा ही है जैसे अपनी टाई को आधुनिक से आधुनिक तरीके से बांधने की चिंता में अपनी गर्दन को जकड़ा लेना। हरेक भाषा परिवर्तित होती रहती है क्योंकि भाषा एक सजीव वस्तु होती है। परंतु मेरा विचार यह है कि अभी उर्दू कहानी में आम तौर पर भाषा और वर्णन पर उतनी मेहनत नहीं हो रही है जितनी कि होनी चाहिए। अंततोगत्वा कोई विचार कला का रूप तो उसी समय धारण करता है जब वह कोई जरिया, फार्म या माध्यम पा लेता है, चाहे वह पत्थर हो या रेखा, रंग हो या शब्द...

उर्दू कहानी के बारे में एक रोचक बात यह भी है कि गत दस-पंद्रह वर्षों में यह देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर अपार लोकप्रियता प्राप्त कर रही है।

मुशायरों की तरह 'कहानी संध्या' भी आजकल जगह-जगह होती है और प्रसन्नता की बात यह है कि उन अवसरों पर, जो कहानी-लेखक के लिए कड़ी परीक्षा सिद्ध होती हैं, हमेशा मैदान 'साहित्य जीवन के लिए' वालों के हाथ रहता है, क्योंकि जनसाधारण बहुत सीधे-सादे और साफ कहने वाले होते हैं और उनके पास परिश्रमी होने के कारण इतना समय नहीं होता जो वे जटिलताओं को टटोलते और खोलते रहें।

अंत में मुझे यह कहना है कि उर्दू कहानी पर आलोचना लिखने वाले, उर्दू कहानी से बहुत पीछे हैं। मेरे विचार में सिर्फ इहतशाम हुसैन साहिब एक ऐसे आलोचक है जिन्होंने कहानियों पर आलोचना लिखी है—जरूरत इस बात की है कि नये और नौजवान साहित्यकारों

में से ही नये आलोचक भी निकलें।

समूचे तौर पर, आज की उर्दू कहानी जीवन से ओत-प्रोत और विविध रचनाओं से बहुत समृद्ध है और निस्संदेह उर्दू कहानी उस शिखर पर पहुंच चुकी है कि एक ओर वह अपने आम पाठकों में लोकप्रिय है तो दूसरी ओर संसार की किसी भी भाषा की कहानी के बराबर रखी जा सकती है।

— रज़िया सज्जाद ज़हीर

एक से आगे

अहमद यूसुफ़

उनमें से एक दुकान के तख्ते पर बैठा है। वह अपनी उन आंखों से, जिनके ताक के रोशन चिराग न जाने कब के चुराए जा चुके हैं, नाले के जमा हुए कीचड़ में उन बुलबुलों को देख रहा है जो पानी की एक रफ्तार सी लहर से पैदा होते हैं, और जो बनते ही बिगड़ जाते हैं। उसकी चीकट दाढ़ी रस्सी जैसी दिखाई देती है। सिर पर उषा-निशा की तरह फैली हुई सूखी घास है। उसका लंबा कुरता कभी धुला होगा और ऊंची तहमद साफ भी रही होगी। पांवों में उसने चप्पल जैसी कोई चीज डाल रखी है। दियासलाई जलाते समय एक कमजोर सी सींख टूट कर उसके सीने के बालों में फंस गई है। बीड़ी पीते हुए धुआं किस ओर जा रहा है ? राख किधर जा रही है ? इस मानसिक स्थिति में तो उसे अपने बाएं हाथ तक की सुध नहीं, जिसमें एक अल्मुनियम का प्याला है और जिसने कई स्थानों से दब कर छोटी-छोटी सी काली आंखें बना ली हैं कि वह तो नाले के बनते-बिगड़ते बुलबुलों को देख रहा है, बस...उसके बराबर, जो तख्ते से लग कर खड़ा है, एक भरे हुए अनमोल जिस्म का मालिक है। कई दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी ने, उसके चेहरे पर एक गहरी सी गंदी तह डाल दी है। सिर के बाल धूल और मिट्टी की जंजीरों में जकड़े खड़े हैं। उसकी कमीज का गला बहुत दूर तक फटा दिखाई देता है और पसीने तथा मैल ने उसे कई स्थानों से जख्मी कर दिया है। नीचे एक नेकर है और पांव में एक खाकी कैनवस का जूता, जो कई जगह से आहें ऊंची कर रहा है। वह टिकटिकी बांधे उस पतंग को देख रहा है, जो छोटी सी डोर के साथ, बिजली के तार में फंसी है और जो कभी-कभी हवा की चपेट में आकर, इस तरह उड़ने लगती है जैसे वह कैद के अंधकार से आजाद हो चुकी हो।

दूसरा बिजली के खंबे से चिपका खड़ा है। उसके हाथों में अब सिर्फ अंगुलियों के निशान रह गए हैं। सिर पर भूरे-भूरे बालों की छिदी लकीरें खिंच गई हैं। चेहरे पर जले दिन की खाक बिखरी पड़ी है। नाक घुल कर दो सुराखों को छोड़ गई है और कान आधे गायब हो चुके हैं। जिस्म पर महीनों और वर्षों के आने-जाने से चूर एक बनियान और एक लंगोटी है। पांव में जगह-जगह अंगुलियों के खंडहर फैले हुए हैं। वह छोटी-छोटी आंखों

से देख रहा है। सामने, न दूर की मंजिल, न पास कोई खतरा...यूं देख रहा है कि इन आंखों से देखा ही करते हैं। और उसके निकट, एक और लाठी से टेक लगाये खड़ा है। उसके सीने ने बहुत आगे की ओर निकल कर कमान का रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार टांगें भी पीछे की ओर धनुष सी बना लेती हैं। जब वह चलना चाहता है तो सीने की कमान पीछे की ओर धकेल देती है और टांगों की कमान आगे की ओर। इस अफरा-तफरी में वह घिसटता हुआ चलता है और चलते हुए हांफने लग जाता है। इस समय वह हांफता हुआ जा रहा है, बुदबुदाता हुआ जा रहा है। उसके सिर पर सूखे बालों का जंगल सा बसा है। आंखें उबली पड़ रही हैं। उसकी कमीज की दोनों आस्तीनें काट दी गई हैं और कालर निकाल कर बड़े-बड़े लंगर दे दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त उसके शरीर पर एक नेकर भी है। पांव में रबड़ का जूता है, जिस पर शुष्क मिट्टी की परतें जमी हैं। वह जितनी तेजी से हांफ रहा है, उतनी ही तेजी से बुदबुदा भी रहा है। उसके पास ही दो और, जमीन पर उकड़ूं बैठे हैं। उनके बीच डालडा का एक छोटा सा टीन रखा है, जिसे हाथ में लटकाने के लिए ऊपर की ओर आमने-सामने दो छेद करके एक बड़ी तार में बांध दिया गया है। वे उजाड़-उजाड़ आंखों से एक-दूसरे को देख रहे हैं।

तभी उनमें से एक डिब्बे की तरफ देखता है, जिसमें दुनिया भर की चीजें भरी हैं। इन चीजों का आपस में कोई संबंध नहीं है, लेकिन इनके बीच संबंध पैदा करना तो उसका काम है। वह ढूंढ-ढूंढ कर डिब्बे में से एक बीड़ी निकालता है, जिसका निचला सिरा थोड़ा सा टूट गया है। वह उसे कई बार देखता है, और अंत में संतुष्ट होकर आग के लिए पास खड़े हुए आदमी से दबी सी जुबान में कुछ कहता है। बीड़ी सुलग जाती है और वह उसका एक लंबा कश लेता है। उसके सिर पर टोपी इस तरह रखी है कि सिर के बाल कहीं से भी दिखाई नहीं देते। उसके चेहरे पर घास-फूस सा उगा हुआ है, और आंखों में गंदे पानी के सिवा कुछ भी नहीं है। उसने एक चारखाने की कमीज पहन रखी है। लुंगी भी चारखाने की है। दो लंबे कश खींचने के बाद वह खांसने लगता है। तभी दूसरा उसकी अंगुलियों के बीच से बीड़ी निकाल लेता है और फिर कुछ बोलता है। शायद सहानुभूति के दो शब्द, 'यूं पी जाती है, बीड़ी!' पहला आदमी खांसते-खांसते रुकता है और मुंह से बहुत सारा बलगम निकाल कर वहीं पर थूक देता है, लेकिन बीड़ी पीने वाला अपनी जगह बिलकुल खैरियत से है, और उस बलगम की ओर कोई ध्यान नहीं देता है। उसका सिर छोटा और चिकना है, जिस पर सिर्फ एक चुटिया दिखाई देती है। उसके कान मुड़े-तुड़े हैं और चेहरा बिलकुल साफ। आंखें उलटे-पांव अंदर की ओर जा रही हैं, और हर क्षण सोचना पड़ता है कि इस क्रिया में वे वहीं की न हो रहें। उसके जिस्म पर सिर्फ एक बनियान और नेकर है, पांव नंगे हैं।

पहला क्रोधित नजरों से उसकी ओर देखता है। तब उसकी बेजुबानी कहती है, 'साले मौके से फायदा उठाते हो।'

वह फिर अपने डिब्बे की तलाश शुरू कर देता है, जिसमें कच्ची-पक्की रसभरियां हैं। खट्टी-मीठी चूसने वाली गोलियां हैं। संतरे की दो-एक फाड़ियां हैं। एक बासी रोटी है और इन वस्तुओं की तह में कुछ पैसे हैं। बीड़ी कहीं नहीं मिलती। इस तरह वह होठों-होठों में बड़बड़ाता है, जिसे सुना नहीं जा सकता।

'जब बीड़ी पीने बैठता हूं, यही हादसा पेश आता है।' वह दूसरे आदमी की ओर इस तरह देख रहा है, जैसे उसका वजूद किसी हादसे से कम न हो। और उन दोनों से बेखबर, एक किनारे पर बैठा है। उसके सूखे पिंजर पर इंसानी खाल पड़ी है, जो उसके जीवन का प्रमाण है। उसके चेहरे पर छोटे पके बाल दिखाई दे रहे हैं। आंखों ने असीम गहराई में शरण ली है, और यूं वह उन्हें काफी समेट कर कुछ देखता-निहारता है, उकड़ूं बैठने पर उसके घुटने उसके लटकते कानों के रोओं तक पहुंच गए हैं। घुटने चिकने हैं। यूं लगता है जैसे टांगों को गति में रखने के लिए, वह बराबर उनकी मालिश करता है। उसके शरीर पर ढीला-ढाला सा कुरता और एक लंगोटी है। कुरते के सभी बटन गायब हैं। पांवों में टायर की चप्पल है। आंखों की तरह स्वयं भी अपने आप में सिमटता जा रहा है। उसके पीछे आठ-दस साल का एक काला-कलूटा लड़का खड़ा है। उसका सिर घुटा है। जिस्म पर सिर्फ एक खाकी हाफ-पेंट है, जिसकी हिप पर एक काले कपड़े का पेबंद लगा है और वह बिलकुल बेखबर सा खड़ा अपनी ही आयु के उन लड़कों को देख रहा है, जो बगलों में किताबें और टिफन का डब्बा दबाए स्कूल जा रहे हैं—हंसते-बोलते, चीखते-चिल्लाते, सीटियां बजाते...उसकी आंखें बहुत दूर तक उनका पीछा करती हैं और तब सहसा उसे कुछ स्मरण हो आता है, और वह होठों ही होठों में अपने पाठ को दोहराता हुआ, वीरानियों में खो जाता है।

वहीं पर कमो-बेश उसी उम्र की एक लड़की भी खड़ी है जो धीरे-धीरे अपना सिर खुजला रही है और उलझे हुए बालों को और भी उलझाती जा रही है। उसने ऊंची सी एक चोली पहन रखी है, जिससे उनकी नाभि साफ नजर आ रही है। शरीर पर एक छोटी सी साड़ी है जो एक लंबे समय से चिपके रहने के कारण बोझ सी बन गई है। वह तेजी से सिर खुजलाने लगती है और कुछ इस प्रकार हैरान-परेशान अपने इर्द-गिर्द नजर दौड़ाती है, जैसे कह रही हो—'मैं यहां कब तक खड़ी रहूंगी ?'

उससे सटी हुई एक स्त्री भी हाथ में प्याला लिए खड़ी है। उसकी आयु का अनुमान लगाना अत्यंत कठिन है कि कुछ कहानियां ऐसी भी होती है जो आरंभिक पृष्ठों में ही संपूर्ण दिखाई देती हैं। उसके सिर पर आंचल है ओर चेहरे पर तेज धूप की क्रिया-प्रतिक्रिया।

फर्श की सतह उखड़ी-उखड़ी दिखाई देती है। उसने एक ऊंची सी आधी बांहों की ढीली-ढाली कमीज पहन रखी है जिससे उम्र की निशानियां बाहर नहीं आ पाती हैं। शरीर पर एक साड़ी है जो धुलते-धुलते अपनी हया खो चुकी है और उसके नीचे...।

और इस चमकते दिन में उसकी आंखें जैसे कह रही हैं, 'मैं सब कुछ देख चुकी, सब कुछ कह चुकी।'

और उनसे जरा परे, उन्हीं जैसे लोगों की कुछ और टोलियां खड़ी हैं।

कैंडल कालोनी

इक़बाल मतीन

(पात्र और स्थान सब बिलकुल फर्जी हैं। यदि आप चाहें तो सामान की सूची और लखनऊ वालों को असली समझ सकते हैं।)

उस प्यासी और बंजर धरती के समान, जिस पर मेघ उमड़-उमड़ कर छाए थे लेकिन तेज हवाओं ने उन्हें उड़ा कर कहीं और बरसने के लिए छोड़ दिया हो, कोई उन मुहब्बतों के लिए जो दूसरों से उसको नहीं मिलती हैं, तरस तो सकता है। लेकिन अब्बा की एक और असफलता थी। वह आदमी जो अपनी ही मुहब्बत निस्संकोच दूसरों पर लुटाना चाहे लेकिन लुटा न सके, ऐसी असफलता जो सन्नाटा बन कर आदमी के मन में बस जाती हैं।

मायूसी समझिए जैसे बादल उमड़-उमड़ कर उठते हों, झूम-झूम कर छाते हों लेकिन बरस ही न पाते हों, और उनके विशाल सीने में छुपा हुआ ठंडा-मीठा पानी कंकर बन कर उनके अपने सीने का बोझ बन जाता हो।

अब्बा के सीने में अपार मुहब्बत का जज्बा, इस प्रकार घुट-घुट कर एक बोझ बन गया था। अब्बा सारी कैंडल कालोनी का अब्बा था। मैं भी नये किरायेदार के नाते उसकी संतान में एक वृद्धि की हैसियत रखता था। पहले-पहल जब मुझे अब्बा से वास्ता पड़ा था, तो उसने मुझे कांच के सामान की दुकान से उठाए हुए मिट्टी के माधो की तरह बरता था। दुकान के मालिक ने अगर शीशे के सामान में मुझे भी सजा दिया था, तो उसमें मेरा क्या दोष? लेकिन खरीददार ने मुझे ही दोषी ठहराया कि मैं इस दुकान का हिस्सा नहीं था। मेरे इस जुर्म की, अब्बा ने मुझे खूब सजा दी।

मेरा जुर्म यही था कि मैं शहर के बीच में, जहां रहने की इच्छा में बड़े-बड़े खाते-पीते लोग अपनी मोटरों के टायर घिसते-फिरते थे लेकिन उन्हें रहने को इस कालोनी में मकान नहीं मिलता था, वहां मैं मोटरों के टायर नहीं, अपने जूते घिसता फिर रहा था। अब्बा ने मुझे सिर से पैरों तक देखा था। फिर पैरों से सिर तक। वह बिना किसी की साझेदारी के सारी कालोनी का मालिक था। उसके कोई संतान नहीं थी। छोटे-बड़े खूबसूरत से क्वार्टर

और उनमें सजे हुए रंग-बिरंगे सामान के बीच शीशे के बने हुए नाजुक-नाजुक लोग! ये थे—अब्बा के किरायेदार, जो मोटरों में उड़ते थे और फर्श पर जूते पहन कर चलते थे। कालोनी की इसी कांच की दुनिया में, मैं भी अपने मिट्टी के घरौंदे का सारा सामान लेकर चला आया और यह सब कुछ उसी समय हो सका जब अब्बा ने मुझे उलट-फेर कर अच्छी तरह परख लिया कि मैं कहीं से टूटा-फूटा तो नहीं हूं, मुझ में कोई कसर नहीं है। घर के लिए मेरी जरूरत निश्चय ही ऐसी है कि इस कालोनी में वह हिस्सा जो भांय-भांय करता हुआ पड़ा है और सभी ने छोड़ दिया है, मुझे दिया जा सकता है। मुझे अब्बा ने इसके बावजूद तीन चक्कर कटवाए। और जब मैंने निराश होकर, इस विषय में मिलना छोड़ दिया तो वह स्वयं मुझे शहर के पुराने बाजार में अपनी लंबी-चौड़ी कीमती सी कार में बैठा हुआ मिला। खुद उसके बुलाने पर जब मैं उसके निकट पहुंचा तो उसने कहा—"क्यों साहिब, आपको मकान नहीं चाहिए ?"

मुझे ऐसा लगा, जैसे अब्बा रास्ता चलते किसी गरीब को छेड़ रहा है, उसकी टोपी उछाल रहा है। मैं कोशिश के बावजूद यह न कह सका कि 'मौलाना, तीन दिन बिना नागा मैं आपके दर्शन-दीदार के लिए उपस्थित नहीं हुआ था!' मैं ऐसी बात कैसे कह सकता था? सो मैं कुछ भी न कह सका। बस, बांछें खिल कर रह गईं। मेरे जीवन की एक ऐसी आवश्यकता पूरी हो रही थी, जिस आवश्कयता का अनुमान अल्लाह ताला को भी नहीं था। वह जो फर्श और अर्श पर, शीशे और पत्थर में, डाल और पात पर, आग और पानी में, कांटे की नोक और फूल की पंखुड़ी में, जहां चाहे, जिस समय चाहे रह सकता है, तो उसके लिए मकान की किल्लत की समस्या कोई समस्या नहीं है। इसलिए यह समस्या तो सिर्फ गरीब लोगों के ही हिस्से में आई है जिसके संबंध में आप उसे कुछ भी नहीं कह सकते। और इसलिए मैंने अब्बा को ऐसी मुहब्बत की नजर से देखा, जिससे कृतज्ञता भी प्रगट होती थी। इसलिए कि वह मेरे जीवन की सब से बड़ी जरूरत को पूरा कर रहा था, जिसका वायदा अल्लाह मियां ने नहीं किया है कि घर कोई रिजक तो नहीं है। अब मैं कैंडल कालोनी में अंतरिक्ष-यात्री गागरिन की तरह, इस अंदाज से आया जैसे धरती और आकाश का विजेता हूं। इसलिए कि मैंने अब्बा का दिल जीत लिया था जिसने मुझे अपनी कालोनी में रहने के लिए एक फ्लैट दिया है।

कैंडल कालोनी में मुझ से कम दर्जे का कोई व्यक्ति नहीं था। दर्जे का निर्धारण मैंने मोटर और कुत्ते से किया है। लगभग हरेक के पास एक मोटर और एक या दो कुत्ते जरूर थे। ये कुत्ते दिन को कालोनी में अपने मालिकों के खिलाफ सम्मेलन करते और रात को इस मानसिक साधना से थक कर इस तरह सो रहते, जैसे जानते हों कि आपस ही में एक

का मालिक दूसरे के मालिक के घर में सेंध लगाना चाहता है और साथ ही एक-दूसरे से डरा हुआ भी है। कालोनी के विभाजन और संपत्ति के बटवारे के संबंध में ये विरोध इतने बढ़ गए थे कि एक का मालिक, दूसरे के मालिक से रात के अंधेरे में नहीं मिलता था। कुत्तों को बाहर से किसी राह-मार का खटका न था जो कभी अपनी नींद खराब करके रखवाली करने की जरूरत पड़ती। वे जानते थे कि कैंडल कालोनी में रहने वाले सारे के सारे लोग अपने मालिक ही की प्रशंसा में आते हैं। इसलिए कि ये सब के सब एक ही परिवार के सदस्य हैं। अगर उनमें कोई अन-बन हो भी जाए, तो कुत्ते इस लड़ाई-झगड़े में कोई 'भूमिका' अदा करने में नमकहरामी समझते। इसलिए उनमें भी मुहब्बत और प्यार बढ़ गया था। वे अपने सम्मेलन में अपने मालिकों के अच्छे-बुरे कामों का न केवल अवलोकन ही करते बल्कि उन्हें 'जहनों' में रिकार्ड भी कर लेते। कुत्तों के उन सारे मालिकों का, अब्बा जैसे सरगना था। इसलिए भी कि उसके पास कुत्ते भी अधिक थे और मोटरें भी अधिक थीं और उस समय तो सारी कालोनी का जैसे कि मैंने कहा था, बिना किसी की साझेदारी के, स्वामी था।

शुरू-शुरू में जब मैं कैंडल कालोनी के रहने वालों में शामिल हुआ था तो समझता था कि दूसरे सभी लोग भी मेरी भांति केवल किरायेदार हैं, लेकिन धीरे-धीरे मुझे मालूम हुआ कि ईरानी अली हुसैन जो अपनी बीवी को सात पर्दों में छुपा कर रखता है, उस बीवी को जिसके जिस्म पर सफेद चमड़ी तो है परंतु मांस नहीं है, वह अब्बा का किरायेदार है और हां, मेरे फ्लैट से बिलकुल लगी हुई वह सिंधी स्त्री भी जो अपने भारी-भरकम, दोहरे बदन के बल-बूते पर अपने पति को 'छोरा' कह कर बुलाती थी, अब्बा की किरायेदार थी। उस औरत का इकलौता छोटा सा लड़का बड़ा प्यारा था, लेकिन बेहद शरारती भी था। वह कैंडल कालोनी के सभी बच्चों से, एक के बाद एक, लड़ता-झगड़ता भी था और जब उसके विरुद्ध कालोनी के बच्चों का साझा मोर्चा कायम हो जाता, तो वह अन्य बच्चों से पिट कर, अपनी मां से जा चिपटता और सारे बच्चों की शिकायतें करता। पहलवान किस्म की सिंधी स्त्री, पहले तो उसकी पीठ पर दोहत्थड़ मारती, फिर बिफरी हुई शेरनी की तरह अपने फ्लैट से निकल कर एक-एक बच्चे से लड़ती, बच्चों की मांओं से उलझती। बात-बात पर अपने बच्चे के इकलौते होने का जिक्र कुछ इस प्रकार करती, जैसे यह उसका दुर्भाग्य नहीं, बल्कि कोई कारनामा हो जो उसने सिर्फ एक बच्चा पैदा किया और फिर अपने पति को 'छोरा' पुकारने लगती!

"तुम्हारे दो हैं, मेरा तो एक ही है। तुम्हारे तीन हैं, मेरा तो एक ही है। तुम्हारे कितने सारे हैं, मेरा तो एक ही है।"

एक इंस्पेक्टर की पत्नी ने, जो इस कालोनी में मोटर के बजाय मोटर-साइकिल पर

ही संतुष्ट थी, सिंधी औरत से एक दिन कहा, "बहिन जी, तुम्हारा एक ही है, तो दूसरा चुपके से पैदा क्यों नहीं कर लेतीं ? कालोनी भर में चीखती फिरती हो—मेरा तो एक ही है...मुझे तो एक ही है—तुम कहो, तो अपने पति से कहूं...?"

यह तो खैर गुजरी जो सिंधी स्त्री ने बात नहीं समझी, वरना 'इंस्पेक्टर' की बीवी बेचारी तो यूं भी चलती क्या थी, हवाओं में डोलती थी और वह भी इस प्रकार जैसे पतंग थाप खाती हो। सिंधी औरत के दो-चार चुम्बन भी बदले के लिए काफी थे, लेकिन सिंधी स्त्री ने या तो बात सुनी नहीं, या फिर समझी नहीं।

कैंडल कालोनी की एक प्रसिद्ध हस्ती जो सारी कालोनी के जहनों में रात के गहरे अंधेरे के साथ-साथ उभरती थी और पौ फटते ही उजालों में विलीन हो जाती थी, वह 'इंस्पेक्टर' के छोटे भाई की हस्ती थी। यह एक साधारण सा लौंडा था जो अब्बा का निकट रिश्तेदार होने के नाते सारी कालोनी का रिश्तेदार था, लेकिन बिना किसी आज्ञा के, बगैर झिझक के प्रत्येक घर में प्रवेश नहीं कर सकता था। सिंधी स्त्री, ईरानी और अली हुसैन, दूध वाले गफूर मियां और मुझसे उसका रिश्ता न था, वैसे सारी कालोनी से उसका नाता यकीनी था। यह लड़का भारत भर में घूम-फिर कर घाट-घाट का पानी पीता रहता, लेकिन रोटी के इंतजाम के लिए, हर दूसरे-तीसरे सप्ताह कैंडल कालोनी जरूर आता और अंधेरे की तरह लोगों के दिमाग पर छा जाता।

कैंडल कालोनी का प्रत्येक घर उसका पोषक था और वह इस तरह कि वह थोड़े-थोड़े अंतराल से हर घर में हाथ साफ करता रहता। चोरी के माल का लिहाज करते हुए उसकी अंधेरे की अवधि निश्चित होती। कैंडल कालोनी से कदम बाहर निकाल कर जब उसने आस-पड़ोस में अपने हाथ की सफाई का अभ्यास आरंभ किया, तो इंस्पेक्टर बेचारा सरकारी वर्दी से, सरकारी पिस्तौल निकाल कर, सरकारी जूतों समेत उसके सीने पर चढ़ बैठा और अपने कर्तव्य के पालने में, भाई होने पर भी कसर न छोड़ी। और उसे भली भांति बतला दिया कि जो कुछ करना हो, बस कैंडल कालोनी में किया करो। इसलिए कि कालोनी का प्रत्येक घर उसका अपना घर है। वहां के रहने वाले उसके अपने लोग हैं। उनकी हरेक चीज उसकी अपनी है।

भगवान जाने उस लौंडे को इस बात का पता कैसे चल गया कि मैं भी कैंडल कालोनी के मालिक को, जो सारी कालोनी का अब्बा है, 'अब्बा' कह कर पुकारने लगा हूं। बस इतना आभास होना था कि उसने मेरे घर को भी अपना घर समझा। और उन दिनों, जब मैं नौकरी के सिलसिले में, दौरे पर किसी जिले में गया हुआ था, घर के पिछले भाग के एक झरोखे से अंदर दाखिल होकर, जो कुछ भी उसे मिल सकता था उठा ले गया। इस चोरी हुए सामान की सूची इसलिए नीचे अंकित कर रहा हूं कि यदि आप यह सामान बरामद

करने के लिए तुले हुए हों तो सब का सब आप की भेंट कर दूं। मैं आपकी इतनी सहायता कर सकता हूं कि इस लौंडे का हाथ पकड़ कर, आपके हाथ में दे दूं। सामान उससे आप निकलवा लें और खुशी से उसे अपने घर में सुरक्षित रखें। और यह कार्य आप बहुत आसानी से कर सकते हैं बशर्ते कि आपका फ्लैट या घर कैंडल कालोनी में न हो और आप अब्बा के रिश्तेदार न हों, नहीं तो यह लौंडा रिश्तेदारी के सहारे हमेशा बख्श दिया गया है।

सामान की सूची इस प्रकार है—

1. एक जर्मन टेबल घड़ी, 2. एक थरमस जिसका काग नहीं है, 3. एक पानदान जर्मन सिलवर, 4. एक इतरदान, 5. एक काफी सैट, 6. एक धूप का चश्मा, 7. एक नज़र का चश्मा, 8. दो पतलूनें, 9. एक कमीज, 10. एक फाउंटेन-पैन, 11. 'कल्पना' की तीन, 'सारिका' और 'धर्मयुग' की दो-दो प्रतियां, 12. 'दास्तान गो' का कहानी अंक और 'अदने-लतीफ' का वार्षिक अंक, 13. एक उर्दू किताब 'बाप-बेटे' 14. एक अंग्रेजी पुस्तक 'यामा द पिट्ट', 15. एक फटी हुई किताब 'इंटीमेसी' का आवरण, 16. ग्यारह सिगेरट की डब्बियां, जिनमें कुछ खाली हैं, 17. सोडे की तीन शीशियां, जिनमें से एक भरी हुई है, 18. व्हिस्की का एक 'निप्प', जो मैंने मनोरंजन के तौर पर, पीने के लिए रखा है; और कुछ भी होगा जो मुझे इस समय याद नहीं है।

दूध वाले गफूर मियां के संबंध में तो मैंने आपको कुछ बताया ही नहीं। मुड़े सींगों की चिकनी-चुपड़ी, ढेर सारा दूध देने वाली भैंसें गफूर मियां का कारोबार बढ़ाने के लिए स्वयं एक विज्ञापन थीं। लोग उन भैंसों को देख कर ही, उनके दूध का अनुमान लगा लेते और उनकी नजरों में मलाई और मक्खन से भरे सपने संजोये जाते। गफूर मियां बड़ी सावधानी और बड़े तरीके से ग्राहकों के सामने ही दूध निकालते और उनकी यह कला कोई भी देख न पाता कि वह किस प्रकार अपनी कमर के गिर्द लिपटी हुई साइकिल की ट्यूब से, जिसमें पानी भरा होता, रबड़ की नली लगा कर दूध में मीठा और साफ पानी मिला देते हैं। इस इंस्पेक्टर के 'फ्लैट' के नीचे वाले हिस्से में दो बूढ़ियां बड़ी मुश्किल की हालत में रहती हैं। ये अब्बा के स्वर्गीय भाई की निशानियां हैं जिन्होंने कभी भले दिन जरूर देखे होंगे। परंतु जिस प्रकार उजाले से अंधेरा भागता है, आजकल उन बूढ़ियों से भले दिन इसी तरह भागते रहते हैं। और इस भरी-पूरी कैंडल कालोनी के संसार में, जहां मोटरों की चकाचौंध है, ये बूढ़ियां अपनी तीन-चार बत्तखों, चार-छह मुर्गियों और एक काली बकरी के पीछे सुबह से शाम तक बड़े चाव से इस प्रकार व्यस्त रहती हैं, जैसे वे जानती हों कि कैंडल कालोनी के सभी लोग अपनी बत्तखों और मुर्गियों के सहारे ही चमकती-दमकती मोटरों तक पहुंचे हैं। ये बूढ़ियां इंसानों की बस्ती में आत्माएं प्रतीत होती हैं, जो अपने अतीत को ढूंढ़ती

फिर रही हों। अब्बा ने गफूर मियां के पास एक भैंस खरीद कर छोड़ रखी है। बदले में वह प्रतिदिन तीन पाव दूध अब्बा को देता है और आध सेर दूध की अब्बा ने इन बूढ़ियों के लिए व्यवस्था करवा दी है। एक-दूसरी की आंख बचाकर, ये बूढ़ियां कभी-कभी अपने हिस्से से अधिक दूध पी जाती हैं और फिर दोनों में लड़ाई शुरू हो जाती है। दोनों ही के स्वर्गीय पति अपनी कब्रों से उठाए जाते हैं। फिर सुलाए जाते हैं, फिर उठाए जाते हैं। लेकिन दूसरे दिन दूध मिलने से पहले, दोनों आपस में घुल-मिल चुकी होती हैं। और अब्बा के दूध में से पाव भर दूध निकाल कर, उसमें उतना ही पानी मिला देती हैं।

मेरे 'फ्लैट' के बाईं ओर अब्बा का एक और रिश्तेदार मेजर रशीदुद्दीन खां रहता है। संभवतया यह अब्बा के किसी स्वर्गीय भाई की चहेती बेटी का चहेता पति होने के नाते अब्बा का भी प्यारा है। अब्बा को वैसे कालोनी का प्रत्येक व्यक्ति प्यारा है, परंतु ऐसा प्रतीत होता है जैसे कालोनी के किसी भी व्यक्ति को अब्बा के प्यार-दुलार की आवश्यकता नहीं है और जिस वस्तु की आवश्यकता उन्हें है वह अब्बा जानता है, लेकिन अब्बा असूलों का आदमी है। वह समय की प्रतीक्षा में है कि वह उन लोगों को वे सारी वस्तुएं दे दे, जिनकी कीमत उनकी दृष्टि में अब्बा के प्यार से कहीं अधिक है। मैं तो आपको मेजर रशीदुद्दीन के बारे में बता रहा था कि अब्बा बीच में आ टपका। अब्बा का व्यक्तित्व कुछ ऐसा प्रभावशाली है कि आप कैंडल कालोनी का नाम लें, तो इस कालोनी के चप्पे-चप्पे पर अब्बा छाया हुआ नजर आएगा। घर-घर में अब्बा की परछाईं दिखाई देगी। अब्बा एक प्रकार से कैंडल कालोनी का केंद्र है। अब्बा के अस्तित्व को कैंडल कालोनी से हटा लीजिए, तो समझो, यह सारी कालोनी ही अस्त-व्यस्त हो जाएगी। इस कालोनी की सीमाओं में, एक आदमी दूसरे आदमी को पहचानेगा भी नहीं। कागज, कलम और बरछे-भाले लेकर लोग कालोनी के टुकड़े-टुकड़े करके, इसका विभाजन करने के लिए कभी एक-दूसरे पर झपटेंगे, कभी अदालत का दरवाजा खटखटाएंगे। अदालत के दरवाजे की समानता से ही मैंने इस हंगामे और अस्त-व्यस्तता के वातावरण में कागज और कलम का नाम भी लिया है। नहीं तो कागज और कलम का यहां क्या काम ? मैं कहना यही चाहता था कि अब्बा का अस्तित्व न रहे, तो फिर इस अस्त-व्यस्तता, इस ईर्ष्या, इस आग और गोला-बारूद की फजा में जहां भाई भाई को देख कर मुंह फेर लेता है, जहां परिवार की बड़ी-बूढ़ियां खंडहरों से आई हुई आत्माओं की भांति अपने अतीत को तलाश करती फिरती है, वहां मनुष्य मनुष्य को कैसे पहचान सकता है ? और मेरे कान में, आने वाले वक्त के वे धमाके सुनाई दे रहे हैं, जब कैंडल कालोनी ज्यों की त्यों धरी की धरी रह जाएगी लेकिन इससे तपिश छिन जाएगी, तपिश जो जिंदगी का दूसरा नाम है। इसमें पार्क होने वाली मोटरें अपनी रोशनी जला-जला कर एक-दूसरी को घूरेंगी परंतु पहचान नहीं पाएंगी। कालोनी

के कुत्ते एक स्थान पर इकट्ठे होकर 'कांफ्रेंस' करेंगे और जब उनको मौत के सन्नाटे सारी कालोनी में रेंगते नजर आएंगे तो वे उन्हीं सन्नाटों से 'भौं-भौं' करके जीवन की भिक्षा मांगेगे।

अभी मेरी कैंडल कालोनी के वासियों को यह तो पता नहीं है कि एक 'मुहब्बत' की मौत एक 'अर्थव्यवस्था' की मौत होती है और इस मृत्यु और जीवन के बीच, अब्बा का अस्तित्व एक पारस्परिक संपर्क-सूत्र बना हुआ है। बिलकुल उसी प्रकार जैसे सारी कालोनी के रहने वाले किसी बाहरी खाई के अटूट अंधेरे में कालोनी समेत डूब जाने के लिए अपना सारा बल प्रयोग कर रहे हों—केवल इस कल्पना में कि इस घाटी की तह में हीरे-जवाहरातों की ढेरियां छुपी हुई हैं और अब्बा बेचारा अकेला, बिलकुल अकेला सारी कैंडल कालोनी को एक मजबूत रस्सी से बांधे, खाई के किनारे खड़ा हुआ कालोनी को ऊपर उठाने के लिए अंतिम बार, अपना सारा जोर, अपनी सारी शक्ति लगा रहा है, लेकिन रस्सी टूट जाने का डर है। मुझे एक डर और भी है—रस्सी टूटने से पहले अब्बा की सांस टूट जाए तो? इसलिए कि वह अकेला किनारे पर खड़ा हांफ रहा है और उसके हाथ-पांव शिथिल हो गए हैं।

मैं फिर कहां से कहां आ पहुंचा हूं ? मैं तो आप से मेजर रशीदुद्दीन खां की बात करने लगा था। मेजर रशीदुद्दीन खां कालोनी भर में सब में प्रिय है। मेजर एक विचित्र व्यक्तित्व का स्वामी है। आप उससे सिवा रौब के किसी भी साधारण विषय पर बात कर सकते हैं। वह आजकल विभिन्न प्रकार का व्यापार करता है। आदमी तेज है। समय के उतार-चढ़ाव की उसे समझ है। कालोनी की संपत्ति पर अपनी संपन्नता की नींव नहीं रखता।

'पुलिस कार्यवाही' के बाद, उसको हैदराबाद सेना से अलग कर दिया गया था। लेकिन आज सैनिक अधिकारी की कोई निशानी उसके पास नहीं है। उसके मिलने वालों का घेरा इतना विशाल है कि कम ही ऐसे व्यक्ति मैंने देखे हैं। भांति-भांति के लोग उससे मिलने के लिए आते हैं। मिलने-जुलने वालों को देख कर किसी की अपनी विलक्षणता और व्यक्तित्व के बारे में कोई मत कायम नहीं किया जा सकता है, लेकिन मेजर रशीदुद्दीन खां का मामला दूसरा है। इसलिए कि उसके पास मित्र और जरूरतमंद लोग, एक ही तरह से आते हैं। ताली बजती है और मेजर खिड़की से सिर बाहर निकाल लेता है। एक बार एक रिक्शे में जल-बिन-मछली की भांति तड़पती हुई एक औरत, मेजर के पास लाई गई तो मैं हैरान हो गया। लेकिन कुछ ही देर बाद मैंने देखा कि मेजर छुरी हाथ में लिए सूरज की ओर मुंह करके, आंखें बंद करके, झूम-झूम कर कुछ पढ़ रहा है और छुरी पर फूंक मार कर बेहद सावधानी से औरत के नंगे पेट पर सलीब के निशान बना रहा है जो बन नहीं रहे

हैं, इसलिए कि औरत का पेट कोई कागज नहीं है और मेजर की छुरी भी कोई कलम नहीं। लेकिन वह ज्यों-ज्यों ऐसा करता जा रहा है, स्त्री की तड़प शांति में बदलती जा रही है।

मेजर रशीदुद्दीन खां ने दूसरे विश्व-युद्ध में सिंगापुर में जापानियों द्वारा गिरफ्तार होकर जो जीवन गुजारा है, उसकी दास्तान जितनी लंबी है, उतनी ही दर्द-भरी भी है। इस समय इतनी बात दिमाग में रखिए कि मेजर रशीदुद्दीन, जिसके चेहरे को दूसरे विश्व-युद्ध ने विकृत कर रखा है, मौत से इस प्रकार आंखें मिलाता रहा है कि मौत हमेशा उसके सामने शर्मिंदा-शर्मिंदा सी रही है।

कैंडल कालोनी की विशेषताओं को आपके सामने रखना मेरे लिए बड़ी कठिन समस्या है। इस कालोनी में मुझे कदम-कदम पर प्यार मिलता है। छोटों से, बड़ों से, अपनी उम्र के लोगों से, लेकिन इसके बावजूद इस प्यार को प्यार कहते हुए मैं डरता हूं और मुझे मालूम है कि कालोनी में सारे प्यार की आयु भी, दीदार के एक क्षण से भी कम होती है जबकि दीदार का एक क्षण इसी संसार में सारी उम्र का प्यार हो सकता है, परंतु मैं इस संक्षिप्त से संक्षिप्त प्यार को लंबा करने का गुर जानता हूं। मुझे पता है कि यदि इस प्यार में कोई चीज रुकावट है तो वह कैंडल कालोनी है। अपनी पारस्परिक संपत्ति के रूप में यह कालोनी यहां बनने वाले परिवार के सदस्यों के दिलों में, ऐसे 'इंजेक्शन' लगा रही है जिनसे प्यार के नशे उतर रहे हैं। आदमी के अंदर छिपे हुए ऐसे जज्बे जागृत हो रहे हैं, जो प्यार की उम्र को कम करते हैं और धीरे-धीरे बड़े सलीके से उसकी हत्या कर देते हैं।

अब्बा का एक छोटा भाई है जिसे कालोनी के ज्यादातर लोग 'चाचा' कह कर पुकारते हैं। अब्बा के, और उस चाचा के बीच कैंडल कालोनी सबसे बड़ी रुकावट है। अब्बा जिस दिशा में देखता है, चाचा उस दिशा में देख ही नहीं सकता। इसलिए कि उस केंद्र पर, जिसे दोनों एक साथ देख रहे हैं, दोनों की नजरें जो मिलती हैं। लेकिन चाचा की पत्नी जिसे कालोनी के सारे लोग चाची कह कर नहीं पुकारते, बड़ी ही समझदार और सुशील स्त्री है। अब्बा और चाचा के आपसी विरोधों के बावजूद, वह बुजुर्ग होने के नाते अब्बा का बहुत आदर करती है।

मुझे इस कालोनी में ऐसा महसूस होता है कि लोग एक सुंदर से सपने में, हर चीज को सजा कर अब्बा के सामने प्रस्तुत करते हैं, ताकि इस सजावट के नीचे अब्बा की दृष्टि न जा सके। चाचा की पत्नी जिसे सब चाची नहीं कहते, कुछ इस प्रकार की भूमिका, दूसरों से अधिक ही अदा करती है।

चाची की बेटी की सुंदरता कालोनी के बाहर भी दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। इस

प्रसिद्धि में सच पूछिए तो चाची की बेटी के हुस्न का हिस्सा कम है और व्यक्तित्व का अधिक है।

कुछ व्यक्तित्व ऐसे आकर्षक होते हैं कि उन्हें देखते रहना बड़ा अच्छा लगता है। गौर कीजिए तो, उनमें वह आकर्षण उनकी असाधारण सुंदरता के कारण नहीं होता जबकि वे इतनी सुदंर हैं ही नहीं। चाची की इस बेटी की सुंदरता, उसकी समझदारी और रख-रखाव के कारण निखरती है। वे नजरें जो दुनिया भर को देख लेने का यत्न करती हों लेकिन अपनी निगाह को ग़ालिब के कथनानुसार निगाह बनने नहीं देतीं, कालोनी की यह दिल-चोर सुंदरी, कालोनी के अब्बा और कालोनी के चाचा अथवा उसके अपने अब्बा और उसके अपने चाचा की फूट को भी गलत-अंदाज निगाह से देखा करती है जैसे रास्ते में पड़े दीदार के अभिलाषी को।

अब्बा के वे दिन सुनहरी दिन थे, जिन दिनों अब्बा की चहेती बीवी जीवित थी। अब्बा को उसमें संसार भर की मुहब्बत मिल गई थी। इस असाधारण शक्ल-सूरत ने निस्संदेह कालोनी भर के दिलों पर राज किया था। अब्बा तो, जाहिर है कि ऐसे में संसार-विजेता था, जिसने उस औरत का दिल जीत लिया था जिसके अधीन उसके प्रत्येक छोटे-बड़े मिलने वाले का दिल था। परंतु जब उसी स्त्री ने जीवन ही से नाता तोड़ लिया, तो उसके अपार प्रेम-प्यार ने अब्बा के उजड़े दिल में एक शून्य पैदा कर दिया और अब अब्बा हर झूठी मुहब्बत के पीछे, आंखें मूंद कर पागलों की तरह दौड़ता नजर आता है और वह सारे प्यार जो कैंडल कालोनी की सोना उगलने वाली संपत्ति के सहारे आज तक ज्यों के त्यों जीवित थे, बीमार होकर अंतिम सांस ले रहे हैं, तो अब्बा बौखला गया है। वह कालोनी के सन्नाटों में पायल की छन-छनन सुनना चाहता है। वह वीरानियों में जिंदगी की चहल-पहल को तलाश करता है। वह कैंडल कालोनी में एक ऐसा दीपक जलाये बैठा है जिसकी जोत कालोनी के हर रहने वाले को दूसरे के दिल का रास्ता दिखा सके। लेकिन लोग इस जोत के सहारे एक-दूसरे के दिल में दाखिल होने के बजाय, एक-दूसरे के दिल से निकल कर, कालोनी ही में जमा हो रहे हैं।

जब कभी अब्बा यह देख लेता है कि उसने जो दीपक जला रखा है, उसकी लौ इतने सारे कालोनी के रहने वालों से कांप उठती है, तो वह इन सभी को साथ लेकर कैंडल कालोनी से ही भाग खड़ा होता है। सैर-सपाटे और मनोरंजन के लिए, नये-नये आकर्षक स्थानों पर उन सबको ले जाता है, निस्संकोच खर्च करता है। हंसी-खुशी, मुस्कुराहटें, कहकहे, उमंगें-तरंगें, शोर-गुल, खेल-तमाशे। कालोनी का छोटा-बड़ा प्रत्येक व्यक्ति, जब उसके चारों ओर खुश और संतुष्ट होता है, तो अब्बा का चेहरा देखने योग्य होता है। वह सिर से पांव तक एक दीपक बन जाता है, जिसकी बत्ती तेल की अंतिम बूंद तक जलना चाहती हो

ओर जो अपनी इस पल भर की रोशन जिंदगी से संतुष्ट हो, जिसके चारों ओर परवाने नृत्य कर रहे हों।

अब्बा के बाद कैंडल कालोनी का जो कुछ होगा, वह तो मेरी दृष्टि में है, परंतु अब्बा के बाद उस अब्बा का क्या होगा, जो कभी नहीं मरेगा ?

एक दिन मेरा बदन सख्त बुखार से जल रहा था। उन दिनों बड़े जोरों की गर्मी पड़ रही थी। अब्बा मेरी बीमार-पुरसी को आया। अपने एयर-कंडीशन वाले कमरे से निकल कर, मेरे फ्लैट तक आते-आते उसका चेहरा तपिश से दमक उठा था। उसने कुशल-मंगल पूछी और मेरे पास बैठ गया तो मैंने पंखा उसके हाथों में थमा दिया ताकि यह जोरों की गर्मी को नहीं, गर्मी के अहसास को दूर सके।

कहने लगा, "फ्लैट तो भट्ठे की भांति तपता है। इस वातावरण में तुम भला क्या स्वस्थ हो सकोगे ?"

मैंने मजाक के तौर पर कह दिया, "आप ही का तो फ्लैट है, एक बिजली का पंखा यहां भी लगवा दीजिए ना—सारी कालोनी में एक मेरा ही फ्लैट पंखे के बगैर है।"

संध्या-समय उस की मोटर फ्लैट के सामने रुकी, तो वह स्वयं टेबल फैन उठाए सीढ़ियां चढ़ रहा था और कुछ ऐसी परेशान नजरों से चारों तरफ देख रहा था, जैसे पंखा मेरे फ्लैट पर नहीं, माल सीमा-पार पहुंचा रहा हो।

लौटने लगा तो बड़ी लज्जा के साथ मुझसे कहने लगा, "किसी को बताना मत कि यह पंखा मैंने तुम्हें दिलाया है।"

"क्यों नहीं बताऊंगा—यह तो अपकी कृपा है।" मैंने अनुरोध किया।

"मेरे लोग बुरा मानते हैं।" वह मुस्कुराया।

"पंखे पर व्यय की हुई राशि सुरक्षित रखी जाती, तो मेरे पीछे बंटवारे में उन्हीं के काम आती। समझे कुछ!"

मेरी मैया

आमना अबुल हसन

धूल के एक बवंडर के साथ ही विनायक ने मैदान में प्रवेश किया तो केरी कतरती हुई रेशमी बड़े धैर्य से बोली, "कमाई...?"

विनायक ने उत्तर देने के बजाय, ठेला एक ओर खड़ा किया। तराजू और पैसों का संदूक अंदर कोठरी में ले गया। बाहर आकर तहमद झटका। फिर धरती पर बिछे हुए गंदे बोरिये पर टांगें फैला कर लेट गया। रेशमी ने अपना प्रश्न फिर दोहराया—"आज की कमाई...?"

रेशमी यह प्रश्न नियमित रूप से पूछा करती थी। इस प्रश्न से थक कर उसका बड़ा लड़का, बाबू उससे अलग हो चुका था और अब विनायक था, जो रास्ते की धूल की तरह, इस प्रश्न का बोझ चुपचाप सहन कर रहा था। मगर जब इस प्रश्न की गूंज कम न हुई तो वह झुंझला कर बोला, "चुप रह! बड़े भाई को भगा कर चैन नहीं मिला ?" लेकिन रेशमी इस धमकी से खामोश नहीं हुई।

"बाप की कमाई नहीं रखी हुई है, हां।" उसने अपने गठीले और मजबूत जिस्म को, जो अब बड़ी उम्र के कारण थोड़ा लटक गया था, तेज हरकत दी। विनायक ने एक बार उसे घूर कर देखा। फिर तहमद की गांठ से, आठ आने निकाल कर उसकी फैली हुई हथेली पर रख दिए।

"मैं तो पूरा रुपया लूंगी।"

रेशमी अड़ गई और विनायक ने उसके तेवर देख कर पूरा एक रुपया उसकी ओर उछाला, "ले, मुंह काला कर।" फिर वह बोरिये पर लेट गया, जैसे बेहद थक गया हो। दिन भर गली-गली घूमने के बाद, उसका अंग-अंग थक जाता था। कुछ देर यूं ही लेटे रहने के बाद, उसने एकाएक बगल में बैठे हुए काले बाबू से कहा, "चल यार, आज जरा सिनेमा देखें।"

काले बाबू ने बीड़ी का धुआं, खोखले सीने से उगलते हुए कहा, "नहीं, मौसी गाली देगी।"

"चूल्हे में जाए मौसी—डरता क्यों है?"

"तू उसे बहुत मारता है, यार!" काले बाबू ने सहसा शिकायत की।

"न मारूं, तो वह नागिन मेरी हड्डियां तक डस लेगी।"

"लेकिन उसके बुढ़ापे का तो ख्याल किया कर।"

"बूढ़ी हो गई, मगर पैसे का लालच कम नहीं हुआ। आखिर, कहां तक भरता जाऊं? पैसा ही तो इंसान की कमजोरी है।"

विनायक सच कहता है। काले बाबू को अपना बाप याद आ गया। छोटे-बड़े बेशुमार रोगी बच्चों को पैदा करने के बाद, उसके बाप ने हालात से मजबूर होकर चोरी शुरू कर दी थी। काले बाबू ने कितनी बार समझाया, 'तू चिंता मत कर। मैं सब को पालूंगा।' परंतु उसके पिता ने चोरी न छोड़ी। अब सलाखों के पीछे बंद, दुनिया को हसरत-भरी नजर से देखा करता था और यह नजर कभी काले बाबू के मन से नहीं जाती थी।

उधर रेशमी अपने मर्द का रोना रो रही थी। कुछ देर तक विनायक बड़े धैर्य से सुनता रहा, फिर गरज कर बोला, "बाप का नाम मत ले, वरना...!"

"बराबर लूंगी...सौ बार लूंगी। भगौड़ा, भगौड़ा भगौड़ा...।"

"तूने ही उसे भगाया है और अब उलटा बखान करती है।"

बोरिये से उठ कर विनायक ने मां के बाल पकड़ लिए। फिर पैरों के चक्करों के साथ-साथ धूल के बड़े-बड़े छल्ले मैदान में फैलने लगे और राह चलते हुए लोग तमाशा देखने आ जमा हुए।

"अरे, अरे बूढ़ी को मारता है!"

"कैसा बेटा है तू, मां पर हाथ उठाता है ?"

"क्या जमाना आ गया है, यारो!"

"बड़ी जंगली कौम है! शहर आ कर भी सुधर नहीं सकी।"

मगर इर्द-गिर्द की इन सारी बातों से बेपरवाह, विनायक मां को धड़ा-धड़ पीटता रहा।

"अगर अब की तूने मेरे बाप को भगौड़ा कहा, तो याद रख ले, हां...।"

और रेशमी पिटते-पिटते भी विनायक की जेब टटोलती रही।

"बता, कितना लाया है आज ?"

काले बाबू ने उठ कर पहले तो तमाशबीनों को भगाया। फिर मां का कजिया चुकाने लगा।

"मत लड़ो, मौसी! क्यों तमाशा बनती हो ?"

"मैं अपने मर्द को गालियां दे रही हूं। इसका क्या बिगड़ता है ?" वह ढिठाई से बोली।

"तेरा मर्द मेरा बाप है।" विनायक फिर रेशमी की ओर झपटा। लेकिन रेशमी इस

बार आगे बढ़ गई। विनायक की जेबें बिलकुल खाली थीं। उसने अच्छी तरह टटोल कर देख लिया था। तब बदन के एक-एक जोड़ को सहलाते हुए उसने कतरी हुई केरी की इखरी-बिखरी ढेरी टोकरी में जमा की। फिर टोकरी अंदर रख आने के बाद दुख भरे लहजे में बोली, "निकाल पैसे, दारू पियूंगी।"

विनायक ने गुस्से से उसकी ओर देखा और काले बाबू से बोला, "चल यार, नहीं तो यह जीने न देगी।"

वैजयंतीमाला की पिक्चर देख कर जब वे वापस लौटे, तो कोठरी के सामने रेशमी शेरनी की तरह चौकस बैठी हुई थी।

"हरामी, फिर से सीनमा गया था ना ?"

"हां, गया था।"

इस बार रेशमी ने कस कर एक झापड़ विनायक के मुंह पर मारा। "मुझे पैसे नहीं देता। सीनमा में क्या तेरा साला बैठा हुआ है! आखिर, तेरी शादी के लिए कपड़े-लत्ते किस तरह बनाऊं ?"

शादी की बात सुन कर विनायक का गुस्सा ठंडा पड़ गया था। वह रेशमी का हाथ मरोड़ते हुए बोला, "अच्छा, अच्छा अब हुल्लड़ न मचा, सोने दे।"

"मैं कहती हूं, हिसाब बता।"

"ले!" विनायक ने अपनी जेब उलट दी। तहमद की गांठ खोल कर दिखा दी।

"सब पैसे खतम हो गए और आज की बचत में कुछ नहीं पड़ा, मेरी मैया!"

रेशमी खाली डिब्बे की तरह जमीन पर लुढ़क गई और चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी।

"मैं इस छोकरे को कैसे समझाऊं!"

"भगवान के लिए, मौसी, चुप रह।" काले बाबू ने बीड़ी पांव तले मसल डाली। "वह दारू तक तो पीता नहीं, चुप हो जा। दिर भर मेहनत करने वालों की नींद खराब न कर।"

लेकिन रेशमी बराबर चिल्लाती रही—"उठने दे, सब लोगों को। मैं उनसे कहूंगी, मेरा बेटा गुंडा, बदमाश, लफंगा हो गया है। कमाई करके सब उड़ा देता है। मेरे हाथ में एक पैसा भी लाकर नहीं देता। मेरी मैया, बिलकुल बाप के कदम पर कदम रख रहा है।" वह चिल्लाती रही। मगर विनायक उसकी चीखों और काले बाबू की खुशामदों से बेपरवाह बोरिये पर गिर गया और सबसे बेखबर ऊंचे-ऊंचे खर्राटे लेने लगा—खूब शोर मचाने के पश्चात, रेशमी ने शरीर के दुखते हुए हिस्सों पर हल्दी और चूने का लेप किया। फिर खुद भी बोरिये पर, विनायक के बाजू में पड़ गई। सुबह जब चिड़ियों ने चहचहाना शुरू किया तो वह सबसे पहले उठी। नगरपालिका के नल पर कुल्ला करके पान कल्ले में दबाया।

अंधेरे से उसकी आंखें खूब हिलमिल गई थीं। इसीलिए बिना किसी कठिनाई के सूखी झाड़ियों में से पके-पके आम टटोल कर निकाले। सड़े-गले आम छांटे, ठेले पर रंगीन कागज बिछा कर, सुनहरी आमों की छोटी-छोटी ढेरियां लगाईं। फिर तराजू और पैसों का संदूक ठेले पर, एक कोने में रखा। इतना करके, उसने दीवार पर उपले चुने, चूल्हा जलाया, जवार की मोटी-मोटी रोटियां गढ़ीं। लहसुन और हरी मिर्चों की चटनी कूटी। तब विनायक के पास आई।

"ओ हत्यारे, उठता क्यों नहीं ?"

हत्यारे ने उठने के बजाय एक जोरदार जुम्हाई ली और फिर करवट बदल कर सो गया। रेशमी ने उसकी कमर पर दो-तीन घूंसे जड़ दिए।

"उठ, सुबह हो गई।"

विनायक ने आंखें खोलीं तो सुबह मुस्कुरा रही थी। उस मुस्कुराहट की ताजगी ने उसके अंग-अंग में फुर्ती भर दी। उसने जल्दी से उठ कर नल पर कुल्ला किया। जवार की रोटी चटनी और प्याज के साथ खाने के बाद ठेला ढकेलता हुआ आगे बढ़ गया।

रेशमी ने चुपचाप शांति के साथ, उसे रास्ते की धूल में गुम होते हुए देखा। फिर कच्चे आमों की ढेरी समेट कर, उन्हें काटने बैठ गई। ढेरों कच्चा आम, सूखा हुआ उसकी कोठरी में सुरक्षित था। जब आमों का मौसम खतम हो जाता, तो वह खटाई बेच-बेच कर अपना गुजारा करती। जब यह खटाई भी खतम हो जाती, तो लाल मिर्च उसका स्थान ले लेती थी या फिर भाव न बनने की हालत में जंगल तो था ही। वहां से तीतर, बटेर, खरगोश पकड़ कर शहर में बेचती।

उसका सारा जीवन मेहनत पर निर्भर था। बेटे की जरा सी सुस्ती सहन न कर पाती। अपने जवान हट्टे-कट्टे बेटे के साथ सूखा-मारे बाबू को देख कर वह बुरी तरह तरस खाती।

"अरे, तू भी अब घर कर ले। कब तक अकेला रहेगा ?" वह उसकी जान खाती।

"नहीं, मौसी!" काले बाबू को सलाखों के पीछे बंद बाप और भटकते हुए बहन-भाई याद आ जाते। वह बहुत दुखी दिल से, मगर मजबूत लहजे में कहता, "तू मेरी चिंता न कर।"

"क्यों न करूं, तेरी चिंता ? मेरे लिए जैसा विनायक, वैसा तू।"

और वह बड़े चाव से गिनने लगती—"चांदी की जंजीर, दो जोड़ी हाथ के कड़े, दो जोड़ी हाथ की गंटियां, दो जोड़ी पैर के छल्ले, दो जोड़ी.... ।" लेकिन काले बाबू इस गिनती का सारा मजा किरकिरा कर देता—"मुझे नहीं करना है घर।" तब रेशमी व्यंग्य पर उतर आती, "कब तक अपना पेट देखेगा ? बहू नहीं लाएगा, मां की सेवा के लिए ?" काले बाबू चिंता में डूब जाता।

"तेरी मां तो डायन है। कोई लड़की उसे पसंद नहीं आएगी। थू...!" वह जमीन पर थूक देती।

"मां को ऐसा मत बोल, मौसी!" काले बाबू की आंखें भर आईं।

"डायन होती, तो बच्चों की मुंडियां मरोड़ कर दूसरों के साथ भाग न जाती। मेहनत-मजदूरी करके, कष्ट झेल कर, बच्चों को क्यों पालती ?" उसे एकाएक घर की याद आ जाती और छह कोस का फासला कदमों-तले फूलों की भांति सरक जाता। फिर जब गंदे, लड़ाकू बहन-भाइयों और कोल्हू में जुती हुई मां से दिल भर जाता, तो काले बाबू सिर में खुशबूदार तेल डालने, सिनेमा देखने, ठाठ से बीड़ियां उड़ाने फिर शहर लौट आता। कभी-कभी वह जेल की ओर भी निकल जाता। तब बड़े फाटक और उसके करीब बैठे हुए दरबान को देख कर उसका जी चाहता कि कुल्हाड़ा या केरी काटने वाले तेज चाकू से दरबान का सिर भी आलू-मूली की तरह छील कर रख दे और अपने बाप को मुक्त कराके ले आए। लेकिन झटपट ही सलाखें आगे बढ़ती हुई नजर आतीं और दूर छह कोस परे से, उसकी मां हल्की सी आवाज में चिल्लाती, 'पहले मुझे मार डाल, पहले मुझे मार डाल, फिर यह करना।' और काले बाबू चुपचाप लौट आता। विनायक के बाजू में लेट कर सस्ते तेल की बू नथनों में ऐसे खींचता जैसे उसके बाजू में विनायक नहीं, सिनेमा की कोई हीरोइन आ लेटी हो। यह समय कितना सुहावना और कीमती होता! "निकाल बीड़ी।" वह जैसे रोब भरे लहजे में कहता और विनायक हैरान होकर सोचता, 'इसके लहजे में इतना रोब कहां से आ गया ? कहीं जमाने ने इसके कान में कोई हिम्मत की बात तो नहीं कह दी!' तब उसे विश्वास हो जाता कि सूखे सीने वाला मरियल काले बाबू अभी मर नहीं सकता, कभी मर नहीं सकता। अपने और उसके लिए बीड़ी जला कर, वह बड़े धैर्य की बातें करने लगता। उनका दिलचस्प विषय सिनेमा होता—हीरो, हीरोइन, विलेन। बड़े-बड़े चिंतकों और विद्वानों की तरह दोनों प्रत्येक सिनेमा पर अपनी-अपनी राय दिया करते। फिर वास्तविक जीवन से उनकी तुलना करते। अपने-अपने मत का बहुत महत्व मानते। फिर जब बोलते-बोलते थक जाते, तो गर्म-गर्म रोटियों की महक सूंघ कर सिर से पैरों तक कंबल तान लेते।

रेशमी दारू के नशे में बड़ी-बड़ी आवाजें निकालती या बीते की याद में लंबी-लंबी तानें उड़ाती, "संग ले जा गबरू, संभाल आबरू, संग ले जा...।"

कंबल के अंदर विनायक और काले बाबू, कभी-कभी हंसते। स्त्री का कुछ हिस्सा हर उम्र में जवान रहता है, जैसे उस समय रेशमी का जेहन। और बेसुरी तान की गूंज में छम-छम करती नींद उनकी आंखों में उतर आई। जब रेशमी गा-गा कर थक जाती और उसे यकीन हो जाता कि दोनों सो गए हैं, तो वह चुपके से उठती। दबे-दबे कदम उठाती,

कोठरी में जाती, फटे-पुराने कपड़ों के गूदड़, मैली-मैली, गंदी-गंदी गांठें खोलती। फिर धीरे-धीरे कोठरी के कच्चे फर्श पर कोयले से रेखाएं खींचती। टिमटिमाते हुए दीपक की धुंधली सी रोशनी में, उसके ऊबड़-खाबड़ दांत बिजली के कौंधे की तरह लपक उठते। इस साल जरूर नफा होगा। जरूर गहने तैयार होंगे। घर में बहू आ जाएगी और बहू की कल्पना के साथ ही, केरियों की ढेरी बगैर हाथ लगाए कटी हुई खटाई में परिवर्तित हो जाती। पके-पके आम अपने आप ही टोकरियों में जा बैठते। फिर टोकरियों खुद-ब-खुद ठेले पर चढ़ जातीं। सड़े हुए आम अपने आप ही घूरे पर जा पड़ते। धूप में सूखती हुई लाल मिर्चें ओखली में जा गिरतीं। चूड़ियां बजतीं, पसीने की बूंदें टपकतीं और फिर मिट्टी में रिसने के बजाए चांदी बन कर उसकी फटी-पुरानी थैली में जमा हो जातीं।

इतना सारा पैसा उसे हाथ हिलाए बगैर मिल जाएगा, इस विचार के साथ बहू पर दुनिया-जहान का प्यार उमड़ पड़ता। मजबूत शरीर वाली शकुन आंखों में आ जाती। कोयले की तरह काली, लेकिन इस्पात की तरह सख्त। खूबसूरती नजर की चीज है और गरीबों में नजर की कोई महत्ता नहीं।

विनायक ने सुना तो साफ मना कर दिया, लेकिन काले बाबू ने समझाया, "स्त्री गोरी हो या काली, कुरूप हो या सुंदर, स्त्री ही होती है और फिर हमारी अंधेरी कोठरियों में मधुबाला या वैजयंतीमाला नहीं रह सकती। सीता और शकुंतला ही जिंदा रह सकती हैं।"

तब विनायक मान गया। काले बाबू की बात पत्थर की लकीर होती है। फिर नजर की तसल्ली के लिए सिनेमा का पर्दा तो है ही। उसने मां की हथेली पर एकदम पचास रुपये धर दिए। मां नाच उठी। फिर केलों के सब्ज झुंड लगे, हरे-भरे मंडप में हल्दी से अटे पीले-पीले हाथों से उसने शकुन का सुर्ख-सुर्ख पल्लू थाम लिया। भरे-भरे हाथ, हरी चूड़ियां और पीली साड़ी। काला रूप निखर आया था, जैसे कोयले ने एकदम आंच पकड़ ली हो या किसी कुरूप वस्तु पर मोल बढ़ाने के लिए कांच का बढ़िया केस चढ़ा दिया गया हो।

विनायक ने शकुंतला की सूरत नहीं देखी। उसके जिस्म पर चमकते हुए अपने पचास रुपये की चमक देखता रहा। तब एकाएक ढोल बजने लगा। ढम-ढम और फावड़ों जैसे बेडौल पांव धरती के मुलायम सीने पर शबनमी फुहार की तरह बरसते गए और धूल के बड़े-बड़े चक्करों में दारू ने तड़प-तड़प कर हिरनों की तरह कुलेलें भरीं।

"तेरी प्यारी-प्यारी सूरत को किसी की नजर न लगे, चश्मे बद दूर...।"

और "सईयां भये कोतवाल हमें डर काहे का...।"

नये-पुराने गीतों का खूबसूरत कीमा बना, विनायक ने पहली बार दारू चखी और सारी धरती घूम-घूम कर अपने केंद्र से हट गई। मलमल के पीले कुरते और नकली सिल्क

की तहमद में उसका शरीर शहनशाहों की तरह अकड़ने लगा। रेशम का फूलदार रूमाल बिखरे बालों में जड़ाऊ ताज की तरह कस कर उसने उड़ान भरी और नाचते हुए लोगों के घेरे में आ गया। "नाच रे मयूरा...।" धरती-आकाश, चांद-सितारे सब नाचने लगे और इस तेज धमक की ताब न लाकर, जब वह रुका तो पुलिस उसके हाथों में हथकड़ियां लगा चुकी थी।

"दारोगा जी...?" रेशमी जख्मी नागिन की तरह लपक कर आई। नाच रुक गया।

"क्या बात है, भई...?" काले बाबू ने थूक निगल कर पूछा।

"बहुत मामूली।" दारोगा हंसा।

इस कड़वी हंसी ने थोड़ी देर के लिए जहर घोल दिया।

"तो फिर बताता क्यों नहीं ? मुंह में फोड़ा फूट गया है क्या...?"

"चुप रह, मौसी!" काले बाबू ने रेशमी को परे धकेल दिया।

"क्या बात है, दारोगा जी ?"

"थाने चल कर खुद ही पता चल जाएगा।"

"फिर भी, कुछ तो बता दो।"

"इससे पूछो।"

काले बाबू ने धीरे से विनायक के कंधे पर अपना कांपता हुआ हाथ रखा।

"हां," विनायक बोला, "मैंने उसका खून कर दिया है। उसने शकुंतला पर दोष लगाया था।"

"नहीं।" काले बाबू चौंक कर पीछे हट गया।

"झूठ, बिलकुल झूठ।" रेशमी लोगों की पकड़ से आजाद होकर चिल्लाई।

"ही, ही, ही!" दारोगा दांत निकाल कर हंसा।

"बोल, सच्ची-सच्ची बोल।" रेशमी ने विनायक की कमर पर दोहत्थड़ जमाए।

"बोलेगा क्या, खाक...,खूनी...चल...चल...!"

रेशमी ने आगे बढ़ कर दारोगी की कलाई में अपने दांत गाड़ दिए। लोगों ने बड़ी मुश्किल से उसे अलग किया।

दारोगा ने उसे हाथ से कस कर, एक झांपड़ रेशमी के गाल पर जड़ दिया।

"खूनी बेटे को जन कर, इतना दावा! पैरों में बेड़ियां डाल कर बिठाया क्यों नहीं घर में।"

वह बेदर्दी से विनायक को खींचता हुआ ले चला। काले बाबू स्तब्ध सा खड़ा रह गया।

"हां...!" रेशमी चकरा कर जमीन पर गिर गई।

धूल के चक्र में विनायक अपने बलवान जिस्म के साथ कटे हुए पेड़ की तरह खिंचा हुआ चला गया। उसकी धुंधलाई आकृति चिल्लाती रही। "परवाह मत कर शकुन, मैं जेल काट कर वापस आऊंगा। फिर तू और मैं मिल कर दारू पिएंगे, ढोल की गत पर नाचेंगे ...और हां, मेरे पीछे मेरी मां का ध्यान रखना, समझी ?" फिर उसकी दूर होती हुई सूरत तेजी से चकराती हुई, धूल में लोप हो गईं और दुनिया भर की लाल मिर्चें बोरों से उड़ कर, रेशमी की आंखों में भर गईं। "मेरी मैया, मेरी मैया!" वह जलन की ताब न लाकर, सीना कूट-कूट कर चिल्लाने लगी। और आग पकड़ा हुआ कोयला अचानक जल कर राख हो गया। शीशे का केस छनछन कर टूट गया और सारा कांच शकुन के मजबूत और बलवान जिस्म में खचाखच चुभ गया।

नकली रेशम का सुर्ख रूमाल धूल में अटा पड़ा था। शकुन ने लपक कर उसे उठा लिया। फिर उसे सीने से भींच-भींच कर रोने लगी।

"मेरी मैया....!"

"मेरी मैया...!"

दर्द का साहिल कोई नहीं

अनवर अज़ीम

पतझड़ की शाम की तरह, उदास संगीत कमरे में यूं घुल रहा था जिस तरह होंठों के मिलाप में दिलों की आग घुलती है। दिन ढल रहा था और बाहर सूर्य की पीली पड़ती हुई किरणें दरवाजों और खिड़कियों के परदों पर ऐब्स्ट्रेक्ट डिजाइन में झिलमिला रही थीं। लेकिन अंदर झुटपुटे का समय था, कहीं परछाइयां, कहीं मंद-मंद जलती जोत में छत के पंखों का प्रतिबिंब बड़ी मेज के आईने में अजीब सी झिलमिलाहट पैदा कर रहा था। छोटी मेज पर काफी की आधी पी हुई प्याली ठंडी हो रही थी और कामू के 'आउटसाईडर' के पृष्ठ अपने आप उलटते जा रहे थे। लगता था, यह किताब भी संगीत के साथ सांस ले रही है और अपने अजनबीपन और तनहाई से डरी हुई है।

फिर वही बोर फजा होगी, वही थम-थम कर बहकते हुए कदम, एड़ियों पर घूमते हुए, पंजों पर चलते हुए लोग, गंधहीन फूलों की प्रशंसा करते हुए लोग—इस पर तुर्रा यह कि वह फिर मेरी ओर लालसा-भरी आंखों से देखेंगे और नदीदेपन की दाद मांगेंगे। मुझ से यह छिछरोपन न देखा जाएगा। यह मुहताजी, यह मजलूमी! मेरा जी कैसा-कैसा तो होगा, दम घुटेगा, मैं वह चीज गट-गट केवल बोरियत में चढ़ा जाऊंगी जो मुझे कभी अच्छी नहीं लगी। यह भी क्या जिदंगी है! वही चीज गले से उतारे जाओ, जो बोगस सी, बेकार सी चीज हो...और यह कमबख्त जंगल के जंगल बाल हैं या जंजाल! ये मेरे जानी दुश्मन—और लो, ये चांदी के तार भी चमकने लगे! एक मेरी बुआजान के बाल हैं, गिर-गिर कर हवा हो गए मगर क्या मजाल जो काले मखमल पर हल्की सी धूप जगमगाई हो! और वह शैतान मुकेश कैसी बेशर्मी से तके जाता है। सब से ये चांदी के तार छिप जाएं, मगर उस बिल्ली के बच्चे की आंखें क्या नहीं देख लेतीं! फिर बकरे की तरह अपनी जवानी का तराना गाएगा। कबूतर की तरह सीना फुलाएगा और डकार लेगा। मेरा बस चले तो...मेरा बस चले तो अपने सिर पर सीधा उस्तरा फिरवा लूं और उसकी नाक पर उल्टा। न रहे बांस, न बजे बांसुरी। यह शाम भी खराब हुई। कैसे मजे में पांयसी से सिर ढलकाए, तकिये पर टांगें जमाए 'आउटसाईडर' पढ़ रही थी। पेरिस की किसी बोहीमियन हसीना की तरह, परंतु

पेरिस की हसीना तो कुछ और भी कहती है—कैसे मजे में उल्टी दुनिया सीधी नजर आ रही थी और सीधी दुनिया उल्टी लग रही थी। हाय! कितना अच्छा लग रहा था, सब स्पायल हो गया।

सलमा जलीस ने अपना दुबला-पतला संदली हाथ बढ़ाया और एक खिड़की का पर्दा सरका दिया। शाम की पहली सुनहरी रोशनी कमरे में दाखिल हुई, जिस तरह पपोटों पर नींद उतरती है। उसने शृंगार-मेज के सामने जरा सा बल खाकर अपना 'हेयर डू' देखा जो नवीनतम फैशन से बिलकुल अलग था, जिस तरह उसका अपना मन उससे अलग था। बिलकुल आजाद, अकेला और अपने कहने का। कभी पहाड़ी चश्मे की तरह चंचल और कभी बर्फ-ढकी चट्टान की तरह गंभीर।

उसके रेशमी ड्रेंसिग गाऊन का बंद खुला हुआ था और उसका हल्का-फुल्का जिस्म लचक रहा था। कमल के डंठल की तरह लंबी गर्दन पर बड़ा सा तिल चमक रहा था। यह देख कर बड़ा ढाढ़स बंधा कि कमबख्त चांदी के तार, काले बालों के जंगल में कहीं भटक कर रह गए ? और अब इस बिल्ली के बच्चे की आंखें भी लापता पा जाएं तो—उसने मुड़ कर राईटिंग टेबल पर रखे हुए टाईम-पीस पर नजर डाली। रिस्टवाच की तरह उसके दिल की धड़कन भी बंद हो चुकी थी और उसमें बीते हुए दिन के सात बज रहे थे। यह घड़ी भी बकवास, फिजूल चीज है। क्या मजाल जो कभी कूक बिना चल जाए !

कोई साथ नहीं देता। हर धड़कन, हर हलचल, हर आहट, हर झोंका अलग है। पतझड़ की हवाओं में उड़ते हुए पीले पत्तों की तरह दूर-दूर, अलग एक-दूसरे से, हवा से दामन छुड़ाते हुए पीले सूखे पत्ते।

आज फिर लेट हो जाऊंगी। न जाने किस पीर की बददुआ है कि हर चीज में या तो देर हो जाती है या जल्दी। कोई काम भी तो समय पर नहीं होता। शुरू से ही जिंदगी का यही ढचर है और अब आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमां होंगे! यूं है, तो यूं ही सही। अब मैं घाटे के हर अहसास से ऊंची उठ चुकी हूं और उस ऊंचाई में कितना अच्छा लगता है! बादल के छोटे से आवारा टुकड़े की तरह हवाओं में तैरना, न गरजना, न बरसना। आखिर उसने साड़ी लपेटी और पल्लू को बाएं हाथ में संभाल कर दर्पण में आखिरी झलक देखी। 'नाट बैड।' फिर होंठ पुचकाए, अलाव की तरह जबान लहराई, झिलमिलाई और दिल पर ओस सी पड़ गई। मैं न जाने क्यों, हमेशा गलत रंग चुनती हूं। मार्च का महीना, हवा में खुनकी, शाम का समय, यह तीखा 'हेयर डू', नुकीला मेक-अप और उस पर यह बोर ग्रे रंग, गाड!...लेकिन अब बहुत देर हो चुकी है ओर उस शैतान का चेहरा—चाहे यह सच है कि मेरे कालेज की कोई कलीग कलर-सैंस में मेरी गर्द को भी नहीं पहुंच सकती। मोनिका भी नहीं, जो ओक्सोनियन लहजे में बात करती है और अंजली भी नहीं जो मुस्कुराहट

का इस्तेमाल इस खूबी से करती है जिस खूबी और खूबसूरती से मंजे हुए फोटोग्राफर फ्लैश का उपयोग करते हैं। यह दिन-रात खट-खट, थैंक यू, थैंक यू। लेकिन उन लड़कियों में...

यह सोचते-सोचते मिस सलमा जलीस के चेहरे पर एक रंग आया, एक गया। कहने की बात तो नहीं, इनको लड़कियां कहना भी बड़ा अत्याचार हैं। बेचारी लड़कियां तो वे हैं जो क्लासों में हैरान नजरों से देखती रह जाती हैं कि मिस फलां, मिस फलां कीट्स और शैली के सीधे-सादे शब्दों में संसार भर की रहस्यमय आवाजें कैसे सुन लेती हैं! 'लेकिन यह तो मानना पड़ेगा, मिस सलमा जलीस!' उसने अपने आप से कहा, 'तुम उनके सामने पानी भरती रह जाती हो और वे कहां की कहां निकल जाती हैं! भई, बात यह है कि वे कुछ अनुभव भी रखती हैं। उन्होंने कुछ देखा है। अर्थ यह हुआ कि वे घाट-घाट का पानी पी चुकी हैं।' लेकिन यह वलगर ऐक्सप्रेशन है। आफटर आल, औरतों के लिए, लड़कियों के लिए तो और भी! मुझे तो फ्लर्ट करना भी नहीं आता ढंग से, और जी चाहता है। यह और बात है कि उस दिन मैंने चिढ़ कर अंजली से कह दिया कि—देखो, मैं अब इस सीमा से निकल चुकी हूं। मेरा सैक्स मर चुका है और सैक्स ही सब कुछ नहीं है। हां, एक समय था जब जिस्म न जाने कैसी गर्मी को, न जाने कैसी खुशबू और मिठास को पुकारता रहता था और मुझे लगता था कि मैं मोर हूं और वन में अकेली नाच रही हूं। मैं पुकारती हूं और कोई मेरी पुकार नहीं सुनता। मगर अब मैं इस वन से निकल आई हूं। हां, हां, सिर्फ यही नहीं कि उनके पास कुछ 'अवैध सामग्री' है। वे उसका उपयोग भी जानती हैं? क्यों? अंजली और मोनिका के साड़ी बांधने का अंदाज ही कोई देखे! सितार की तरह राग-रागिनियों से भरे हुए जिस्म, आंखों की तरह खुलते, बंद होते हुए जिस्म और सच! यह सब साड़ी बांधने का अंदाज है कि बुझे हुए चिरागों की भी रोशनियां उबल पड़ें। है न रश्क की बात! कभी-कभी मैं कितनी जैलस हो जाती हूं! कभी-कभी की भी एक ही रही! उसने बटुआ उठाया तो ताली गायब, ताली मिली तो ताला गायब और ताला भी आखिर मिल गया, तो वह खुद गायब। एक मिनट को वह बीच कमरे में खड़ी हो गई, जहां से अस्त होते हुए सूर्य की किरणें आहिस्ता-आहिस्ता बाहर निकल रही थीं, जिस तरह समुद्र से मछेरे का जाल निकलता है। हां, अब क्या करना है ? क्या करना है ? हां, याद आया। बाहर जाना है।

उसने बाहर निकलते ही भड़ से दरवाजा बंद कर दिया। कुंडी अड़ाए बगैर ताला डाल दिया और खट से ताली घुमा दी। फिर झुंझलाई। कुंडी लगाई, झुंझलाई और दोबारा झटके से ताला डाल दिया। दांता मिलाए बगैर ताली घुमा दी और सीढ़ियों से उतरने लगी। अब

वह हवा की तरह थी। अब उसे कोई नहीं रोक सकता था। यही उसके चलने का अंदाज था—जिसको अपनी जान प्यारी हो रास्ते से हट जाए या फिर जिसमें सामर्थ्य हो मौत को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाए। होता यह था कि लोग रास्ते से हट जाते थे।

इस जिंदगी में कदम-कदम पर सैंकड़ों प्राब्लम थीं। किस वक्त कौन सा लिबास पहना जाए, इसकी प्राब्लम। किन कपड़ों के साथ कौन सी लिपस्टिक लगाई जाए, इसकी प्राब्लम—और कौन सा हार गले में डाला जाए, यह भी एक प्राब्लम, क्योंकि उसके पास अनगिनत हार थे। हर रंग के हार। फिर उनमें हरेक की अलग-अलग तिथि थी। हरेक के साथ एक अलग प्रकार का संबंध और लगाव। एक तो वे हार थे जो यूरोप की यात्रा में खरीदे गए थे। एक हार रोम के खंडहरों के निकट छोटी सी दुकान से खरीदा गया था जहां फ्लोरेंस की बुढ़िया ताजा-ताजा नकली पत्थरों के हार यह कह कर बेचती थी कि ये हार वास्तव में प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, सिकंदरे-आजम के समय से। लेकिन यह झूठ केवल उसकी जुबान पर होता था, छुरियों से घिरी हुई आंखों में नहीं जो हंस-हंस कर कहती थीं, 'तुम जानती हो रानी, प्राचीन काल के इतने सारे एक ही जैसे हार कहां मिल सकते हैं ?' लेकिन सलमा जलीस ने एक हार वहां खरीदा, एक वीनस में, एक पेरिस में। लंदन में उससे एक सेकिंडहैंड रिकार्ड-प्लेयर के सिवा और कुछ न खरीदा गया। वह भी कैंब्रिज में दो साल ठहरने के दौरान छुट्टियों में इटली, फ्रांस और स्विट्जरलैंड की सैर को निकली, तो वह एक सैकिंडहैंड दुकान की भेंट हो गया, जिसका गम आज भी उसकी छाती पर सिल की तरह धरा हुआ है।

लेकिन यह क्षति-पूर्ति उस समय हो जाती थी जब उसे याद आता था कि इटली में तो हर जगह वह अत्यंत सस्ते किस्म के 'प्योने' में ठहरी थी। तरबूज की तरह की सुर्ख-सुर्ख फांकें खाकर दिन काटे थे और राफेल, ल्योनार्दो, माईकल ऐंजलो, रैंबरां, मोद लयानी के शाहकारों के रिप्रोडक्शन खरीदे थे जिनमें संसार के सुंदरतम रंग थे, जिनमें दिलों को थरथराने वाले, पिघलाने वाले पत्र, धूप-छांव, खुशी और गमी की फुहारें और न जाने क्या-क्या दौलतें जाग रही थीं। अब उसके सामने प्राब्लम यह भी थी कि इन कलाकृतियों को सात सागर पार से लाने में उसने जिस कुर्बानी और त्याग से काम लिया था, लोग उसका किस्सा सुनें तो दांत से अंगुली काटें, कभी-कभी यह जिक्र सुन कर बेहोश हो जाएं और जब होश आए तो हाथ मलें और आंखें फाड़ कर कहें, 'भई, तुम जीनियस हो!' और वह इस बात पर दिल में हंसती थी कि एक बार तड़क-भड़क वाली एक पार्टी में एक महिला, जिसे देख कर न जाने क्यों 'बुड्ढी घोड़ी, लाल लगाम' का खयाल आता था, मटकती हुई और होंठों से टनों लहू टपकाती हुई और अपनी मोटी-मोटी अदाओं से कुश्ते के पुश्ते लगाती हुई,

रेलती-पेलती उसके पास आई और बोली, 'इफ यू डोंट माइड—जरा मैं आपका हार देख सकती हूं ?' और हार को छूकर और मिस सलमा जलीस की नाजुक गर्दन को कोचवान की तरह झटके देकर कहने लगी, 'भई, अब तो मुझे भी पेरिस जाना पड़ेगा। क्या जान-लेवा हार है!' मिस जलीस ने यह हार पेरिस में नहीं बल्कि नई दिल्ली में इंपीरियल होटल के पास वृक्षों के नीचे बैठी एक तिब्बती औरत से खरीदा था जिसकी कलाइयों में मोटे-मोटे कंगन बज रहे थे और जो जमीन पर बैठी इस तरह मजे से चने फांक रही थी कि बड़े-बड़े, सोफे पर बैठने वाले भी इस शान से बैठ कर केक-पेस्ट्री नहीं उड़ाते होंगे। अब यह भी एक प्राब्लम थी कि कोई यह नहीं समझता था कि कूड़े-कबाड़ के ढेर से मोती चुनने के लिए भी नजर की जरूरत है। "हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है"—यह सूक्ष्म बात इस मोटी चर्बी वालों की खोपड़ी में भला खाक आने लगी!

सड़क पर आकर वह सोच में पड़ गई। टैक्सी बुलाई जाए या स्कूटर-रिक्शा से काम चल जाएगा? "या" की जिंदगी में वही अहमियत थी जो मछेरों की जिंदगी में जाल की है। अगर किसी ने पूछा, 'खाना खाओगी, सलमा ?' तो जवाब मिलता, खाना खा लूंगी या पानी पी लूंगी या शायद नहीं पियूंगी या...रोजाना रात को जब घंटों नींद न आती और संसार की अस्थिरता पर गौर करते-करते थक जाती तो एकाएक उसके मन में यह विचार बिजली की तरह कौंध जाता कि मैं बड़ी फिजूल-खर्च हूं, मुझे टैक्सीबाजी नहीं करनी चाहिए। जितने पैसे मैं टैक्सी में उड़ा देती हूं, उतने में तो हजारों लोग इस शहर में पूरा महीना गुजारा कर सकते हैं। अच्छा, कल से टैक्सी बंद। लेकिन उस समय भी जब सड़क पर उसके बाल हवा में उड़ने लगे और तेजी से ढलती हुई शाम का अहसास तेज हुआ तो उसने टैक्सी में ही वह छोटा सा सफर तय करने का फैसला किया जो वह बस में पांच पैसे में तय कर सकती थी। "रब बचाए, बस में पेट्रोल और जाने कैसे-कैसे इंसानों की दुर्गंध फैली हुई होती है—दुर्गंध, जैसी भेड़ों में होती है।" पास से गुजरते हुए विश्वविद्यालय के टोडी छोकरों ने चुस्त पतलूनों में दस-दस बल खाते हुए सीटियां बजाईं और कोई जोरदार व्यंग्य किया तो उसने दौड़ती हुई टैक्सी को इशारा किया...

सरदारजी ने टैक्सी की गति तेज की तो उसने सोचा, पति और कुछ नहीं तो ऐसे खतरे-भरे क्षणों में अच्छा बाडीगार्ड सिद्ध होता है। रात गए तक थियेटर का आनंद उड़ाओ, होटलों में घूमो, डिनर खाओ, कोई खतरा नहीं—मेरे विचार में ज्यादातर औरतें शादी के बाद दूध का दूध और पानी का पानी देखने के बाद अगर अपने ओछे और कमीने पतियों से चिपकी रहती हैं, तो उसका कारण यही होता है कि उन्हें एक हट्टे-कट्टे विश्वसनीय बाडीगार्ड की आवश्यकता होती है... न जाने वहां कौन-कौन होगा—एक से एक स्नाब...?

वह जिस सर्कल में घूमती थी, उठती थी, बैठती थी, वहां उसको अधिकतर लोग स्नाब नजर आते थे, बल्कि अब तो स्थिति यह हो गई थी कि वह अपने सिवा सबको स्नाब समझती थी। कभी-कभी तनहाई में जब वह अपने आप से बातें करती, तो अपने कान में चुपके से कहती—बात यह है कि मैं खुद स्नाब हूं। यह एक रोग है जो हीन-भावना से पैदा होता है। मुकेश की ईंट का जवाब वह पत्थर से देगी तो वह बिलबिला उठेगा। अपनी टाई की नाट को और कस लेगा और कहेगा, 'तुम बहुत नक-चढ़ी हो।' मैं नक-चढ़ी हूं तो हूं, तुम्हारी बला से! मिसेज सक्सेना ने खाहमखाह, मजाक ही मजाक में यह बात उसके दिल में डाल दी है कि मैं उस पर मरती हूं। वह भी ऐसे मर्दों पर जिनसे सीधे मुंह बात कर लो, तो आशिक से माशूक में बदल जाते हैं जैसे सर्फ पाउडर पानी में चक्कर खाते ही झाग में परिवर्तित हो जाता है। परंतु स्नाब वास्तव में मिस्टर सेठी हैं जो अपने आप को मर्दाना हुस्न में कुदरत का शाहकार समझते हैं और अपनी गजल सुनाने से पहले दिल पर हाथ रख कर दो-तीन बार जरूर छींकते हैं। नाकें भी दुनिया में भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं—'गजब' नाक, 'हैबत' नाक, 'हसरत' नाक, 'हैरत' नाक, इत्यादि—मगर मिस्टर सेठी की नाक कौन सी नाक है, इसका आज तक पता नहीं चला। खैर, जो भी हो, कुदरत का शाहकार है। क्या बढ़िया नाक से अंग्रेजी बोलते हैं! मेरे विचार में उनको नाक सिर्फ अंग्रेजी बोलने के लिए मिली है। तभी तो लोग, मेरा मतलब है लड़कियां, उनसे इतनी प्रभावित हैं। दस ऐसी पुस्तकों के नाम ले लेंगे जिनके लेखक आज तक पैदा ही नहीं हुए और फिर बड़ी सादगी से पूछेंगे, जरा सा झुक कर और अपनी नाक को खुजला कर मीठी-मीठी नजरों से देख कर—'आपने तो पढ़ी होंगी ?' और लोग, मेरा मतलब है, लड़कियां सिर झुका कर, छुई-मुई होती चली जाती हैं। लेकिन जब मैं आक्रमण करती हूं तो श्रीमान को दिन में तारे नजर आ जाते हैं। मौसम का जिक्र छिड़ जाए या कुत्ते के खूबसूरत कानों का या किसी फिल्म ऐक्ट्रेस की आत्महत्या का या किसी अमरीकन ऐंटरप्राइजिंग छोकरी के किसी राजा-महाराजा से ब्याह रचा लेने का। और मुझे मालूम हो जाता है कि मिस्टर कितने पानी में हैं, क्योंकि सारा माडर्न अंग्रेजी साहित्य मेरे लिए पानी है। चाहे सार्त्र हो। ठीक है, वह फ्रांसिसी है तो क्या हुआ, या आर्थर मिलर, कलासिक्स हो, या... सब पानी है। मिस सलमा जलीस को अपनी आवाज बहुत ज्यादा पसंद थी, बल्कि उसे अपनी आवाज से इश्क था। वह नगमे की दौलत से वंचित थी, लेकिन आवाज से लबालब भरी हुई और जब छलकती थी तो घंटों छलकती जाती थी। लेकिन जरा सी औपचारिकता-पूर्ण महफिल हुई ओर उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम! वह अपनी जुबान में लच्छेदार अंग्रेजी का कमाल उस समय दिखाती थी, जब मोनिका या अंजली या कोई कलीग या छोटी बहन काबू आ जाती थी...

उसकी बहन मिस सलमा जलीस के खयाल में एक औसत दिमाग की लड़की थी

और घर बसा कर और बच्चे पैदा करके बेहद ठस्स किस्म के पति के साथ एक व्यर्थ और फिजूल सी जिंदगी गुजार रही थी, क्योंकि इसके सिवा और कोई चारा नहीं था। वह यह देख कर हैरान रह जाती थी कि उसकी बहन काफी समय तरकारी और फल खरीदने पर, धोबी का हिसाब लिखने पर, रोजाना खाने का मीनू बनाने पर लगा रही थी (क्योंकि वह इन चीजों की दाद केवल खाने के मेज पर दे सकती थी और वह भी खोये-खोये अंदाज में)! बच्ची का फ्राक सिल रहा है और बेटे की प्रोग्रेस रिपोर्ट पढ़ी जा रही है। रोजाना अखबार पढ़ लिया और महीनों में ग्राह्म ग्रीन का कोई उपन्यास जहर-मार कर लिया और बस छुट्टी—यह कोई जिंदगी है! स्त्री की आजादी का झंडा उसके दिल में हर पल फड़फड़ाता रहता। उसे सीधे-सादे रोमांस का अनुभव था, न टेढ़े-मेढ़े प्रेम का। लेकिन अंधाधुंध 'अडल्ट्री' के पक्ष में भाषण दिया करती थी और बर्ट्रेंड रसेल कोट करती जाती थी। सैक्स पर उसने पुस्तकें बहुत पढ़ी थीं या फिर दूसरों के अनुभव सुने थे लेकिन वह बड़े विश्वास से कहती थी, 'स्त्री में सैक्स का तूफान पैंतीस-चालीस की उम्र में अपने पूरे जोरों पर होता है और मर्दों में अठारह-बीस वर्ष की आयु में...' और जब वह यह कह रही थी, उसकी नजर अपने मंद-बुद्धि बहनोई की नजर से लड़ गई और उसने अनुरोध किया था।

'मेरी बात तो सुनिए!' क्योंकि वह कितनी बार घोषणा कर चुकी है कि इस मामले में तो बर्फ की सिल हूं। 'निश्चिंत रहिए, जनाब!'

सरदारजी ने जरा जोर से कार जो मोड़ी, तो सलमा जलीस के बैठने का पूरा पोज खराब हो गया। पर्स कलाई से उछल कर बाजू पर पहुंच गया और साड़ी का 'फाल' तबाह हो गया। "सरदारजी, जरा आहिस्ता," उसने झुंझला कर कहा। सरदारजी ने टैक्सी और तेज कर दी।

"बादशाहो, कांच की गुड़ियों को खातिर में लाने लगा तो बस कर चुका धंधा!"

सरदारजी की यह अदा मिस सलमा का मूड खराब करने के लिए काफी थी। हर शाम कोई न कोई उसके मूड पर बम की तरह गिरता था। मिस सलमा जो बचपन में सिर्फ 'सल्लो' कहलाती थी, सदा से जिद्दी थी। उसका स्वभाव सुतली की चारपाई की तरह था जो रात भर आंगन में पड़ी भीगती रही हो और सुबह को धूप खाकर अकड़ गई हो। वह बहुत छोटी थी, जब उसके सिर से उसके पिता का साया उठ गया था। उसने धड़कते दिल से देखा था कि किस तरह इंसान को सफेद कपड़ों में लपेट कर आंखों से ओझल कर दिया जाता है और फिर न उसका चेहरा दिखाई देता है, न मुस्कुराहट, न आंखें और न उसकी आवाज सुनाई देती है, न कहकहा, न आहट। फिर सब कुछ कितना उजाड़ और वीरान लगने लगता है। वह अकेली रोती रह गई और जब उसके आंसू खुश्क हो गए तो वह अंदर ही अंदर सिकुड़ कर, ठिठुर कर रह गई। बहनें थीं, मां थी, मगर वह अकेली

थी। उसे ऐसे लगता था कि कोई भी किसी वक्त यूं ही सफेद कपड़ों में खो सकता है। रहम-दिल तथा दयावान रिश्तेदारों, प्रियजनों ने सिर पर हाथ रखा और आज भी जब उनके हाथ का स्पर्श याद आ जाता तो उसके जिस्म में ठंडी झुरझुरी दौड़ जाती है। बड़ा सा आंगन, जिसमें निवाड़ के बड़े-बड़े पलंग बिछे हुए हैं। जहां बेले और जूही की क्यारियां हैं, शरीफे का वृक्ष है। रात की रानी महक रही है और तिपाई पर सुराही रखी है जिसकी गर्दन में गजरा पड़ा हुआ है। और एक ओर जिधर रसोईघर है, जहां कोने में बकरी बंधती है, छोटी-छोटी चारपाइयां बिछी हैं, जिनमें एक पर सल्लो सोने का स्वांग कर रही है। उसने मलमल के मैले कुरते की आस्तीन से आंखें छिपा ली हैं और वृक्षों के ऊपर तैरते हुए चांद की किरणों के साथ उसकी नींद से भरी आंखें नीचे उतर रही हैं। जहां उसके रिश्ते की नन्हीं-मुन्नी बहनें सफेद चादरों पर सो रही हैं और नौकरानियां उनके ऊपर मच्छरदानियां लगा रही हैं और मच्छर हैं कि उड़-उड़ कर उधर जा रहे हैं जहां सल्लो और उसकी बहनें सो रही हैं और मां बैठी पान बना रही है, कुछ सोच रही है, बड़बड़ा रही है। मां भी चांद में बैठी बुढ़िया की तरह नजर आ रही है जो आदिकाल से चरखा कात रही है। उसे एक बात अभी तक याद है। वह दस-ग्यारह साल की होगी। बरसात की शाम थी। बाग में आम के वृक्षों में झूला डाला गया था। रिश्ते की बहनें झूला झूल रही थीं और बारी-बारी हाथों और पैरों में मेंहदी लगवा रही थीं। आखिर में उसके लिए मेंहदी नहीं बची थी। किसी की छुड़ाई हुई मेंहदी उसकी हथेलियों पर रखने की कोशिश की गई तो वह भाग खड़ी हुई और आम के पेड़ के नीचे चुपचाप खड़ी हो गई। "क्या मैं मेंहदी बिना जी नहीं सकती?" बच्चियां झूला झूलती रहीं, हंसती रहीं, उनकी हथेलियों से मेंहदी छुटती रही। हथेलियों के चिराग जलते रहे। ओढ़नियां उड़ती रहीं, लेकिन उसने पलट कर नहीं देखा। वह रात गए तक आम के पेड़ के नीचे अकेली खड़ी रही। उसे बिलकुल याद न था कि आखिर उसे कौन वहां से ले गया था। हां, उसे इतना याद था कि वह रात भर चारपाई पर पड़ी रोती रही थी और सुबह के समय जब उसकी आंख खुली थी तो वह बुखार में जल रही थी।

अब इस घटना को वर्षों बीत गए थे। वह क्या से क्या हो गई! लेकिन उसे अकसर यही अनुभव हुआ था कि कोई उसकी हथेलियों पर छुड़ाई मेंहदी लगाने की कोशिश कर रहा है और वह हाथ झटक कर अलग हो गई। इसलिए विश्वविद्यालय के जमाने में कई नौजवान सिर्फ इसलिए रिजेक्ट हो गए थे कि वह पहले किसी और से प्रपोज करके रिजेक्ट हो चुके थे। यदि कोई ऐसा मिल जाता उसे जो बिलकुल कोरा पड़ा हो, तो आज उसकी जिंदगी का रंग कुछ और ही होता। वह अपनी हथेलियों पर सच्चा-सुच्चा, चोखा रंग चाहती थी। वैसे वह कहती कुछ और करती कुछ और थी, "ऊंह शादी में क्या रखा है! शादी

तो सभी करते हैं। यह उनके लिए आवश्यक भी है जिनके दिमाग में भूसा भरा हुआ है।"

उसका खयाल था कि वह सब कुछ देख चुकी है। बहुत कुछ खो चुकी है। पाने को कुछ भी न था। जिंदगी में तलाश के सिवा कुछ भी न था। तलाश भी क्या! बस, एक अमिट प्यास! तलाश, जिसके स्रोत पुस्तकों से फूटते हैं और जो सोफे पर बैठ कर या फर्श पर लेट कर या मसहरी से सिर टिका कर बड़े मजे में पढ़ी जा सकती हैं। उसका गुस्सा नाक पर धरा रहता था, लावा फूटता तो वह स्वयं सब से पहले उसकी मार में आती। हर हालत में तान टूटती, सिसकियों और आंसुओं पर। कभी अकेले अंधेरे कमरे में, कभी पीकर किसी सहेली के बाजुओं में, कभी बहन के पहलू में। "देखती नहीं, मैं कितनी अकेली हूं! मैं अपने आप से भी कट कर अलग हो गई हूं। मैं दूसरों के लिए जीती हूं। मेरे लिए कोई जीता है, बताओ...?" ऐसे क्षण में वह बिलकुल बच्चे की तरह रोती थी और उसकी बहन सोचती रह जाती कि यह दूसरों के लिए जीती है या केवल अपने लिए ? निराशा के दर्पण में हर एक चीज उलटी दिखाई देती है।

अंजली ऐसे अवसरों पर बड़ी शरारत से देखती थी और सोचती थी, 'कितनी फ्रस्ट्रेटिड है यह लड़की!' मोनिका, जिसकी आंखों में सारी दुनिया का दर्द झांकता था, सिर्फ यह सोच कर चुप हो जाती थी—'बेचारी बूढ़ी कुंवारी युवती!' और उसके कंधे थपथपाने लगती थी। लेकिन यह सभी जानते थे कि मिस सलमा जलीस यह मानने को तैयार नहीं थी कि वह फ्रस्ट्रेशन का शिकार है।

"जी नहीं, क्षमा कीजिए। मैं बिलकुल ठीक हूं। अपनी कुशल-मंगल मनाइए। इलाज कराइए। न जाने आप के मुंह से लार क्यों टपकती रहती है!"

तीखी, दिल-तोड़ बात कहने में उसका कोई सानी नहीं था। सबसे ज्यादा शामत उसकी आती थी जो दुर्भाग्य से उस पर आशिक होने की कोशिश करता था। 'देखो, मिस सलमा जलीस से प्रेम करने जा रहे हो, तो बेटा सिर पे कफन बांध कर जाओ'—यह नेक सलाह हर शरीफ आदमी दूसरे शरीफ आदमी को दिया करता था। हालांकि सच यह है कि मिस सलमा को सदा यह एहसास रहता था कि वह कांच के चुस्त खोल में बंद है, जो किसी को दिखाई नहीं देता। लेकिन अगर कोई पत्थर बरस गया तो...!

टैक्सी से उतर कर, जब वह बरामदे में पहुंची तो मिस्टर सक्सेना खुद ही निकल कर आ गए। छत पर कुछ कुर्सियां बिछी हुई थीं। बीच में एक गोल मेज थी। फजा से साफ जाहिर था कि यह कोई बड़ा शो नहीं। हां, अलबत्ता मुकेश पूरी तरह मौजूद था। मुकेश का कद छोटा था। उसकी यही बात सबसे महत्वपूर्ण थी। यह चीज इसलिए और भी महत्वपूर्ण हो गई थी कि उसका सिर बहुत बड़ा था और बाल घने उसकी आंखों में चमक पैदा हुई और वह फुदक कर मिसिज सक्सेना के पास चला गया, जो अपने गंजे, शरीफ और

गोल-मटोल पति से कह रही थी, "देखा, मैं न कहती थी, जरूर आएंगी।" यह पहला मौका था कि उनके घर में मिस सलमा जलीस और मुकेश के अलावा और कोई मेहमान न था। यह बात मिस सलमा जलीस को बहुत खल रही थी।

"आखिर, यह क्या बेतुकापन है ?"

एक तो सरदारजी ने टैक्सी में झटके दे-दे कर उसका मूड खराब किया था। और अब यह मुकेश—यह मकड़ा! उसका खून जमने लगा। जिस्म अकड़ने लगा। आखिर यह किस्सा क्या है कि इस बोर को...बोर करने की भी एक हद होती है। वैसे बड़ा सहमा हुआ लग रहा है। किस्सा क्या है? वह बेकरारी में अपने नाखून कुतरने लगी। मिस्टर सक्सेना ने बड़ी नरमी और प्यार से मुकेश को ले जाकर मिस सलमा जलीस के पास बिठाया। मिसिज सक्सेना चाय बनाने लगी।

"भई, कितनी शक्कर ?"

"आप बना रही हैं तो शक्कर की क्या जरूरत है," मुकेश ने अपना पिटा हुआ वाक्य हजारवीं बार दुहराया।

मिस्टर सक्सेना ने मिस सलमा जलीस के बदलते हुए तेवर देखे और पूछा, "आप ने सतीश गुजराल की नुमाईश देखी ?"

"मैंने तो पहले ही दिन देखी," मुकेश टपक पड़ा—"रंग बड़ा ओरिजिनल है।"

"लेकिन वही पिछला स्टाइल है—वह जेल और लास्ट सपर।"

"स्टेट्समैन ने भी कुछ यही लिखा है," मिस सलमा ने धीरे से कहा।

मुकेश बौखला गया। उसकी बौखलाहट देख कर मिस सलमा के दिल की कली खिल गई। मुकेश पहलू बदलते हुए बोला, "वहां महाराजा कश्मीर भी थे और वह कोका कोला पी रहे थे।"

मिस सलमा जलीस को हंसी आ गई। मुकेश चुप हो गया।

नीचे से मिस्टर सक्सेना के पिताजी के खांसने और थूकने की आवाज आ रही थी। वे उस लड़की से बहुत खफा थे, जिसमें भारतीय कल्चर की कोई बात नहीं थी। वह उसे सिगरेट पीते देख चुके थे।

यही नहीं, एक बार उनकी उपस्थिति में कोका कोला कलचर, टेडी कलचर और नाइलोन कलचर पर बहस हो रही थी तो मिस्टर सक्सेना के पिताजी भी इस बहस में कूद पड़े थे और अंत में बोले थे, "यह क्यों भूलते हो कि हम किन साधु-संतों की संतान हैं! भगवान ने हमें क्या बनाया है..."

"जी हां, भगवान ने हमें उल्लू बनाया है!" मिस सलमा ने उनकी बात काट दी थी। अब यह था कि इधर इस मलेच्छ लड़की ने घर में कदम रखा, उधर उन पर खांसी का

दौरा पड़ा।

मिस्टर सक्सेना की आंखें हंस रही थीं और उनका गोल चेहरा चमक रहा था। उन्होंने मिसिज सक्सेना को बुलाया, "जरा सुनना, बेबी रो रही है...।"

मिसिज सक्सेना ने एक खास नजर से (और कौन नहीं जानता कि यह खास क्या होती है) दोनों को देखा और मुस्कुराती हुई कुर्सियों से कतरा कर नीचे चली गई।

"भई, तुम लोग गप-शप करो!"

दोनों चुप हो गए और इधर-उधर देखने लगे। आकाश पर चांद भी न था कि उसको देखते। सितारे इतने झुंड के झुंड थे कि उनको गिना नहीं जा सकता था और जब कोई मूर्ख पास बैठा जूते खटखटा रहा हो, तो ऐसे में तारों की गिनती भी नहीं हो सकती। अकेलापन चाहिए, खामोशी चाहिए।

"मिस सलमा, कितनी भरी-पूरी जिंदगी है, मिस्टर सक्सेना और मिसिज सक्सेना की!"

"हूं!" मिस सलमा का खून खौलना और जिस्म लकड़ी होना शुरू हो गया था। पहले भी एक बार उसे मुकेश के साथ थियेटर में इसी तरह चुपचाप बिठा दिया गया था। खयाल यह था—दोस्ती हो जाएगी, ऐसी दोस्ती जो शायद बाद में रंग लाए। लेकिन यह ठिगना सा, गोरा-चिट्टा, नर्वस सा आदमी नाइलोन की शर्ट में अल्हड़ लड़की की तरह बदन चुराए बैठा रहा। क्या मजाल जो उसका मुंह खुला हो! और वह प्रतीक्षा करती रही। जब अंधेरा हुआ और बहुत ही मिडिआकर किस्म का नाटक चल पड़ा तो मिस सलमा ने उसके कान में कुछ कहा। लेकिन वह अपना बुझा हुआ पाईप चूसने लगा और ऐसा सुन्न हो गया जैसे नाटक में खोकर रह गया हो। और अब जो वह बोला तो उसे वही रात याद आ गई।

"किसी दिन किसी पिकनिक का प्रोग्राम बनाएं ?" मुकेश ने दोबारा कुतुब मीनार पर चढ़ने की कोशिश की।

"पिकनिक!" उसकी आवाज में विचित्र बेजारी थी।

"मेरा मतलब है, क्यों न कोई फिल्म देखें चल कर आज की रात ?"

"आज की रात ?"

"मैं मिस अंजली से मिलना चाहता हूं। वह तो कहीं पास ही रहती है न!"

"क्या...?"

मुकेश की आवाज रुंध गई और वह बेतहाशा मिसिज सक्सेना को पुकारने लगा, जैसे उसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो। लेकिन कोई उत्तर नहीं आया, तो वह दबी-जुबान में बोला, "मिसिज सक्सेना के बच्चे कितने प्यारे और भोले हैं!"

"बच्चे तो हमेशा प्यारे और भोले होते हैं।" मिस सलमा की आवाज भी रुंधी जा

रही थी। आखिर यह आदमी, यह गधा, यह निकम्मा, जो बर्मा शैल में काम करता है और जिसके वस्त्रों और बातों से पैट्रोल की बू आती है, चाहता क्या है ?

क्या मैं खड़ी-खड़ी इससे यहीं शादी रचा लूं और सुबह होते-होते मिसिज सक्सेना की तरह एक चौथाई फुटबाल टीम की मां बन जाऊं ?

मिस सलमा जलीस के होंठ जलने लगे और दम घुटने लगा। उसने बड़ी गंभीरता से मुकेश से पूछा, जो अब तक उसी तेजी से बगैर किसी ताल के जूते खटखटा रहा था।

"मुकेश साहब, क्या आप बता सकते हैं कि यह किस किस्म की चाय है जिसमें मेजबान अपने दो आनरेबल मेहमानों को छोड़ कर गधे के सिर से सींग की तरह गायब हो गए हैं!"

"भई, गधे के सींग, भई खूब! मिस सलमा, आप गजब करती हैं—हां, वाकई ये लोग क्यों नहीं आते ? मैं भी सोच रहा हूं।"

"अच्छा, आप बस यही सोच रहे हैं!"

मुकेश खूब जानता था कि चाय की दावत क्यों दी गई है। उसकी याददाश्त इतनी कमजोर न थी। अभी परसों की ही तो बात है कि उसने मिस्टर सक्सेना को फोन किया था।

"भई, मिस सलमा एक अर्से से दिखाई नहीं दीं। क्या उनकी शादी करा दी ?" मिस्टर सक्सेना के दिल की धड़कन मिस सलमा का नाम सुन कर हमेशा तेज हो जाती थी। यह बात मुकेश भी खूब जानता था। मिस्टर सक्सेना की लगभग घिग्घी बंध गई थी।

"क्यों भई, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, मिलने का बहाना चाहता हूं।"

"मगर आखिर क्यों ?" मिस्टर सक्सेना मजे में आ गए।

"वह बात यह है कि कई रातों से नींद नहीं आई?"

"अच्छा, तो तम्हें स्लीपिंग पिल्स चाहिए...!"

"और नहीं तो क्या ?" उसके दिल ने बल्लियों उछल कर कहा, "हरामजादा!"

मिस्टर सक्सेना ने जब रिसीवर रखा तो उसके गंजे सिर पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं।

और अब मिस सलमा जलीस अपने फार्म में आ चुकी थी। उसका शरीर अकड़ चुका था और उसकी नाक सांस की गर्मी से जल रही थी, क्योंकि उसे सब से अधिक अफसोस यह था कि उसने शाम के लिए न जाने कितना समय मेकअप पर लगा दिया था और यहां आकर निकला मुकेश कमबख्त!

"बात यह है कि दोनों पति-पत्नी बड़े डिस्क्रीट हैं। उन्होंने हमें बातें करने का मौका

दिया है। वे खड़ी पुतलियों का खेल खेल रहे हैं। आईए, खेलें!"

मुकेश की टांगें सुन्न हो रही थीं और खैरियत यही थी कि वहां रोशनी नहीं थी, वरना उसका चेहरा डूबते हुए इंसान का सारा राज फाश कर देता।

"खेलें...क्या खेलें, मिस सलमा ?"

"मिस्टर मुकेश, वही करार और इंकार का खेल...आईए, हम ही नाटक खेलें और हम ही तमाशा देखें।"

"हाउ अनफारच्यूनेट!" मुकेश ने बच्चे की भांति तुतला कर कहा।

उद्देश्यानुसार काफी बड़ा अंतराल देकर जब मिस्टर और मिसिज सक्सेना ऊपर छत पर आए तो साथ ही बेबी भी आ गई, जो आदत के विपरीत बहुत अच्छे मूड में थी। आते ही उसने मिस सलमा जलीस के बाल नोंचे, जिसने बेबी का नोटिस बस इतना लिया कि एक चम्मच शक्कर से भरा हुआ, उसके मुंह में डाल दिया। मुकेश के बाल भी नुचे और टाई भी, लेकिन वह जूते खटखटाता रहा। मेजबानों को अंदाजा हो गया था कि फजा में काफी तनाव है। मिस्टर सक्सेना बहुत खुश हुए, क्योंकि उनके दिल की धड़कन मिस सलमा जलीस का नाम सुनते ही तेज हो जाती थी। मिसिज सक्सेना ने इसलिए एक विजेता की तरह मुकेश की ओर देखा कि एक तरफ तो वह सलमा को 'स्पिनस्टर' समझती थीं और दूसरी तरफ उनकी जिदंगी में कुछ क्षण ऐसे भी आते थे, जब उनकी उदासियों के अर्थहीन क्षणों को मुकेश अपने अंदर जज्ब कर लेता था जैसे स्पंज में पानी जज्ब हो जाता है। और यह सिर्फ संयोग ही था कि एक बार मिस सलमा ने अपनी सहेलियों—अंजली और मोनिका से कहा था, 'वह...? तुम भी गजब करती हो... मैं अफेयर भी करूंगी, तो उस स्पंज से!'

एक बेतुकी खामोशी छाई रही। प्यालियों में चम्मच घूमते रहे। बेबी चार बड़ों का दिल मोहने के यत्न करती रही और उन चारों को देख कर बेआवाज तालियां बजाती रही।

'मैं कोई ऐसी-वैसी नहीं हूं।' मिस सलमा की आत्मा चीख रही थी। 'यदि मैं यूरोप में होती, लंदन या पेरिस में तो आज...'

मिस्टर सक्सेना धुंधलके में उसे देखने की कोशिश कर रहे थे। वह जानते थे कि यह लड़की, यह बेकरार और निराश लड़की अपना होंठ काट रही है और शायद कोई भयानक बात सोच रही है। लेकिन मैं जानता हूं, इसकी उस बात में भी हुस्न होगा, हुस्न! और उस समय जो ऐसे में हमेशा होता है, मिस सलमा जलीस बैठी रही और हैरान आंखों से अपने आप को देखती रही। अब वहां कुछ न था, न मिस्टर और मिसिज सक्सेना, न मुकेश, वह एक ऐसी छत के किनारे खड़ी थी, जिसके नीचे कोई स्तंभ नहीं था। छत सागर की

लहरों में बह रही थी। उस सागर का कोई साहिल न था। ऊपर आसमान भी न था। चांद भी न था। सितारे न थे। वह थी और छत थी जो एक काले सागर की मौजों पर बह रही थी और वह छत के किनारे खड़ी थी।

उसका दिल भर आया। उसने पर्स संभाला और उठ खड़ी हुई।

"कहां ? कहां ?" मेजबान ने पूछा।

मुकेश ने सोचा, लपक कर लिफ्ट पेश करे। 'मारो गोली, बला टली।' वह चुपचाप बैठा रहा और एक परछाईं को आंखों से ओझल होते देखता रहा। इसलिए कि वह जानता था कि यह परछाईं न जाने कितनी बार उसकी लिफ्ट की पेशकश को ठुकरा चुकी है...'ए मैड कैट, गो टू हेल'। वह दांतों से नाखून कुतर रहा था।

"तुम सलमा को अपनी कार में लिफ्ट तो दे देते।" मिसिज सक्सेना ने अनुरोध किया। "चलो तुम भी बड़े वैसे हो, जरा भी हिम्मत नहीं..."

"मैं दूंगा लिफ्ट मिस सलमा को? बड़ी बद-दिमाग और वाहियात औरत है।"

"औरत!" मिसिज सक्सेना ने चौंक कर पूछा।

मुकेश उठा और कोट के कालर पर हाथ फेरता और सीटी बजाता हुआ सीढ़ियों पर भागा और उसने देखा कि वही परछाईं खामोशी से लैंप-पोस्ट के पास खड़ी टैक्सी की प्रतीक्षा कर रही है, जैसे कोई औरत वर्षा में भीग रही हो। उसने अपनी कार स्टार्ट की और उसके पास पहुंच कर रोक ली। दरवाजा खोला और बड़े प्यार से भिखारी की तरह बोला, "आइए, मिस सलमा, मैं आपको छोड़ आऊं।"

मिस सलमा बहुत धीरे-धीरे मुड़ी और चुपके से कार में बैठ गई। उसे कार बड़ी खूबसूरत और गोद की तरह गर्म मालूम हुई।

कार माल रोड पर दौड़ रही थी। मुकेश को मिस सलमा का इस तरह बैठना कुछ विचित्र सा लग रहा था। उसका जी चाहा पूछे, 'मिस सलमा, आपने कभी बिन बादल वर्षा देखी है?' एकाएक उसके दिल में न जाने क्या आया कि उसने झुक कर पूछा, "मिस सलमा, चलें, जरा रिंग रोड पर ड्राईव हो जाए। रात बड़ी खूबसूरत है!"

मिस सलमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। होंठ भींचे हुए उसने दिल ही दिल में दोहराया, 'रात बड़ी खूबसूरत है! और तुम ? फिल्म ऐक्टर का बच्चा!' रात बिलकुल खूबसूरत नहीं थी। अंधेरा था और हवा का रंग भी काला था। हवा चीख रही थी और पुश्ते से आगे यमुना के सीने पर रेत के टीले थे और उनका कोई रंग न था। दूर शायद कोई चिता जल रही थी। संतरी और नीले शोले थे और पीली-पीली परछाईंयां। यह दृश्य भी गुजर रहा था, जिस तरह सारे दृश्य गुजर जाते हैं। मुकेश का दिल धड़क रहा था। उसके हाथ स्टेयरिंग पर थे और वह हवा के जोर को महसूस कर रहा था। यह किस किस्म का ड्राईव है कि

कोई मुझसे बोलता नहीं। कोई मेरी तरफ देखता नहीं। किसी का हाथ मेरे हाथ को छूता नहीं। किसी का सिर मेरे कंधे पर गिरता नहीं। यह कैसी ड्राईव है! और सड़क जो मेरे जीवन की तरह सीधी और सपाट है, अंधेरे में लिपटी हुई जाने कहां जा रही है ?

आखिर उसने बड़ी जोर से ब्रेक दबाया। कार सड़क के किनारे चीखती हुई धचके के साथ खड़ी हो गई।

"मिस सलमा, तुम से इश्क करता हूं मैं।"

दूर जगमगाती हुई रोशनियां सहसा गुल हो गईं। अंधेरा और ज्यादा गहरा हो गया।

"आखिर यहां रोज रात को बिजली क्यों फेल हो जाती है ?"

मुकेश के दिल को कोई नींबू की तरह निचोड़े जा रहा था। जब मिस सलमा को विश्वास हो गया कि उसके सहयात्री का हार्ट फेल हो गया है तो उसने अंधेरे में मुड़ कर उसकी ओर देखा। उसके दोस्त का सिर स्टेयरिंग पर झुका हुआ था। वह गुनगुनाने लगी, "दिल्ली जो एक शहर है आलम में इंतखाब।" रोशनियां फिर जगमगाने लगीं। मुकेश ने कार मोड़ी और साठ-सत्तर मील प्रति घंटा की गति से कार भगाने लगा। उसके जबड़े जकड़े हुए थे और हवा चीख रही थी। सलमा की जुल्फ खिड़की से बाहर जा रही थी और उसके...।

उसकी पलकों से लहू टपक रहा था। एकाएक उसे अनुभव हुआ कि वह फूल की भांति खिल रही है।

और यह कोई ड्राईव है! दूसरे की कार में जो मुझ से हजारों मील दूर है। यह ड्राईव! जैसे कोई अपने जीवन में नहीं, बल्कि किसी दूसरे के जीवन में जी रहा हो।

उसने सीधी सड़क को देखा, जिस पर कुछ रोशनियां, कुछ परछाईयां तैर रही थीं।

"बस, कार रोक दो। मैं यहां से स्वयं चली जाऊंगी।"

मुकेश ने कार रोक दी। मिस सलमा जलीस उतर गई और बड़ी गैरत से बोली, "गुड नाइट!"

मुकेश ने उसकी 'गुड नाइट' का कोई उत्तर न दिया और आंधी की तरह कार ड्राईव करता हुआ रात के अंधेरे में गुम हो गया।

"बड़ा भोला आदमी है यह मुकेश।" वह मुस्कुराई। "ड्राईव भी बुरी नहीं रही। रिंग रोड, अंधेरा!" उसके कदम आगे बढ़े, रुके, फिर बढ़े।

और वहां जाकर क्या करूंगी ? नींद तो उड़ चुकी है। नहीं, मुझे नींद आ रही है। थकावट सुला देगी मुझे। लेकिन काहे की थकावट भई! और फिर नींद न आए तो ? वहां क्या होगा? वही शृंगार-मेज कोने में, वही बीच में गोल मेज, जिस पर फूलों से वंचित फूलदान मुझे मुकेश की तरह तके जाएगा। मैं टांगें फैलाऊंगी। सिगरेट जलाऊंगी और चारों ओर देखूंगी। दीवारों, दरवाजों और पर्दों के सिवा नजर क्या आएगा वहां ?...और हां, वह पुस्तक,

उस अकेले इंसान की कहानी जो यूं ही जिए जाता है, अकारण, अर्थहीन जीवन...।

और मैं...और पहाड़ी रात...रिंग रोड, पूरे शहर के बाहर, बाहर दौड़ती हुई सड़क, फासला, अंधेरा...नहीं...नहीं...वह नहीं...।

वह रोष के तौर पर मुड़ी और अंजली के कमरे की ओर चलने लगी। रास्ते भर झींगुर चीखते रहे और वह हैरान होती रही कि ये झींगुर कितने निडर, बेबाक, जिद्दी और बेवकूफ होते हैं।

वह अपने कमरे में नहीं होगी। वह इस समय अपने कमरे में नहीं होती! उसके आशिकों की कमी नहीं। सब मेरी तरह नहीं हैं! वह वैसे स्कैंडल से बहुत चिढ़ती थी। लेकिन किसी स्त्री को किसी मर्द से मुस्कुरा कर बात करते देख भी लेती, तो यह सोच कर उसे बड़ा मजा आता था कि चलो आजकल उनका 'चल' रहा है।

अंजली के कमरे का पर्दा रोशन था। उसने पर्दा उठाया और दस्तक दी। दरवाजा खुलने में देर लगी और उसका जी उलझने लगा। जाने उसके साथ कौन है! मैं जानती हूं, वह शाम बर्बाद नहीं करती। लगता है, वह किसी रहस्यपूर्ण चौराहे पर खड़ी है। जाने कहां-कहां से मुसाफिर आते हैं और उससे रास्ता पूछते हैं और वह उन सब को रास्ता बता देती है और अंत में सब उसके साथ हो लेते हैं। और मैं कहां खड़ी हूं ? जहां कोई रास्ता नहीं आता, जहां से कोई रास्ता नहीं निकलता...।

दरवाजा खुलने में विलंब हुआ तो वह मुड़ी। उसने कमरे में गिलासों के बजने की आवाज सुनी। 'पी रही है किसी के साथ...बड़ी फ्लर्ट है, यह अंजली!'

दरवाजा खुल गया और अंजली ने झिझकते हुए पर्दा उठाया।

"अरे तुम...कम इन...कम इन।" उसने मिस सलमा जलीस का हाथ पकड़ लिया, "तुम ने नाम क्यों नहीं बताया ? मैं तो डर ही गई। आओ, आओ। जानती हो, मैं इस समय सोच रही थी कि तुम मिल जातीं, तो तुम्हारी बोटी-बोटी कर देती...वह कमबख्त तुम्हारा ब्वाय-फ्रैंड मुकेश पेट्रोल वाला और वह प्रोफेसर, क्या नाम है उसका, भला-सा, माई फुट! (मेरी जाने जूती।) दोनों ने कनाट प्लेस में ऐसा घेरा, ऐसा घेरा और कोका कोला के फायदों पर ऐसा भाषण दिया, ऐसा भाषण दिया...अपमानजनक! तुम किस सोच में पड़ गईं...?"

कमरे में टेबल-लैंप की रोशनी बहुत मद्धिम थी, जिस पर पीले रंग का शेड पड़ा हुआ था। मोनिका की कासनी साड़ी झिलमिलाई और उसका मुंह खुले का खुला रह गया। वह यंत्रवत उठी और फिर सोफे में धंस गई। अंजली का चेहरा सुता हुआ था और उसकी प्रत्येक हरकत से पीड़ा टपक रही थी। आज की शाम उसने फिर धोखा खाया था। लेकिन वह अपनी बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों में अलगाव की अवस्था उत्पन्न करके अब तक मोनिका

को धोखा देती रही थी। मोनिका बहुत दुखी थी। उसके प्रेमी की पत्नी कलकत्ते से वापस आ गई थी और वह बिलकुल अकेली थी।

रात, जो जहर के प्याले की तरह चुप थी, उसे घूर रही थी। मिस सलमा जलीस के आने के बाद भी कमरे में कोई हलचल पैदा नहीं हुई। घुटन और तनहाई कुछ बढ़ ही गई। वह जानती थी कि क्या हुआ होगा। लेकिन उसने अपनी आवारा लट की कटार भौंहों पर से हटाते हुए पूछा, "क्या हुआ ?"

इस प्रश्न का उत्तर न मोनिका ने दिया और न अंजली ने। मोनिका के ब्लाऊज का गला बहुत बड़ा था, काफी खुला और उदार—इसलिए जब वह सोफे के नीचे से कुछ निकालने को झुकी, तो जैसे रोशनी उबल पड़ी। मिस सलमा जलीस का गला सूखने लगा। इसे कहते हैं औरत का शरीर! सूरज की तरह रोज डूबता है, रोज उभरता है। लेकिन रोशनी और गर्मी कम नहीं होती। मोनिका ने 'जिन' की छोटी सी बोतल मेज पर रखी। उसके नाखून भीगे हुए याकूत की भांति चमक रहे थे। उसने दो आधे भरे हुए गिलास रखे। अंजली ने तीसरा गिलास भी मेज पर रख दिया। अच्छा, तो बात यह है, इन बोहिमियन लड़कियों को फिर चोट लगी। फिर कहीं कांच का गिलास टूटा। यह सोच कर मिस सलमा जलीस को बड़ा मजा आया और संतोष भी हुआ। निस्संदेह ये बोहिमियन और विलासी लड़कियां कितनी टूट-फूट कर रह गई हैं। आईना चकनाचूर है और उनका प्रतिबिंब भी। एक मैं हूं!

अंजली ने लचक कर और अकारण हंस कर छोटा सा 'जिन' का गिलास, जिसका रंग आरेंज स्क्वैश ने जैतूनी बना दिया था, मिस सलमा जलीस की ओर बढ़ाया और सदा की तरह उसे अपने दोस्त के बढ़े हुए नाजुक हाथ पर उभरती हुई नीली रगें देख कर बड़ी खुशी हुई।

"पियो और अपना गम गलत करो!"

मिस सलमा जलीस ने थरथराते हुए हाथ से गिलास ले लिया।

अंजली ने तीखी नजरों से उसे देखा। यह मिस साहिबा अपने आपको दुर्लभ सैंट की शीशी समझती है। बचा-बचा कर रखती है। कार्क-बंद, मोहर-बंद और देखो, इनके हाथों की रगों को देखो, और आंखों के गिर्द झुर्रियों को देखो। क्या मैं नहीं जानती कि इस फीकी सुर्खी में कैसा फीका नीला रंग छिपा हुआ है? कमरे में रखे हुए कैक्टस में, और मैदान में उगे हुए वृक्ष में बड़ा अंतर होता है। बड़ी स्नाब है यह लड़की! लेकिन ये रगें और झुर्रियां! मैं इस समय ठेठ औरत की तरह सोच रही हूं। यही होता था। महीने में, इस कमरे में न जाने कितनी बार यही होता था—ये तीन लड़कियां, मोनिका, अंजली और मिस सलमा जलीस ग्रहण-लगे नक्षत्रों की तरह टकरा जाती थीं। रोती थीं और अलग हो जाती थीं।

जिंदगी में इसके सिवा और क्या था ? अगर कुछ था तो तल्ख बातें थीं, कुछ ठंडे लहू-लुहान अनुभव थे, कुछ बगावत की थकी हुई इच्छा थी। यह था और शायद यह न भी था, सिर्फ ऐसा लगता था। रश्क और निराशा का सन्नाटा था और शायद सन्नाटा भी नहीं था।

मोनिका ने एकाएक ही रोते हुए कहा, "मैं अठारह वर्ष की थी, जब मेरी शादी कर दी थी। भूल नहीं सकती वह रात! उसने मुझ से एक बात नहीं की। उसने मुझे छूआ भी नहीं। बस, ऐसे लगा जैसे कि किसी ने मुझे दहकती हुई तलवार पर उठा लिया है।" उसने गिलास होंठों से लगा लिया। उसके होंठ धीरे-धीरे बंद हो रहे थे और आंखें डबडबा रही थीं। "और जब मैं उसे छोड़ कर भागी...अब तो खैर बारह वर्ष हो गए हैं...और अब..."

उसके आंसू टप-टप जाम में गिरते रहे और वह आंखें बंद करके जाम को होंठों से लगाती रही, जिनकी सुर्खी ढलती जा रही थी।

मिस सलमा जलीस को मोनिका पर बड़ा रहम आया, 'हाय! ये तराशे हुए होंठ! यदि मेरे होंठ भी ऐसे ही होते, मुसाफिरों को पुकारने वाले होंठ।' मिस सलमा जलीस और अंजली ने यह दास्तान बार-बार सुनी थी और बार-बार उसे रोते देखा था। लेकिन उनको यह मालूम नहीं था कि आज तक एक बार भी मोनिका ने अपने आशिकों से बेवफाई की शिकायत नहीं की थी और कभी किसी आशिक ने उसकी हसीन आंखों को भीगते हुए नहीं देखा था। मिस सलमा खामोश थी। वह जो ऐसे अवसरों पर कला और कलचर की नजाकतों पर, इंसान की आदि-कालीन तनहाई और इश्क के इल्यूजन पर नाटक की तकनीक और भारतीय साहित्य में पश्चिमी साहित्य के अनुकरण पर, बड़े-बड़े चिंतकों की होमो-सैक्सुअल जिंदगी पर लच्छेदार अंदाज में बोलती चली जाती थी, उस समय मौन थी। बार-बार उसके दिल में कोई कह रहा था, 'मुकेश बड़ा गधा है, लेकिन इतना बड़ा नहीं जितना बड़ा अंजली उसे समझती है।'

"तुम किसके बारे में सोच रही हो ?" अंजली ने मिस सलमा जलीस से पूछा।

"अपने बारे में..." उसने गिलास होंठों पर लगा लिया।

"इसमें भला क्या रखा है ?" मोनिका की आवाज हजारों मील दूर से आई। उसकी आंखें बंद थीं।

मिस सलमा का शरीर कांप रहा था और वह अपने शरीर से लड़ रही थी। और शरीर किसी भीतरी तूफान से..."हां, मैं अपने बारे में सोच सकती हूं। मैं मिटी हुई रेखा नहीं हूं।" उसकी आवाज रुंध गई और वह होंठ चबाने लगी।

"हर आदमी अपने लिए जीता है और अपनी खुशी तलाश करता है, अपने ढंग से।"

मोनिका की आंखें बंद थीं और आंसू खुश्क हो चुके थे। उसकी साड़ी कंधे से ढलक कर सोफे और फर्श पर बिछ गई थी। अंजली ने उसकी ओर देखा और बड़ी घृणा से सोचा, 'जब यह झेल नहीं सकती तो पीती क्यों है ?'

"जरा तुम इस गधे की सूरत नहीं देखतीं..." मोनिका चिल्लाई, "ओ गाड! पैरों पर गिर रहा है और कह रहा है...मुझे छोड़ कर न जाओ!" मोनिका हंसने लगी।

'हरगिज कोई तुम्हारे पैरों पर न गिरा होगा। नीचे खड़ा हुआ इंसान खड़ी चट्टान से गिरते हुए झरने को रोकता नहीं, वह तो...' अंजली ने दिल में कहा, कुछ सोचा और मिस जलीस से बोली, "जानती हो, मेरा दिल चाहता है कि मैं पुराने जिन्नों-परियों की कथाओं वाली परी होती! हर रात कोई मुसाफिर लाया जाता, गबरू, नौजवान। उससे शर्त लगती, आओ, मुझसे जो चाहो ले लो, लेकिन सुबह को एक पहेली बूझनी पड़ेगी। न बूझी तो तुम्हारा सिर धड़ से जुदा हो जाएगा, जिस तरह तुम मुझ से जुदा हो जाओगे और जब उसका सिर उड़ता तो उससे एक पल पहले वह सोचता—'पहेली न बूझने में भी कितना आनंद है!' ये मर्द बड़े गधे होते हैं—क्यों सलमा...?"

"होते होंगे!" मिस सलमा जलीस ने कंधे उचकाए और अपने आप से पूछने लगी, 'सचमुच बताओ, तुम किसी मर्द को जानती हो ?'

'मुझ से कभी किसी मर्द ने इश्क नहीं किया। और मैं इंतजार करती रही। पैंतीस वर्ष बहुत होते हैं! पैंतीस वर्ष की प्रतीक्षा! मैं पुस्तकें पढ़ती रही। एक बार, अर्सा हुआ, शायद यह पिछले जन्म की बात है। केवल एक बार, एक मर्द ने मुझे चूमा...और वह भी किसी तरह भागती रेलगाड़ी से उतरते हुए और फिर वह न मिला। न जाने कौन था ? मुझे याद भी नहीं। वह थी पहली और अंतिम मुलाकात। मेरे अंदर छिपी हुई औरत से किसी मर्द की मुलाकात। ...अब कुछ याद नहीं। हां, इतना याद है कि उसके मुंह से बड़ी बुरी, तम्बाकू की बू आ रही थी। मर्द मेरे पास से सदा परछाइयों की तरह गुजरते रहे। डरते हुए, लरजते हुए...और कैंब्रिज की शाम, जब मैंने पहली बार 'शैरी' चखी और मेरा सिर चकराया तो मैं समझी, नशा आ रहा है। मैंने पास रखी हुई कुर्सी पर हाथ रखना चाहा और मेरा हाथ एक भरे हुए कंधे पर चला गया...और वह उस युवक का, शोले की तरह उठना और मुझे नाच के भंवर की ओर ले चलना...और मैं समझी, मुझे नशा आ रहा है। हाउ फुलिश...! शैरी से भला किसी को नशा आ सकता है!'

मोनिका ने आंख खोली। अंजली कमरे में नहीं थी। उसने मिस सलमा को पहचानने का प्रयत्न किया, जिसकी आंखें मुंदी हुई थीं। उसके पतले होंठ कांप रहे थे। मोनिका ने बड़े संतोष से पर्स खोला और उसमें से नींद की गोलियों की शीशी निकाली और सारी गोलियां जाम में गिरा दीं और जाम को नचाने लगी। जाम हवा में नाच रहा था और

...जाम में शराब और शराब में गोलियां! जब अंजली कमरे में आई तो वह जाम खाली कर चुकी थी।

मोनिका धीरे-धीरे सोफे पर लेट गई।

मिस सलमा जलीस उठी, "गुड नाइट!"

"यहीं सो जाओ। उस उजाड़ कमरे में कौन इंतजार कर रहा है ?" अंजली ने थकी हुई आवाज में रोका।

"नहीं, कमरें को मेरा इंतजार है।" मिस सलमा जलीस ने हमेशा की तरह कहा।

वह निकली और साये की तरह अपने कमरे की ओर चलने लगी, जहां वृक्षों में हवा सरसरा रही थी...

अंजली ने बत्ती बुझा दी और कुर्सी पर गिर गई।

मोनिका का दिल बहुत धीरे-धीरे धड़क रहा था। वह न अपने दिल की धड़कन सुन रही थी और न उस दिल की जो उसकी कमर से नीचे धड़कने से पहले खामोश हो गया था।

नींद की गोलियां चुपचाप अपना काम कर रही थीं।

अंजली अंधेरे में सोच रही थी, 'अब के मोनिका फंस गई। बेचारी मोनिका!' उसने खिड़की से बाहर देखा, 'और वह स्नाब की बच्ची...!'

दूसरी मंजिल पर रोशनी जली और कमरे में उजाला हो गया। अंजली ने मिस सलमा जलीस को अपनी साड़ी नोंच कर फेंकते हुए, बालों की सुइयां निकालते हुए देखा। फिर बत्ती बुझ गई और हर तरफ खामोशी छा गई, हालांकि मिस सलमा जलीस अंधेरे में दीवारों से बातें कर रही थी।

'वहीं शृंगार-मेज, वही पुस्तकें, वही फूलदान, वही बिस्तर...'

जब हम न होंगे

बशेषर प्रदीप

यह गर्म कोट उसके स्वर्गीय पति का था। पिछली सर्दियों में वह यह गर्म कोट पहना करता था। वैसे यह गर्म कोट लगभग आठ वर्ष पुराना था। रिटायर होने के बाद, यह प्रथम और अंतिम कोट था जो उसके पति ने बनवाया था। उसने निरंतर आठ सर्दियां उसे पहना था और अब उसका रंग भी हल्का पड़ गया था। तीन-चार जगह से सिला हुआ था। दो-तीन जगह से रफू किया हुआ था और यह मरम्मत वह समय-समय पर स्वयं करती रही थी। उस समय तीन बटनों में से सिर्फ एक बटन लगाना था, लेकिन उसे बटन नहीं मिल रहा था। और अब उन सर्दियों में वह खुद ही यहां नहीं है। वह, जो उसे पहना करता था। अब वह इसे कभी नहीं देख सकेगा। कभी नहीं...!!

उसके बूढ़े सीने के अंदर धड़कते हुए दिल को जैसे किसी ने मसल दिया हो। उसके सूखें होंठ फड़फड़ा उठे। उनमें से एक लंबी ठंडी आह निकाली और उसकी बूढ़ी आंखें भीग गईं। चेरी जैसी उन आंखों के कोनों से अश्रुओं की दों बूंदें निकलीं और उसने अथाह पीड़ा से आंखें बंद कीं तो दो कतरे वहां से निकल कर, उसके झुर्रियों-भरे गालों पर बहते चले गए।

वह ऊपर वाले कमरे में रखे बड़े ट्रंक में से कपड़े निकाल रही थी। अपने नव-जात पोते के लिए किसी उतरे हुए स्वेटर की तलाश में कपड़े निकालते हुए अचानक ट्रंक के एक कोने में से यह फटा-पुराना गर्म कोट निकल आया था। और इस कोट ने उसे उसके पति की याद दिला दी थी। उसकी नजरों के सामने अपने पति का चेहरा घूम गया था। झुर्रियों-भरा कमजोर सा चेहरा, बढ़ी हुई सफेद दाढ़ी, सिर पर चारों ओर छितरे से सफेद बाल। बीच में तो उसका सिर बिलकुल खाली था और वहां की हल्की जद र्स. ब्राल, तेल लगाने से चमकने लगी थी। पिछली सर्दियों में वह पैंसठ साल का था और उसकी अपनी आयु उस समय साठ वर्ष की थी। चालीस साल! कितना लंबा अर्सा होता है, चालीस साल! लेकिन कितना थोड़ा सा लगता है। उस समय चालीस साल का वह सारा अर्सा एकाएक ही उसकी नजरों के सामने घूम गया। इतना लंबा अर्सा सिमट कर उस एक क्षण में समा

गया। चालीस वर्ष की साझी जिंदगी की झांकियां बड़ी तेजी से बगैर किसी क्रम के, उसकी नजरों के सामने से गुजर गईं और फिर उसके बाद एक अंतराल सा आ गया, जैसे उसके दिमाग का पर्दा अचानक खाली हो गया हो। फिल्म के इंटरवल में सिनेमा के पर्दे की तरह। वह कोट लिए पास पड़े एक छोटे से ट्रंक पर बैठ गई—निराश सी, निढाल सी, खोई हुई सी। वही झांकियां उसे फिर नजर आने लगीं—लेकिन अब की बार ये झांकियां धीरे-धीरे, एक-एक करके उसके सामने से गुजर रही थीं—यह उसकी शादी का दिन था। वह दुल्हन बनी थी और वह उसे ब्याहने आया था। यूं लगता है, जैसे कल ही की बात हो! लेकिन वह कल तो बीत गया था—और 'कल' बीत जाता है तो फिर कभी वापस नहीं आता, चाहे उसे बीते हुए चौबीस घंटे ही क्यों न हुए हों। सहेलियों का झुरमुट, शादी का हंगामा, बारात के आने का शोर, माता-पिता के घर से उसकी विदाई। नया घर...सुहाग रात—सभी कुछ तो उसे याद है। एक बात भी तो वह नहीं भूली—बात बीत जाती है लेकिन उसकी याद रह जाती है। जाने क्यों...?

विवाह के बाद वह उसे कितना प्यार करता था। कहा करता था—'जमुना! हम दोनों साथ जीएंगे, साथ ही मरेंगे।' उससे जुदाई का विचार ही उसे निराश कर देता था। जब भी वह मायके जाने के लिए तैयार होती, वह आंखों में आंसू भर लेता और फिर वह भी अधिक अर्सा मायके में न रह सकती। चंद ही दिनों बाद लौट आया करती। लेकिन इन थोड़े से दिनों में भी वह उसे कितने ही पत्र लिख डालता था, लंबे-लंबे पत्र—वह तो ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी। कितनी ही देर लग जाती उसे पत्र पढ़ने में। वह मुश्किल से थोड़ा सा लिख पाती। केवल एक-दो पत्र ही लिखती थी और वह हमेशा उसे जताया करता—'तुम्हारे हृदय में तो मेरे लिए प्यार है ही नहीं—वरना हर पत्र का उत्तर न देतीं!'

और वह केवल हंस कर रह जाती। क्या दिन थे वे भी! उफ!! उसके हृदय में एक हूक सी उठी और उसने दुख और दर्द से अपनी आंखें मूंद लीं। सिर को हल्का सा झटका देकर, उसने बीते दिनों की याद को जहन से परे हटाने की कोशिश की, लेकिन याद थी कि दिमाग में घुसी चली आ रही थी। दूसरे ही क्षण वह फिर यादों के प्रवाह में बह रही थी।

शादी के पूरे डेढ़ वर्ष बाद उनके बच्चा हुआ। उनका पहला बच्चा बिलकुल बाप की शक्ल का था। जब वह उसे गोद में लेकर बैठती, तो उसे यूं अनुभव होता, जैसे वह स्वयं छोटा सा, नन्हा सा बच्चा बन कर उसकी गोदी में आ बैठा हो। और इस विचार के आते ही, वह बच्चे का मुंह चूम लेती। उसे बेतहाशा चूमने लगती। उसे भी तो बहुत प्यारा लगता था वह। जब कभी बीमार हो जाता, तो वह खाना-पीना भूल जाता। डाक्टरों के चक्कर पर चक्कर लगाया करता। रात को उठ-उठ कर उसे देखता। वह बच्चा था भी तो बहुत

प्यारा। नन्हा-मुन्ना सा। प्यार से वह उसे 'भोला' कह कर बुलाया करते थे। उसका नाम तो अभी रखा ही न था—उसकी गोद में पड़ा हुआ भी 'ट्याओं-ट्याओं' किया करता—रोता बहुत था वह। अरे वही भोला, जो अब उनका बड़ा लड़का है। जो कालेज में प्रोफेसर है। प्रोफेसर दीनानाथ—जिसका अब अपना तीसरा बच्चा पैदा हुआ है। हां, वही, जो बात-बात पर उसे कहता है, "तुम तो समझती ही नहीं, मां!" जो पिता को कहा करता था, "तुम ख्वाहमख्वाह दखल देते हो, बापू। तुम चुपचाप पड़े रहा करो।" ये लड़के जब बड़े हो जाते हैं, पढ़-लिख जाते हैं, तो अपने माता-पिता को मूर्ख समझने लगते हैं। ऊंह! उसे अच्छी तरह याद है कि उसके पति ने अपने लड़कों की शिक्षा के लिए अपनी जमीन बेच दी थी। हर बार जब उसे उनकी शिक्षा के लिए आवश्यकता होती तो वह जमीन का कोई टुकड़ा बेच देता और उसे बताता भी नहीं था। वह सोचता—यह बात उसको क्या बतानी है ? लेकिन फिर भी वह जान जाती और जानने के बाद वह दिल ही दिल में प्रसन्न होती कि अपनी औलाद के भविष्य के लिए वह अपनी जायदाद की भी परवाह नहीं कर रहा है। उसने तो यह कभी सोचा ही नहीं था कि वही लड़के बड़े होकर अपनी-अपनी संपत्ति बनाने की चिंता में माता-पिता की खुशियों की भी परवाह न करेंगे।

उसने एक ठंडी सांस भरी और बेकाबू सी होकर घुटने पर रखे कोट में अपना मुंह छिपा लिया। कोट में उसे एक जानी-पहचानी सी सुगंध आई। उसकी मृत्यु के बाद वह कोट धुलवाया नहीं गया था। उसमें रची-बसी खुशबू अब भी आ रही थी। वह कितनी देर कोट में मुंह छिपाए बैठी रही। उसे ऐसे लगा जैसे उसका पति कोट पहन कर कहीं बाहर जाने के लिए तैयार हुआ है। जाती बार वह उसकी ओर अपनी बांहें फैला देता है और वह उसकी बांहों में समा जाती है। उसके सीने में मुंह छिपा लेती है। उसके नथुनों में उसके पति की सुगंध घुस जाती है। लेकिन ऐसा तो इस कोट के सिलवाने के बाद कभी नहीं हुआ था। यह तो इस कोट से पहले वाले कोट, बल्कि उससे भी पहले वाले कोटों के समय की बात है। कोट पर कोट बदलते गए और यह सिलसिला भी खतम हो गया। उनके बच्चे जो बड़े हो गए थे।

उसने एक ठंडी सांस ली और विवश होकर कोट पर से मुंह हटा लिया। अब वह हथेली पर चेहरा टिकाए सामने देख रही थी—पहले की तरह यादों में डूबी हुई। नीचे से उसके पोते के रोने की आवाज आई, लेकिन वह उसी तरह बैठी रही। उसे यह आवाज कहीं दूर से आती हुई सुनाई दी। उन यादों की पृष्ठभूमि में उसने इस हल्की सी, निरर्थक सी आवाज की ओर कोई ध्यान न दिया—यदि वह इस समय नीचे होती तो उसे अपने रोते हुए पोते को गोद में उठा लेना पड़ता। उसकी बहू उससे यही अपेक्षा करती थी। और उस समय वह यादों में न खोई हुई होती, तो पोते को ऊपर से पुचकार देती या नीचे ही

चली जाती। लेकिन अब वह उसी तरह बैठी हुई थी। वह उस समय कमरे में होते हुए भी नहीं थी। वह सोच रही थी। उसका पति यद्यपि स्वभाव का बहुत कोमल था, पर कभी-कभी उसे बहुत गुस्सा आता था। और जब उसे गुस्सा आता था, तो वह आगे-पीछे नहीं देखता था। जो लोग कभी-कभार गुस्से में आते हैं, उनका गुस्सा बहुत तेज होता है। गुस्से में आकर तो एक बार उसने रोटी की थाली ही फेंक दी थी। बात क्या थी ? यही न कि तरकारी स्वादिष्ट नहीं बनी थी! उसने जब यह बात बताई तो वह उसका कारण सब्जी का खराब होना बताने लगी—और वह चिढ़ गया। कहने लगा, 'तुम अपना दोष मानती ही नहीं हो। अपनी गलती मेरे सिर मढ़ती हो—मुझसे नहीं खाई जाती। कुत्तों को डाल दो।'

और उसने थाली उठा कर बाहर फेंक दी। वह बिलकुल कुछ न बोली—और थोड़ी देर बाद फजा साफ हो गई थी। जब भी उसे गुस्सा आता था, वह चुप हो जाया करती थी। नहीं तो बात बढ़ सकती थी। जब वह जानती थी कि उसका गुस्सा अस्थाई था तो वह बात का जवाब देकर बात क्यों बढ़ाती ? और फिर वह उसे चाहता भी बहुत था। जबरदस्ती उसे फल खिलाता। जब कभी वह बीमार पड़ती, वह व्याकुल हो जाता। एक दिन जब वह सख्त बीमार हुई थी, यानी जब उसका दूसरा लड़का पैदा हुआ था जो अब सचिवालय में मुलाजिम है, तो डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। उस समय अर्द्धचेतना की अवस्था में उसे, उसकी मां से अर्थात अपनी सास से कहते सुना था, 'अगर जमुना को कुछ हो गया तो मैं यह दुनिया ही छोड़ दूंगा। जंगल में चला जाऊंगा। वीरानों में जीवन व्यतीत करूंगा। तुम इन बच्चों को संभाल लेना।'

लेकिन वह न मरी। अब उसके बाद पैंतीस वर्ष बीत चुके थे और वह अभी जीवित है, पर वह खुद उससे पहले चल बसा। कितनी विचित्र बात है! जब वह उससे दूर चला जाता था—दफ्तर के किसी काम के संबंध में—तो वह किस बेसबरी से इंतजार किया करती थी! परंतु अब...अब न जाने वह किस काम से चला गया है—उसका यह काम तो कभी खतम न होगा—कभी नहीं...वह कभी वापस न आएगा...कभी नहीं। और उसका दिल भर आया। एक बार उसने ठंडी सांस भरी। एक बार फिर उसके गालों पर अश्रु बहने लगे ...उसने कुछ क्षण उन्हें बहने दिया। फिर उसने अपनी सूखी हुई अंगुलियों से गालों को पोंछा। नाक को साफ किया। आंखों को खुश्क किया और फिर यादों में खो गई।

उसने हमेशा अच्छे दिनों के सपने देखे थे, लेकिन अच्छे दिन कभी न आए। वह सारी उम्र क्लर्क ही रहा। यहां तक कि पेंशन पा गया। पचास रुपये मासिक पेंशन। हां, अलबत्ता उसके बेटे जरूर अमीर हैं। लेकिन उन्हें क्या...? अमीर बेटों के माता-पिता होते हुए भी, उनके पास रहते हुए भी, वे खुद गरीब थे, बेटों पर जो निर्भर करते थे। अब यही छोटी

बेटी के विवाह पर उसकी कितनी चाह थी कि उसे अच्छा दहेज दे ताकि उसकी बेटी ससुराल में अपना सिर ऊंचा रख सके। गौरव से कह सके कि वह बड़े घर की बेटी है। बड़ी बेटी की शादी उसने अपनी हैसियत के अनुसार बहुत अच्छी तरह की थी। लेकिन अब उसके बेटों ने अपनी मर्जी के मुताबिक खर्च किया और वह चुपचाप देखता रहा। उस वक्त वह रिटायर हो चुका था। केवल पेंशन ही उसकी निजी आय थी। वह करता भी क्या ? और अब उसकी लड़की दुखी है। वे लोग उसे ताने देते हैं। बड़े घर की कंजूसी के ताने। परंतु उसके पुत्रों ने इसकी कभी परवाह नहीं की। जैसे वह उनकी बहन ही न हो। ऐसी बातों से उसे कितना दुख होता था। कभी-कभी तो वह इस दुख से निढाल हो जाता था। तभी तो उसकी सेहत जल्दी खराब हो गई थी और वह चारपाई पर पड़ गया था। बेटों के खुशहाल होने से, अपनी खुशहाली में फर्क न पड़े, तो क्या लाभ ऐसी संतान का ? वह बीमारी में कहा करता था, 'मेरे मरने के बाद यह पचास रुपये मासिक की पेंशन भी बंद हो जाएगी। तुम्हारी तो मिट्टी खराब हो जाएगी, जमुना!'

और वह उसे सांत्वना देती, 'तुम ठीक हो जाओगे।' लेकिन वह ठीक न हुआ। उसकी सेहत गिरती गई। तीन साल लगातार बीमार रहा। बहुएं तो जैसे उसकी बीमारी से तंग आ गई थीं। उसकी खांसी से जब उन लोगों की नींद खुल जाती थी, तो कैसे बड़बड़ाती थीं वे...!

हे भगवान! जैसे उनको तो बुढ़ापा आएगा ही नहीं। कुछ बीमारी के कारण, कुछ बहुओं के बरताव के कारण और कुछ लड़कों की ओर से खर्च में कंजूसी के कारण, वह अकसर बिलबिला उठता—'अब तो भगवान मुझे उठा ही ले तो अच्छा है।' और उसकी बढ़ती हुई तकलीफ को देख कर वह भी सोचा करती—अब उसका जीवन भी कोई जीवन है! इस तकलीफ पाने से तो कहीं बेहतर है कि वह खत्म हो जाए।

हां, वह यही सोचा करती थी। वह जो उसके बगैर रह नहीं सकती थी। वह जो संसार में सिर्फ उसी को अपना साथी समझती थी, वह भी चाहती थी कि वह मर जाए...उफ वह यह क्या सोचती थी! लेकिन करती भी क्या..? उससे, उसका दुख जो न देखा जाता था। वह उसकी सेवा करने से थोड़ा घबराती थी। जब वह निरंतर चार महीने अस्पताल के जनरल वार्ड में पड़ा रहा, तो वह कैसे नियमित रूप से दोनों वक्त उसके पास जाती थी। किसी दिन तो पैदल ही इतनी दूर...रिक्शा के पैसे बचाने के लिए। उन बचाए हुए पैसों से उसके लिए कोई फल खरीदने के लिए। बीमारी के दिनों में वह चिड़चिड़ा भी तो कुछ अधिक हो गया था। चिड़चिड़ा और जिद्दी। जानबूझ कर ऐसा काम करता, जिससे कष्ट बढ़ जाए। डाक्टर ने ठंडी तासीर की चीजें खाने को मना किया था और उसने जाने किस तरह गन्ने का रस मंगवा कर पी लिया और इससे उसकी तकलीफ बढ़ गई। उस

समय क्रोध में उसने भी तो उसे बुरा-भला कहा था। लेकिन फिर वह सोच कर चुप हो रही कि इसमें उसका कसूर नहीं है। बीमारी और मन में छिपे दर्द के कारण वह इस प्रकार के काम करता है जैसे किसी से बदला ले रहा हो। अपने बेटों से, अपनी बहुओं से, अपने इर्द-गिर्द—सब से बदला...।

और अब तो उसे यह दुनिया छोड़े हुए भी एक वर्ष हो रहा है। घर के दूसरे लोगों को तो जैसे कोई अंतर ही महसूस नहीं होगा, लेकिन उसे यूं लगता है जैसे वह अकेली रह गई हो। इस घर में, इस भरे संसार में। बेटे-बेटियों, पोते-पोतियों के होते हुए भी अकेली—अकेली और बेसहारा। वह कहा करता था...।

'मरने के बाद आदमी देख भी तो नहीं सकता कि पीछे उसके प्रिय जनों का, उसके घर का, उसके शहर का क्या हाल है ? शायद मरने वाले देखने आते हों ? क्यों...?'

लेकिन वह चुप रहती थी। वह क्या जाने...? यह तो कुदरत का गोरख-धंधा है। वह तो बस इतना जानती है कि उसे उसकी बहुत याद आती है। उसे अपना जीवन खाली-खाली सा महसूस होता है। इस बुढ़ापे में वही उसका सहारा था।

उसने कोट को उलट-पलट कर देखा और मुस्कुरा दी। एक निराशा भरी मुस्कुराहट।

'देख ले, बुड्ढे! तुम्हें कितना याद करती हूं।'

लेकिन अब कहां है वह बुड्ढा...? उफ! अब तो केवल उसका यह कोट रह गया है। उसके इस्तेमाल की सारी चीजें खतम हो गई थीं या खतम कर दी गई थीं। केवल यह कोट बचा था। अब यही उसकी निशानी थी। इस कोट को वह यूं ही इस ट्रंक में पड़ा रहने देगी। इसे देखने से उसके पति की तस्वीर उभर आती है। और उसने कोट को तह कर दिया, ताकि फिर से ट्रंक में रख दे। अभी वह उसे ट्रंक में रख ही रही थी कि उसकी बड़ी बहू ऊपर कमरे में आ गई।

"अम्मा...मिला कोई स्वैटर...?"

और उसने अपने प्रश्न का उत्तर पाने से पहले ही एक और प्रश्न कर दिया—"अरे यह कोट तो बाबू जी का है ना ?...लाओ तो, इसमें से नन्हें का एक कोट निकल सकता है। अभी तो कपड़ा काफी मजबूत है।" और उसने हाथ बढ़ा कर वह कोट ले लिया। उसे ऐसे अनुभव हुआ जैसे उसकी रही-सही पूंजी भी किसी ने छीन ली हो।

"नहीं बहू! इस कपड़े का बना हुआ कोट नन्हें को अच्छा नहीं लगेगा।" उसने अपने पति की इस निशानी को बचाने की कोशिश की। बहू से कैसे कहे कि यह उसके पति की अंतिम निशानी है, इसे यूं ही पड़ा रहने दो!

उसने हसरत-भरी नजरों से कोट को देखा। बहू उसे उलट-पलट कर देख रही थी। जाने बहू को उसकी बात सच मालूम हुई या उसे कोई और विचार आ गया, वह उसे कोट

वापस करते हुए बोली, "हां, रहने दो। इस कपड़े से बना कोट उसे अच्छा नहीं लगेगा।" और बहू दूसरे ट्रंकों में से कुछ तलाश करके चली गई। उसने वह कोट तह करके ट्रंक में रख दिया और संतुष्ट सी नीचे आ गई। अपने सबसे छोटे पोते की चारपाई के पास से गुजरी तो वह उसे सपने में हंसता हुआ दिखाई दिया। उसी के लिए वह स्वैटर ढूंढ़ने गई थी, किसी दूसरे पोते का उतरा हुआ स्वैटर...। सपने में उसे हंसता हुआ देखा तो वह ठिठक गई। उसके सिरहाने खड़ी होकर उसे बड़े चाव से वह देखने लगी। और फिर जैसे भावना ने उस पर जादू कर दिया हो। उसने सोए हुए उस बच्चे को चूम लिया। इतने जोर से चूमा कि बच्चा जाग गया और रोने लगा। लेकिन वह फिर भी उसे चूमे जा रही थी और थोड़ी देर बाद वह अपने पोते को गोद में लिए जमीन पर बिछी चिटाई पर बैठी, अपने पति का वही गर्म कोट कैंची से काट रही थी, उस कोट में से कपड़ा निकाल कर उस कपड़े से अपने पोते का कोट बनाने के लिए...। उसकी बहू हैरान थी कि सास ने एकदम अपना विचार क्यों बदल दिया...? अभी थोड़ी देर पहले तो कह रही थी, इस कपड़े से बना कोट नन्हें पर सजेगा नहीं...और ?...बहू की हैरानी से भरी नजरें वह पहचान गई...लेकिन वह उसे कैसे बताती कि उसे नन्हें के रूप में, अपना स्वर्गीय पति नजर आ गया था!

चांद और कमंद

बलवंत सिंह

जलहन गांव का थानेदार नवाब सिंह वर्दी पहन लेने के बाद सुबह का नाश्ता कर रहा था कि थाने का एक सिपाही ढीली-ढीली पगड़ी और उलझी-उलझी दाढ़ी वाले अधेड़ उम्र के एक आदमी को साथ लिए आ पहुंचा। आते ही उसने कहा, "इसका नाम करतार सिंह है। धम्मी वाले से आया है।" धम्मी वाला गांव नवाब सिंह के इलाके ही में था। अंग्रेज के शासन-काल में धाम बदमाशों को छोड़ कर, आम ग्रामीण पुलिस के सिपाही तक से थर-थर कांपते थे और यहां तो करतार सिंह के सामने पुलिस-अफसर था। पुलिस-अफसर भी नवाब सिंह जैसा, जिसने बदनाम गुंडों के गढ़, जलहन में अपनी धाक जमा रखी थी। नवाब सिंह ने दिमाग पर जोर डालते हुए करतार सिंह से पूछा, "यह धम्मी वाला वही है न, जलहन से दो कोस पूरब की ओर ?" थानेदार की नजर पड़ते ही करतार सिंह यूं लड़खड़ा गया, जैसे किसी ने उसके सीने पर घूंसा जमा दिया हो। हाथ जोड़ कर हकलाते हुए बोला, "आहो जी, सरकार। वही धम्मी वाला। मैं वहां का नंबरदार हूं।" नंबरदार के अचानक आ धमकने का अर्थ यही हो सकता था कि उसके गांव में कत्ल हुआ है या कोई और संगीन वारदात हो गई है। पूछा, "खैरियत तो है ?"

"सब खैरियत है जी...मैं यह बताने आया हूं कि कल शाम से सूरत सिंह हमारे गांव में मौजूद है।" नवाब सिंह ने गाढ़ी लस्सी से तर अपनी चिकनी मूंछों को अंगोछे से पोंछते हुए सिपाही की ओर देखा। "यह सूरत सिंह कौन है ?" सिपाही काफी समय से इस इलाके में काम कर रहा था और उसकी जानकारी विशाल थी। नवाब सिंह को सरकार ने कुछ ही महीने पूर्व जलहन के बदमाशों को दबाने के लिए तैनात किया था। बोला, "हजूर! सूरत सिंह अच्छा खूबसूरत और तगड़ा गबरू है। उसने अभी-अभी पर निकाले हैं। उसने कत्ल या कोई और बड़ा जुर्म तक नहीं किया। लेकिन कुछ छोटी-मोटी चोरियों के सिलसिले में दरकार है। वैसे वह धम्मी वाले में रहता है।" कुछ कहते-कहते सिपाही झिझक कर रह गया। नवाब सिंह जानना चाहता था कि सूरत सिंह धम्मी वाले में किस गर्ज से आया था ? "तो ?" नंबरदार ने हिम्मत से काम लेते हुए कहा, "सरकार! धम्मी वाले में सूरत

सिंह अपनी मासूका से मिलने आया है। उस लड़की का नाम परसिन्नी है, परसिन्नी!"

न सिपाही को, और न नंबरदार को इस बात का अहसास हो पाया कि परसिन्नी के नाम ने नवाव सिंह के सीने में कैसी हलचल मचा दी है! उसके चेहरे से कुछ प्रकट नहीं हुआ। उसने भारी आवाज में सवाल किया, "तो क्या यह...परसिन्नी धम्मी वाले में रहती है ?"

"नहीं, सरकार।" नंबरदार ने उत्तर देते हुए कहा, "लड़की भी कहीं और की रहने वाली है। हमारे गांव में उसकी विधवा मौसी रहती है। वह उसी के यहां आती है।"

नाश्ता खत्म हो गया। डील-डौल वाला नवाब सिंह चारपाई से उठ खड़ा हुआ और सिपाही को संबोधित करके बोला, "मेरा घोड़ा तैयार करो।"

"आप कितने सिपाही अपने साथ ले जाएंगे?"

"मैं अकेला ही जाऊंगा।"

नवाब सिंह पौरुष और गरिमा का प्रतीक था। उसके कद-काठी, डील-डौल और तेवर देख कर बड़े-बड़ों की हवा सरक जाती थी। रंग चाहे गंदमी था और चेहरे पर कभी-कभी बल पड़ जाते थे, लेकिन कुल मिला कर वह खासा आकर्षक नजर आता था। उसके रोब-दाब की तो हद ही नहीं थी। इलाके भर के नौजवानों और बिगड़े-दिल गुंडों के दिल दहल कर रह जाते थे। और वे उसके एक ही झांपड़ से खून थूकने लगते थे। यह सब कुछ जानते हुए भी पुलिस का सिपाही नहीं चाहता था कि वह अकेला सूरत सिंह को गिरफ्तार करने के लिए जाए, क्योंकि वह बदमाश न सिर्फ अपनी शारीरिक शक्ति के लिए प्रसिद्ध था बल्कि वह मुंहफट था और हाथ-पैर भी चला बैठता था।

सिपाही को असमंजस में देख कर नवाब सिंह के माथे पर गहरे बल पड़ गए। थोड़ी देर बाद, अपने तेज-तर्रार घोड़े पर सवार होकर नवाब सिंह धम्मी वाला की ओर उड़ा जा रहा था।

धम्मी वाला गांव के बाहर नंबरदार का छोटा भाई खेतों में खड़ा बेचैनी से अपनी दाढ़ी खुजला रहा था। यह तो वह जानता था कि उसका भाई थाने में रिपोर्ट करने के बाद शहर को चला जाएगा, ताकि सूरत सिंह को उस पर संदेह न हो। अब वह बदमाश गांव से खिसकने ही वाला था। इसलिए वह खेतों में खड़ा बेचैनी से पुलिस के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। आखिर तेज धूप में से एक अकेला घुड़सवार आता दिखाई दिया। उसी समय गली में खड़े एक बारह-वर्षीय लड़के ने इशारे से बताया कि सूरत सिंह गांव की दूसरी ओर निकल गया था। गोया अब वह वहां से जाने ही वाला था। इसलिए जब नवाब सिंह निकट पहुंचा, उसने पहले हाथ जोड़ कर "सत सिरी काल" कही और फिर बोला, "सरकार, वह बदमाश गांव के परली ओर खिसक गया है।" संभव तथा सूरत सिंह

को उसके आने की खबर मिल गई थी। नवाब सिंह ने लगाम को झटका दिया तो घोड़ा गांव की सीमा-रेखा से होकर दौड़ निकला और उसके सुमों से गीली जमीन से नन्हें-नन्हें पौधे उखड़ कर इधर-उधर उड़ने लगे। मनोरंजन की खातिर कुछ कुत्ते भी सवार के साथ-साथ दौड़ने लगे। जब सवार गांव की दूसरी ओर पहुंच कर रुक गया तो कुत्ते भी कलंदरों जैसे अजीब अंदाज और बेरुखी के साथ दायें-बायें बिखर गए।

गांव जरा ऊंची जगह पर स्थित था। नवाब सिंह की उकाबी नजर झटपट सूरत सिंह पर जा टिकी। परसिन्नी उसके पास खड़ी थी। घोड़ा नथुने फड़काता हुआ मचल रहा था। आज एक अर्से के बाद उसकी और परसिन्नी की आंखें चार हुई थीं। वह जितनी सुंदर थी, उतनी ही मासूम भी दिखाई देती थी। अब भी उसका वही हाल था। नवाब सिंह ने कभी खुल कर उससे अपना प्यार प्रकट नहीं किया था। ऐसा करना उसके स्वाभिमान और मान-मर्यादा के विरुद्ध था। तो भी परसिन्नी भली-भांति जानती थी कि वह उस पर मरता है। उसने जानबूझ कर उस पर सूरत सिंह को महत्व दिया। इसका कारण भी बिलकुल स्पष्ट था। सूरत सिंह निस्संदेह उतना ही सुंदर था जितना कि कोई नवयुवक हो सकता है। फिर भी थानेदार को देखते ही, सूरत सिंह अपनी महबूबा से विदा लेकर बड़े-बड़े डग भरता हुआ, खेतों की ओर चल दिया। यह देख कर नवाब सिंह ने घोड़े को एड़ लगाई और पलक झपकते ही, फरार होते हुए युवक को जा धरा और घोड़ा उसके आगे रोक कर बोला, "क्या तुम्हारा नाम सूरत सिंह है ?" "आहो।" सूरत सिंह ने हामी भरी। नवाब सिंह उसे ध्यानपूर्वक देख रहा था। उसकी नयी उगी दाढ़ी के बाल भूरे और नरम थे। कानों में बालियां और सीने के छोटे-छोटे बालों पर सोने का कंठा लटक रहा था। उस जमाने के बांकों की तरह पगड़ी में उसके बालों का बड़ा सा जूड़ा बाहर को उठा हुआ था और उस पर कस कर बंधी हुई जाली के रंगीन फुंदने कान के करीब झूल रहे थे। हैरानी की बात तो यह थी कि वह भी बहुत भोला नजर आता था। पुलिस का रिकार्ड भी सामने हो, तो भी विश्वास न आए कि यह आदमी खतरनाक मुजरिम हो सकता है। सूरत सिंह के चेहरे पर डर के चिह्न दिखाई देते थे। नवाब सिंह ने सपाट आवाज में कहा "तुम्हें मेरे साथ थाने चलना होगा।" इतने में परसिन्नी भी उनके पास पहुंच गई। कुछ दूरी पर गांव के कई मनचले घूरे के ढेरों पर खड़े यह तमाशा देख रहे थे। पुलिस-अफसर की बात सुन कर सूरत सिंह का मुंह मुस्कुराहट में बायीं ओर को खिंच गया और उसके दांतों में जड़ी हुई सोने की कीलें दमक उठीं। वह घुड़सवार को अपनी भूरी आंखों से देखता हुआ बोला, "धत् थानेदारा! यह कोई गल तां ना होई। तुरदे बंदे नूं तूं घोड़ा नसा के फड़ लया ऐ।" (ऐ थानेदार! यह कोई बात तो न बनी...पैदल चलते हुए आदमी को तूने घोड़ा दौड़ा कर पकड़ लिया है।) नवाब सिंह ने देखा कि परसिन्नी के चेहरे पर घबराहट की जगह अब

गौरव और बेपरवाही के चिह्न उभर रहे थे। वह घोड़े से उतर पड़ा। सूरत सिंह ऊंचे-लंबे आकार का था, नवाब सिंह उससे ज्यादा ऊंचा था। सूरत सिंह का शरीर कोमल नहीं, कमाया हुआ था। लेकिन नवाब सिंह उससे ज्यादा डील-डौल वाला था। प्रेमी-प्रेमिका के देखते-देखते थानेदार ने करीब के बबूल के वृक्ष की शाख में घोड़े की लगाम अटका दी और खेत की मुंडेर पर बैठ कर भारी-भरकम बूटों के तसमे खोलते हुए बोला, "सूरत सिंह, अब मेरे और अपने बीच जितना फासला डालना चाहो, डाल सकते हो, एक खेत, दो खेत के बाद, या जहां से जी चाहे, मुझे आवाज देकर दौड़ पड़ना।"

थानेदार बिलकुल गंभीर दिखाई दे रहा था और उसकी आवाज में हंसी नाम मात्र भी नहीं थी। उसकी बात सुन कर पहले तो सूरत सिंह को आश्चर्य हुआ और फिर मारे खुशी के उसका चेहरा चमक उठा। उसने परसिन्नी की ओर 'फिर मिलेंगे' के अदांज से नजर डाली और खेतों की ओर चल दिया। इस दौरान नवाब सिंह और परसिन्नी की आंखें क्षण भर को भी न मिलीं। आखिर दो खेत पार कर जाने के बाद, सूरत सिंह ने आने का इशारा किया और नवाब सिंह उसकी ओर दौड़ पड़ा। गांव वालों के लिए यह तमाशा बड़ा ही अनोखा और देखने योग्य था। मुजरिम और थानेदार आगे-पीछे भागते चले जा रहे थे। सूरत सिंह को अपनी बिजली जैसी तेज गति पर बड़ा अभिमान था, लेकिन उसने महसूस किया कि थानेदार भी एक बला था। वह रेल के इंजन की सी तेजी के साथ दौड़ रहा था और पल-पल उसके निकट पहुंच रहा था। अब पहली बार सूरत सिंह को डर पैदा हुआ। उसने पूरी ताकत से गति को तेज किया, मगर आखिर उसका दम टूट गया। उसने देखा कि थानेदार उसके पहलू से निकल कर आगे बढ़ गया। चालीस-पचास कदम बढ़ जाने के बाद, वह पलट पड़ा और पास आकर अत्यंत गंभीरता से पूछने लगा—"धत, सूरत सिंह, हुण ठीक है ना ?" सूरत सिंह हैरान-परेशान चुपचाप खड़ा था। नवाब सिंह ने फिर कहा, "अच्छा, तो चले जाओ...मैं जाकर मौजे और बूट पहन लूं।" थानेदार गांव की ओर दौड़ने लगा। सूरत सिंह के दिल में अब संदेह की गुंजाइश ही नहीं रही थी कि ऐसे थानेदार के चुंगल से बच कर फरार होना संभव नहीं है! कुछ संकोच के बाद, वह भी गांव की ओर चल दिया। मौजे और बूट पहन कर नवाब सिंह घोड़े पर सवार हो गया। गांव के लोग अब भी दूर खड़े यह तमाशा देख रहे थे। लगाम हाथ में थाम कर नवाब सिंह ने परसिन्नी के उदय होते हुए, पूर्णिमा के चांद से चेहरे पर नजर डाली तो उसे अनुभव हुआ कि वह किसी ऊंची शान वाली रानी के हुस्न-दरबार में खड़ा है। वह अब भी उससे प्यार करता था।

सूरत सिंह निराश खड़ा परसिन्नी की ओर अत्यंत मजबूरी और बेबसी के अंदाज से देख रहा था। इतने में उसके कानों में थानेदार की आवाज आई, "सूरत सिंह! अब तुम्हें

मेरे साथ थाने जाने की जरूरत नहीं है। लेकिन शर्त यह है कि आगे के लिए कभी मेरे इलाके में कदम रखने की हिम्मत न करना।"

घोड़े की टापों के शोर से फजा एक बार फिर गूंज उठी। कुछ मस्त कलंदर कुत्ते घोड़े के पीछे दौड़े, लेकिन उसकी धूल को भी न पा सके। सूरत सिंह ने सुख की सांस ली। वह इस घटना की पृष्ठभूमि से वाकिफ नहीं था। उसने महबूबा का हाथ, अपने हाथ में लेकर जरा दबाते हुए कहा, "अब हम एक साथ यहां से कहीं दूर निकल जाएंगे।" परसिन्नी ने बड़ी बेरुखी के साथ धीरे-धीरे अपना हाथ छुड़ा लिया और धीमी लेकिन कटार की सी आवाज में बोली, "नहीं, कभी नहीं।"

वह

बलराज मैनरा

जब उसकी आंख खुली, वह वक्त से बेखबर था। उसने दायां हाथ बढ़ा कर बेड-टेबल से सिगरेट का पैकिट उठा लिया और सिगरेट निकाल कर होठों में थाम लिया।

सिगरेट का पैकिट फेंक कर, उसने फिर हाथ बढ़ाया और माचिस तलाश की। माचिस खाली थी।

उसने खाली माचिस कमरे में उछाल दी।

खाली माचिस छत से टकराई और फर्श पर आ पड़ी।

उसने टेबल-लैंप जलाया।

बेड-टेबल पर चार-पांच माचिसें उलटी-सीधी पड़ी हुई थीं।

उसने बारी-बारी सब को देखा। सब खाली थीं।

उसने रजाई उतार फेंकी और कमरे की बत्ती जलाई। दो बज रहे थे।

आज यह नींद बेवक्त कैसे खुल गई ?

एक बार आंख खुल जाए, फिर आंख नहीं लगती!

उसने सारा कमरा छान मारा।

किताबों की अलमारी, रद्दी की टोकरी, पतलून की जेबें—माचिस कहीं न मिली।

उसने एक-एक किताब उलट दी—कोई दियासलाई न मिली।

कमरे की हालत बुरी हो गई थी।

किताबें उलटी-सीधी पड़ी हुई थीं। कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे। ट्रंक खुला हुआ था। कोई आ जाए इस समय!

रात के दो बजे...कमरे की यह हालत ?

सिगरेट उसके होंठों में कांप रहा था।

सुलगते सिगरेट और धड़कते दिल में कितनी समानता है!

माचिस कहां मिलेगी ?

माचिस कहीं न मिली तो...?

तो कहीं..

मेरा धड़कता हुआ दिल खामोश न हो जाए!

आज यह असमय ही नींद कैसे खुल गई!

मैं वक्त से बेखबर था...एक बार आंख खुल जाए, तो फिर आंख नहीं लगती।

माचिस कहां मिलेगी ?

उसने चादर कंधों पर डाल ली और कमरे से बाहर आ गया।

दिसंबर की ठंडी रात थी। अंधेरे का साम्राज्य, खामोशी का पहरा।

किसी एक ओर कदम उठाने से पहले, वह कुछ क्षण सड़क के बीच में खड़ा रहा।

जब उसने कदम उठाए, वह रास्ते से बेखबर था।

रात काली थी। रात खामोश थी और दूर-दूर, जहां तक नजर जाती थी, कोई दिखाई नहीं दे रहा था।

लैंप-पोस्ट का क्षीण प्रकाश रात के अंधेरे और खामोशी को गहरा कर रहा था और..

चौराहे पर उसके कदम रुक गए।

यहां तेज रोशनी थी, दूधिया ट्यूबें चमक रही थीं, लेकिन खामोशी ज्यों की त्यों थी क्योंकि सारी दुकानें बंद थीं। उसने हलवाई की दुकान की ओर कदम बढ़ाए।

संभव है, भट्ठी में कोई कोयला मिल जाए, दहकता हुआ कोयला, जलता-बुझता कोयला।

हलवाई की दुकान के चबूतरे पर कोई लिहाफ में गठरी बना सो रहा हो।

उसने भट्ठी से झांका ही था कि चबूतरे पर बनी गठरी खुल गई।

"कौन है ? क्या कर रहे हो ?"

"मैं भट्ठी में सुलगता हुआ कोयला ढूंढ रहा हूं।"

"पागल हो क्या...भट्ठी ठंडी पड़ी है!"

तो फिर ? घर जाओ!

"माचिस है आपके पास ?"

"माचिस ?"

"हां, मुझे सिगरेट सुलगाना है।"

"तुम पागल हो! जाओ! मेरी नींद मत खराब करो। जाओ।"

"तो माचिस नहीं है, आपके पास ?"

"माचिस सेठ के पास होती है। वह आएगा और भट्ठी गरम होगी। जाओ तुम!"

वह सड़क पर आ गया।

सिगरेट उसके होंठों में कांप रहा था।

उसने कदम बढ़ाए।

चौराहा पीछे रह गया, तेज रोशनी पीछे रह गई। क्या-क्या न पीछे रह गया!

उसके कदम तेजी से उठ रहे थे।

लैंप-पोस्ट, लैंप-पोस्ट, लैंप-पोस्ट, अनगिनत लैंप-पोस्ट पीछे रह गए।

धीमी रोशनी वाले लैंप-पोस्ट जो रात के अंधेरे और खामोशी को गहरा करते हैं।

सहसा उसके कदम रुक गए। सामने से कोई आ रहा था। वह उसके पास पहुंच कर रुक गया।

"माचिस है आपके पास ?"

"माचिस ?"

"मुझे सिगरेट सुलगाना है।"

"नहीं, मेरे पास माचिस नहीं है, मैं इस इल्लत से बचा हुआ हूं।"

"मैं समझा...।"

"क्या समझे ?"

"शायद आपके पास माचिस हो।"

"मेरे पास माचिस नहीं है। मैं इस इल्लत से बचा हुआ हूं और अपने घर जा रहा हूं। तुम भी अपने घर जाओ।"

उसने कदम बढ़ाए।

सिगरेट उसके होंठों में कांप रहा था।

वह धीमे-धीमे कदम उठा रहा था, कि थक गया था।

वक्त से बेखबर उसके थके-थके कदम उठ रहे थे।

लैंप-पोस्ट आता, मद्धिम रोशनी फैलती हुई दिखाई देती और फिर अंधेरा, फिर लैंप-पोस्ट, मद्धिम रोशनी, फिर अंधेरा।

वह होंठों में सिगरेट थामे धीमे-धीमे कदम उठा रहा था।

उसकी दूर, अंदर फेफड़ों तक धुआं खींचने की तलब तीखी हो गई थी।

उसका बदन टूट रहा था।

रात को सोने वाले लिबास और चादर में उसे सर्दी लग रही थी।

वह कांप रहा था और कांपते कदमों से धीरे-धीरे बढ़ रहा था। वक्त से बेखबर, लैंप-पोस्टों से बेखबर!

एक बार फिर उसके कदम रुक गए। उसकी नजरों के सामने खतरे का निशान था। सामने पुल था। मरम्मत-मांगता पुल।

दुर्घटनाओं की रोक-थाम के लिए लाल कपड़े से लिपटी हुई लालटेन सड़क के बीच,

एक तख्ते से लटक रही थी।

उसने लालटेन की बत्ती से सिगरेट सुलगाने के लिए कदम उठाया ही था कि...

"कौन है ?"

वह चुप रहा।

अंधेरे की एक अनजानी तह खोल कर सिपाही उसकी ओर लपका।

"क्या कर रहे थे ?"

"कुछ नहीं!"

"मैं कहता हूं, क्या कर रहे थे ?"

"आपके पास माचिस है ?"

"मैं पूछता हूं, क्या कर रहे थे और तुम कहते हो माचिस है...कौन हो तुम ?"

"मुझे सिगेरट जलाना है, आपके पास माचिस हो तो...।"

"तुम यहां कुछ कर रहे थे ?"

"मैं लालटेन की बत्ती से सिगरेट सुलगाना चाहता था...आपके पास माचिस हो तो ?"

"तुम कौन हो...कहां रहते हो ?"

"मैं...।"

"कहां रहते हो ?"

"माडल टाऊन!"

"और तुम्हें माचिस चाहिए..माडल टाऊन में रहते हो...माडल टाऊन कहां है ?"

माडल टाऊन! उसने घूम कर संकेत किया।

दूर-दूर जहां तक नजर जाती थी, अंधेरा फैला हुआ था।

"चलो मेरे साथ, थाने तक...माडल टाऊन...? माडल टाऊन यहां से मील के फासले पर है...माचिस चाहिए ना! थाने में मिल जाएगी।"

सिपाही ने उसका हाथ थाम लिया।

वह सिपाही के साथ चल पड़ा।

थाना उसी सड़क पर था जो खत्म होने को न आती थी।

वह सिपाही के साथ थाने के एक कमरे में प्रविष्ट हुआ।

कमरे में कई आदमी एक बड़ी मेज के गिर्द बैठे हुए थे। सब सिगरेट पी रहे थे।

मेज पर सिगरेट के कई पैकिट और कई माचिसें पड़ी हुई थीं।

"साहिब! यह शख्स पुल के पास खड़ा था। कहता है, माडल टाऊन में रहता हूं और माचिस-माचिस की रट लगाये हुए है।"

"क्यों रे ?"

"अगर आप आज्ञा दें तो आपकी माचिस इस्तेमाल कर लूं...मुझे अपना सिगरेट सुलगाना है!"

"कहां रहते हो ?"

"माडल टाऊन। क्या मैं आपकी माचिस ले सकता हूं ?"

"कौन हो तुम ?"

"मैं अजनबी हूं! क्या मैं माचिस...?"

"माडल टाऊन में कब से रहते हो ?"

"तीन महीने से! माचिस..."

"माचिस...माचिस का बच्चा...अजनबी...जाओ अपने घर...वरना बंद कर दूंगा.. माचिस..."

जब वह थाने से बाहर आया, वह बुरी तरह थक चुका था।

उसने इस न खत्म होने वाली सड़क पर धीमे-धीमे चलना शुरू किया।

उसकी नाक 'सूं-सूं' करने लगी थी और उसका बदन टूटने लगा था।

सिगरेट पीना एक इल्लत है!

मैंने यह इल्लत क्यों पाल रखी है ?

माचिस कहां मिलेगी ?

न मिली तो ?

वह वक्त से बेखबर था, लैंप-पोस्टों से बेखबर था, सड़क से बेखबर था, अपने शरीर से बेखबर था।

वह गिरता-पड़ता बढ़ रहा था।

उसके लड़खड़ाते हुए कदमों में नशे का सा आलम था।

पौ फटी और वह दम भर को रुका।

दम भर को रुका और संभला।

संभला और उसने कदम उठाना ही चाहा था कि...

सामने से कोई आ रहा था और उसके कदम लड़खड़ा रहे थे।

वह उसके करीब आकर रुका!

उसके होंठों में सिगरेट कांप रहा था।

"आपके पास माचिस है ?"

"माचिस ?"

"आपके पास माचिस नहीं है ?"

"माचिस के लिए तो मैं..."

वह उसकी बात सुने बिना ही आगे बढ़ गया।

आगे, जिधर से वह खुद आया था।

उसने कदम बढ़ाया।

आगे, जिधर से वह आया था।

कंप्यूटर प्रेम

जुगिंदर पाल

आज इस झंझट की फुरसत किसे है कि शादी से पहले साल-छह महीने लड़कियों के पीछे भागा-भागा फिरे ? फिर साल-छह महीने इंतजार में बरबाद करे और उसके पश्चात कहीं जाके किसी गलत या सही निष्कर्ष पर पहुंचे कि कौन सी लड़की उसे रास आएगी !

शामी से मेरी भेंट आईडियल मैरेज एंड डाईवोर्स लिमिटेड के आफिस में हुई। इस कंपनी के कंप्यूटर, स्त्री और पुरुष के स्वभावों के विरोध या अनुकूलता को सभी विस्तारों सहित, बड़ी गैर-व्यक्तिगत सच्चाई से बयान कर देते हैं। यहां हर प्रकार के आदमी और औरत का संपूर्ण कंप्यूटर रिकार्ड मौजूद रहता है और कंपनी के पास, नाम रजिस्टर कराने के एक-दो दिन बाद फर्स्ट रेट मशीनें उनकी पसंद का निर्णय कर देती हैं।

पिछले महीने एक मित्र की सिफारिश पर मैं भी मैरेज एंड डाईवोर्स लिमिटेड के आफिस जा पहुंचा। रिसेप्शन में मैं अभी सोफे पर बैठा ही था कि उन्हें शायद अपनी किसी मशीन की सहायता से मेरे आने की सूचना मिल गई।

दो-चार मिनटों में ही एक बड़ी प्यारी होस्टैस ने मेरे स्वागत के लिए कमरे में प्रवेश किया। पहली ही नजर में वह मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने सोचा, इसी के समक्ष शादी का प्रस्ताव रख दूं, मगर इस विचार से चुप बैठा रहा कि शायद कंप्यूटर इस महिला को मेरे लिए उपयुक्त न समझते हों।

वह मेरे इतने निकट आ कर बैठ गई कि मेरा मस्तिष्क किसी यांत्रिक सुई की भांति उसके अस्तित्व पर झुक गया, परंतु होस्टैस ने इधर-उधर की बातों में एक क्षण भी खोए बिना मेरे सामने एक फार्म रख दिया।

"इस फार्म पर हस्ताक्षर कर दीजिए और हमारी प्रोफैशनल फीस, पांच सौ, का चैक लिख कर इसके साथ लगा दीजिए। मैं पांच मिनट बाद आप की कंप्यूटिंग के लिए आ जाऊंगी।"

उसने पीठ फेरी तो फार्म को पढ़े बगैर मैंने उस पर हस्ताक्षर कर दिए और चैक-बुक के लिए मैं अपनी जेब टटोलने लगा।

पांच मिनट में मैं कुछ बोर हुआ, कुछ अपनी होने वाली बीवी के बारे में सोचता रहा, कुछ कंप्यूटर के बारे में और बार-बार उस होस्टैस के बारे में जो इतनी दृढ़ है कि उसकी खूबसूरती का खयाल आते ही वह खयाल दिल से निकल जाता है, फिर आता है और झट ही फिर निकल जाता है...लो, वह आ गई।

"आइए।"

मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया।

"इधर, इस कमरे में आ जाइए।"

मुझे ऐसे लग रहा था कि मेरे स्थान पर मेरी टांगें चल रही हैं, मेरी अपनी कोई मर्जी नहीं है।

"सब से पहले इस सर्किल में खड़े हो जाइए। आपका वजन...?"

"मगर वजन की मशीन कहां है ?"

"यहीं है! परंपरागत मशीन इंसानों की तरह धोखा खा सकती है, मगर हमारे कंप्यूटर की मानसिक बनावट उत्कृष्ट है।"

मैं सर्किल में खड़ा हो गया। "वजन कहां से पता लगता है ?"

"इसकी चिंता करना आपका काम नहीं। कंप्यूटर को आपका वजन स्वयं मालूम हो जाएगा और वह अपने आप उसे रिकार्ड भी कर लेगा—वैरी गुड! अब आप सर्किल से बाहर निकल आइए और दीवार के उस कोने में खड़े हो जाइए। कद के माप के लिए—वैरी गुड! अब उस केबिन में जाके अपने सारे कपड़े उतार दीजिए और दो मिनट वहां खड़े रहिए।"

"क्या कंप्यूटर मुझे वहां देख रहा होगा ?"

"कंप्यूटर हर समय, हर स्थान पर, सब कुछ देखता है।"

मुझे ऐसा लगा कि कोई पादरी अपने परमात्मा के गुणों का उल्लेख कर रहा है। केबिन के अंदर जा कर मैं जल्दी-जल्दी अपने कपड़े-उतार रहा था और मेरे दिमाग में होस्टैस की खूबसूरती का खयाल बार-बार आ रहा था और बार-बार जा रहा था।

"दो मिनट हो गए हैं। अब कपड़े पहन कर बाहर आ जाइए।" मैं शीघ्र ही कपड़े पहन कर केबिन से बाहर आ गया।

"आइए, अब इधर आइए।" होस्टैस ने मुझे एक बोर्ड के सामने ला खड़ा किया। बोर्ड पर कई प्रश्न अंकित थे और प्रत्येक प्रश्न के आगे एक से अधिक उत्तर भी दिए हुए थे।

"सोचे बगैर इन प्रश्नों में जो आपको सही लगते हों, उनके सामने के बटन दबाते चले जाएं।"

सब हिदायतों को सोचे-समझे बगैर मैंने कई बटन दबाने के बाद अंतिम बटन दबाते हुए, दूसरी बार यह प्रश्न पढ़ने के लिए अपना हाथ रोक लिया। 'यदि मूर्ख मर्दों से अकलमंद स्त्रियां खुश हों और मूर्ख औरतों से अकलमंद मर्द, तो आपका चयन मूर्खता होगी (बटन) या अकलमंदी (बटन) ?'

मैंने तीसरी बार प्रश्न पढ़ कर, न जाने कौन सा बटन दबा दिया।

"आइए, अब रिजल्ट-रूम से भी हो आएं।" होस्टैस और मैं एक गलियारे में से गुजर कर, एक बंद दरवाजे के सामने आ खड़े हुए। होस्टैस ने दरवाजे पर लगा हुआ बटन धीरे से दबा दिया। "कम इन !" अंदर से आवाज सुन कर मैं चौंक पड़ा ओर सोचने लगा कि वहां शायद कोई मशीनी पुतला, हमारे अंदर प्रवेश करने की प्रतीक्षा कर रहा है। परंतु मुझे और अधिक सोचने का अवसर न मिला। मैंने होस्टैस के पीछे कमरे में कदम रखा और हैरानी से इधर-उधर देखने लगा, क्योंकि कमरे में कोई जीव तो नजर नहीं आ रहा था और फिर मैं अपनी मूर्खता पर हंस पड़ा। मशीनों में जान आ जाए तो उनकी समझ-बूझ इतनी स्वस्थ कैसे रहे ? एकदम कुछ सोच कर, मैंने होस्टैस की ओर देखा और पल भर के लिए चकरा सा गया।

"आपकी सोच भी स्व-चालित है या आप हमारी तरह सोचती हैं ?"

"इस कंपनी में काम करने वाले सब लोग हमारे कंप्यूटर के ही कल-पुर्जे हैं—वो देखिए, आपका कार्ड कंप्यूट होकर आ रहा है।"

बाईं दीवार की पुश्त से रेलिंग पर एक ट्रे अपने आप हमारी ओर आ रही थी। इस ट्रे में एक कार्ड रखा हुआ था जिसे होस्टैस ने उठा लिया। "पंद्रह अंक! खूब!"

"हमारे पास इसी नंबर के अंकों की एक महिला मौजूद है जो तत्काल शादी करना चाहती है। आप कल दोपहर बाद ठीक तीन बजे तशरीफ ले आइए, सब तय हो जाएगा। समय की पाबंदी का ध्यान रखिएगा, प्लीज!"

दूसरे दिन ठीक तीन बजे होस्टैस, मेरी होने वाली पत्नी और मैं एक ही समय पर रिसेप्शन के दरवाजे पर पहुंचे। दरवाजे से पहले हमारा एक-दूसरे से बस इतना ही फासला होगा, जितना किसी क्लाक पर घंटे, मिनट और सेकिंड की सुई का फासला एक-दूसरे से होता है।

"मिस शामी, मिस्टर रावल।" होस्टैस ने हमारा एक-दूसरे से परिचय कराके, हमें रिसेप्शन-रूम में बिठा दिया।

"कंप्यूटर का कहना है कि आप दोनों एक-दूसरे के लिए ही बनाए गए हैं—आप एक-दूसरे को पसंद करते हैं ना ?"

"पहली नजर का प्यार!" मुझे शेक्सपियर के रोमांटिक पात्रों का खयाल आया, "सर्वशक्तिमान कंप्यूटर की सहायता तथा कृपा से!"

मैंने सोचा कि शेक्सपियर के पात्रों को 'पहली नजर के प्यार' से घर बसाने तक पहुंचते-पहुंचते ख्वाहमख्वाह मुसीबतों का शिकार होना पड़ता था, जैसे यात्रा के आधुनिक साधनों के बगैर दो-चार मील का सफर पुराने लोगों के लिए समस्या बन जाता था! लेकिन आज कंप्यूटर ने हमारे सारे रास्ते साफ और समतल कर दिए हैं।

"क्या आप एक-दूसरे को बहुत पसंद करते हैं ?" होस्टैस का चेहरा मेरी तरफ झुका हुआ था।

मुझे खेद सा हुआ कि मैंने तत्काल उत्तर क्यों नहीं दिया और जैसे इस उपेक्षा की पूर्ति की खातिर बड़े चावपूर्ण स्वर में कहा, "आई लव यू!" और फिर सहसा यह देख कर घबरा सा गया कि यह वाक्य मैंने होस्टैस से कहा है और फिर एकदम अपनी होने वाली पत्नी की ओर मुंह करके दोहराया, "आई लव यू, मैडम!"

हम दोनों की सुशीलता से मालूम होता था कि प्यार के प्रदर्शन के बजाए हम अपने-अपने काफी के कप में शक्कर मिला रहे हैं।

"वैरी गुड!" हमारी होस्टैस ने अपना संतोष व्यक्त किया। "क्या आप शीघ्र ही शादी करना पसंद करेंगे या पहले कुछ दिन कोर्टशिप करेंगे ?"

"कोर्टशिप में समय बरबाद करने की क्या जरूरत है ?" मिस शामी ने मेरे हृदय की बात कही।

"कंप्यूटर पर हमें पूरा विश्वास है।"

"और आपको ?"

"मुझे भी।" मैंने होस्टैस को जवाब दिया।

"वैरी गुड!" होस्टैस ने कहा, "कंप्यूटर का मत कभी गलत सिद्ध नहीं होता। लीजिए, इस फार्म पर हस्ताक्षर कर दीजिए। शादी का लाइसेंस कल शाम तक आपको पोस्ट कर दिया जाएगा।"

"क्या हम...?"

"हां, क्यों नहीं ? आप चाहें तो आज रात ही अपनी सुहाग-रात मना सकते हैं। क्या आपके जाने के लिए टैक्सी का प्रबंध कर दिया जाए ?"

"हां, थैंक यू!"

"नो डार्लिंग, हम बस में जाएंगे। फिजूल-खर्ची से काम मत लो।"

और मैंने किसी आज्ञाकारी पति की तरह सिर झुका कर जवाब दिया, "यैस डार्लिंग, तुम ठीक कहती हो। मुझे भी असल में बस में ही जाना पसंद है।"

"कंप्यूटर सदा सच बोलता है—वैल डन! गुड बाई!"

मगर शादी के दो महीने के अंदर ही मुझे विश्वास होने लगा कि कंप्यूटर से कहीं कोई गलती जरूर हो गई है। शामी डार्लिंग का भी यही विचार था कि हमने शादी करके गलती की है।

"मुझे शादी की जल्दी न होती तो कंपनी को डबल फीस देकर मैं कंप्यूटर के परिणाम की जांच करा लेती। हो सकता है, तुम्हारे अंक सिर्फ पांच हों और कार्ड पर पांच के साथ एक का अंक गलती से आ गया हो।"

"हां, हो सकता है।" शामी से पतित्व का इकरार क्या इस बात का प्रमाण नहीं कि मैं केवल पांच अंकों का आदमी हूं ? मगर मुझे अपने आप पर गुस्सा आ रहा था कि मैंने शादी का निर्णय करते हुए अपने इन पांच अंकों से भी काम क्यों न लिया!

"तुम शायद पांच अंकों के भी आदमी नहीं हो, डार्लिंग! मेरा विचार है कि हम फिर कंप्यूटर से संपर्क स्थापित करें, अपने-अपने परिणामों की जांच कराने के लिए!"

"ओह नो...! तुम निश्चय ही पांच अंकों से भी कम हो, अब भला परिणाम की जांच कराने से लाभ...? गलती का प्रमाण तो प्रत्यक्ष है।"

"तो फिर कंप्यूटर से संपर्क स्थापित करने का फायदा, डार्लिंग ?"

"मैं चाहती हूं, अब हम कंप्यूटर से अपने तलाक के संबंध में पूछें।"

"हां, डार्लिंग!" मैंने अपनी मुक्ति के खयाल से खुश होकर फौरन अपनी पत्नी से सहमति प्रगट की।

"मगर मुझे अफसोस है कि कंप्यूटर की फीस चुकाने के लिए मेरी अगली तनख्वाह तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। "

न जाने क्यों यह मूर्खों जैसी इच्छा मेरे मन को गुदगुदाने लगी कि मैं होस्टैस के सामने शादी का प्रस्ताव रखूं। मगर वह भी कैसे हो सकता है! होस्टैस के तो कम से कम पच्चीस अंक होंगे। मुझ जैसे पांच पति वह एक ही समय घर में डाल सकती है। मगर इसमें क्या हर्ज है ? रोज-रोज न सही, पांच रोज में एक रोज सही ! वह अपनी यांत्रिक तत्परता के कारण दिमाग में आते ही भूल जाती है। पांच रोज में चार रोज अपने आप भूली रहेगी और पांचवें रोज...मुझे अपनी इच्छा के औचित्य पर इसलिए संदेह नहीं हो रहा था कि मेरा मन—कंप्यूटिंग मशीन की रद न की जा सकने वाली सुई की भांति, होस्टैस के वजूद के ठीक ऊपर झुका हुआ था।

मोम की मरियम

जिलानी बानो

आज भी कमरे में लेटा-लेटा मैं भांति-भांति के विचारों में खोया हुआ हूं। और जब भी अंधेरा छा जाता है, तुम न जाने कहां से निकल आती हो। जैसे तुमने अंधकार के गर्भ से जन्म लिया हो। मजबूर होकर मुझे जले हुए सिगरेट की राख की तरह तुम्हें भी जहन से झटक देना पड़ता है।

मैंने कभी तुम्हारे सामने हाथ नहीं फैलाए। कभी तुम्हारी आवाज पर कविताएं नहीं लिखीं, कभी तुम्हारी याद में तारे गिनने का कार्यक्रम नहीं बनाया। फिर मैं तुम्हें क्यों याद करता जाऊं ? जीवन में तुम से इतनी दूर रहा कि कभी रंग और सुगंध के सैलाब में डूब न सका, जो तुम्हारे चारों तरफ फैला रहा। हमारे बीच झूठी श्रद्धा और व्यंग्यात्मक आदर की खाई बनी रही—फिर आज तुम अपनी आहों और सिसकियों से कौन सी भावनाएं जगाना चाहती हो!

मुझे आज सुबह ही आसिया के खत से तुम्हारी मृत्यु की खबर मिल चुकी है। परंतु मैं इस मृत्यु पर शोक प्रकट न कर सका और न जाने कितने बादल बिना बरसे चले जाते हैं। कितने नगमें साज के अंदर ही दम तोड़ कर रह जाते हैं। कितने इंसान एक क्षण भर की खुशी ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मर जाते हैं। फिर तुम्हारी मौत तो मेरे सामने कई बार हो चुकी है, हालांकि शारीरिक रूप से तुम चलती-फिरती नजर आती थीं, बिलकुल ऐसे जैसे आज मेरे कमरे में आ बैठी हो।

मगर इस समय मैं तुम्हारे काल्पनिक वजूद से बातें नहीं कर रहा हूं, क्योंकि जब तुम्हारी जानी-पहचानी सिसकियां तुम्हारे वजूद का विश्वास दिला रही हों तो मैं इसे भ्रम कैसे समझ लूं ? तुम्हारा और अंधेरे का सदा साथ रहा है। तुम जहां-जहां भी गईं, चिराग गुल होते गए। अंधेरे के घेरे तुम्हें अपनी बांहों में लेते गए, जिस तरह मरियम के चित्र के चारों ओर चित्रकार रोशनी का घेरा बना देता है। श्रद्धा तथा भोलेपन की रेखाएं, जिनके भीतर मरियम की आत्मा को कैद कर दिया गया है (औरत की आत्मा को कैसे-कैसे शिकंजों में कसा गया ?)। इस समय भी जब तुम्हारे भविष्य की भांति मेरे कमरे में अंधेरा छाया हुआ है,

तुम्हारे आंसू यूं चमक रहे हैं, जैसे किसी ब्राह्मण ने नदी के तल पर दीपों की पंक्तियां सजा दी हों। मेरे कमरे में तुम्हारे आंसुओं ने उजाले की आशा बनाए रखी है। (हम पूरब के मर्द शताब्दियों से अपने विलास में तुम्हारे अश्रुओं से जश्न मनाते आए हैं) तुम्हारे बारे में लोगों ने जो कहानियां प्रचलित कर रखीं थीं, वे बिलकुल सतही थीं। इसीलिए मैंने वास्तविकता की रोशनी में आकर तुम्हें समझाना चाहा। तुम क्या थीं ? अमावस की रात को टूटने वाला एक सितारा जो अपनी आखिरी झलक से बहुत से दिलों में आशा की एक किरण जगा कर लुप्त हो जाए। एक तेज लहर जो अपने तेज थपेड़ों से, तट को तहस-नहस करने के साथ स्वयं भी मिट गई हो।

आज जब तुम अपने गुनाहों की लंबी सूची समेत स्वयं ही मेरे कमरे में आ गई हो, मुझे स्वीकारना पड़ता है कि तुम एक साधारण लड़की होने के बावजूद दूसरों से कितनी भिन्न थीं! तुम एक मुग्ध कर देने वाला जादू बन गईं जो कितने ही खरीदारों को खींच लाया, मगर सूंघा हुआ फूल समझ कर सब वापस चले गए।

दुकानदार के लिए वह चीज कितनी तुच्छ हो जाती है जिसे ग्राहक उलट-पलट कर फिर दुकान में रख दे!

कांच के केस में बंद रहने वाली गुड़िया...आज तुम इतनी साफ-साफ बातें सुन कर हैरान क्यों हो रही हो, जबकि तुमने आसपास के शीशमहल चकनाचूर कर डाले थे और समाज की खींची हुई रेखाओं पर चलने से इंकार कर दिया था! एक बार तुम सब लड़कियों को आंगन में ऊधम मचाते देख कर अम्मी ने कहा था—

"ऊंह, मत रोको उन निगोड़ियों को...कुंवारी लड़कियां बरसाती चिड़िया होती हैं। कौन जाने कल किस की डोली दरवाजे पर खड़ी होगी!"

उस समय अखबार पढ़ते-पढ़ते मैंने तुम्हारे जीवन की पूरी फिल्म देख डाली।

जब तुम किसी नासिर, शाहिद, क्लर्क से विवाह रचा कर आंसू पोंछती डोली में बैठ कर चली जाओगी। हर वर्ष एक मुन्ने का जन्म होता रहेगा और आठवें या दसवें मुन्ने के जन्म पर तपेदिक का शिकार होकर मर जाओगी...हर लड़की अपनी लकीरों पर दौड़ती आई है, मगर तुमने अपनी विलक्षणता से एक नया रास्ता ढूंढ़ना चाहा, जिस की सजा में तुम पर मौत और जिंदगी हराम हो गईं।

तुम मंझले चाचा की दसवीं या ग्यारहवीं संतान थीं और नामुराद लड़की...।

"ऊं हूं, लड़की है तो क्या ? नसीब अच्छे हों। लड़के कौन सा फायदा पहुंचाते हैं? माता-पिता की मृत्यु पर आंसू बहाने वाली तो बेटी ही होती है।"

और अपनी मौत पर मातम मनाने वाली के पैदा होते ही किसी ने तुम्हें 'स्वागतम्' न कहा। अपने आस-पास के इस वातावरण ने तुम्हें अधिक संवेदनशील बना दिया।

नफरत-भरी नजरों ने तुम्हारे स्वाभिमान को मधुमक्खी के छत्ते की तरह छेड़ दिया और तुमने कुछ करने, कुछ पाने की प्रतिज्ञा कर ली। तुम्हारे बारे में बदनामियां और कानाफूसियां बढ़ती गईं। जाहिल, बद-दिमाग, कुरूप और मगरूर जैसे शब्द तुम्हारे नाम के साथ जुड़ गए, लेकिन तुम एक नन्हीं सी चिड़िया की भांति बड़े गौरव से कहतीं, "जो मेरे पास है, राजा के महल में नहीं।" इसी आत्म-गौरव के कारण तुम एक ऐसा शेर बन गईं जिस के, ग़ालिब के व्याख्याकारों की तरह, सबने भिन्न-भिन्न अर्थ निकालने चाहे, परंतु फिर भी बहुत कम हकीकत की तह तक पहुंच सके और मैंने बहुत दूर होकर भी समझना चाहा...यह सच है, मैंने दूसरे मर्दों की तरह तुम्हारे यौवन की ओर हाथ नहीं बढ़ाया...कभी इतना निकट नहीं आया कि तुम्हारे सांसों की गति से कोई राज पा सकूं...फिर भी इस शेर पर मैंने काफी रिसर्च की, मस्तिष्क की अनुसंधानशाला में दो वर्ष तक तजुरबे किए, मगर कुछ समझ न सका। एक बार मुझे अपनी ओर झुकते देखकर तुमने कहा था—

"अहमद भाई, मैं आपकी बहुत इज्जत करती हूं और यह नहीं चाहती कि कोयलों की दलाली में आप भी अपने हाथ काले कर बैठें।"

मगर यह कितनी निराशा की बात है कि तुमने बहुतेरों को कोयलों की दलाली से बचाने की खातिर अपने मुंह पर कालिख मल ली थी ताकि उनके सफेद दामन स्याही से मैले न हों—तुम मेरी बहुत इज्जत करती थीं, एक नौजवान मर्द की, जो तुम्हारे जरा से सहारे पर आगे बढ़ना चाहता था। जिसने अठारह साल की उम्र में तुम्हें कई बार धोखे दिए। मंजिल के नजदीक लाकर भटका दिया। बदनामी की कोठरी में धकेल कर हर दरवाजा बंद कर दिया। फिर तुमने अपनी रही-सही इज्जत की धज्जियां उड़ा दीं और बीच चौराहे पर अपने सब दिखने वाले वस्त्र भी नोच फेंके। वह तो खैर हुई कि तुम मेरी इज्जत करती रहीं और मैं तुम्हें समझने में इतना मग्न हो गया कि भावनाओं के इंजैक्शन बिलकुल बेअसर हो गए। वरना संभव था कि एक दिन मेरा स्वाभिमान तुम्हारे कदमों पर पड़ा बखशीश की याचना कर रहा होता और तुम अतहर की तरह मुझे एक चट्टान पर छोड़ कर कहतीं—

"मैंने तुम्हें पाने के लिए बहुत सी ठोकरें खाईं, मगर तुम्हारे छूने से पहले इतनी ऊंचाई पर पहुंच गई कि जब तुम वहां पहुंचे तो मैं मृग-तृष्णा बन चुकी थी...।"

घबराओ मत, तुमने ये शब्द अतहर या रयाज से स्वयं नहीं कहे, लेकिन आज तक तुमने और कौन सी बातें अपनी जुबान से कहीं हैं—तुम तो उस गूंगी की भांति हो जिसे अपनी बात का अर्थ हमेशा संकेतों से समझाना पड़ता है....देखने में तुम कितनी साधारण सी थीं। छोटे-छोटे कंधों तक लहराते हुए बाल, जिनकी बारीक-बारीक आवारा लटें चेहरे के गिर्द घेरा सा बनाए कांपती रहतीं। साधारण सा कद, दुबला-पतला धान-पान सा जिस्म, जैसे तेज हवा के झोंके भी तुम्हें उड़ा कर ले जाएंगे। जैसे ही तुम्हारी ओर हाथ बढ़ाया

तो छुई-मुई की भांति कुम्हला जाओगी। एक भ्रम सी ! अधूरा चित्र। कितने हल्के-हल्के थे तुम्हारे नयन-नक्श, पतले-पतले, मुड़े-मुड़े से होंठ, जो हमेशा उत्साहहीन, बंद से रहते। हर चीज को हैरानी से देखने वाली हमदर्द आंखें, जो अपने सारे गुनाहों को प्रकट करने को तैयार रहतीं और इसी विचार से बात करते समय कई बार बंद हो जातीं, ताकि उनकी गहराइयों का कोई पता न लगा सके। और हर क्षण बदलने वाला रंग, जो कभी शोलों की तरह दहकने लगता, कभी मिट्टी की तरह मैला पड़ जाता। जब तुम बात करतीं, तो तुम्हारे नक्श बिलकुल न बदलते। कितना कठिन था तुम्हारे चेहरे से किसी बात का अनुमान लगाना!

इस साधारण सी शक्ल-सूरत ही ने तो घर में तुम्हें उपेक्षित सा बना दिया। अपनी सुंदर, सुशील बहनों की तुलना में तुम्हारी कोई कीमत ही न थी।

खरीद और बिक्री के इस बाजार में सिर्फ अच्छी सूरत वाली लड़की के ऊंचे दाम लगते हैं। चाचा और चाची के लिए यह खयाल जी का जंजाल बन गया था।

मुझे आज से तीन वर्ष पूर्व वाली सर्दियों की एक सुबह याद आ रही है। तुम उस समय नहा कर आई थीं। नसरीन और आयशा के साथ सहन में बैठी स्वेटर का नमूना बना-बना कर उधेड़ रही थीं। नवंबर की हल्की-हल्की धूप आंगन में फैली हुई थी। चाची नीचे बैठी नये लिहाफों को नगंद रही थीं। उस समय तुम्हारे गुलाबी दुपट्टे, भीगे बालों और निखरे हुए रंग को देख कर भी मुझे कोई शेर याद नहीं आया। कोई उपमा दिमाग में नहीं उभरी। आयशा, नसरीन और फरजाना की चमकती-दमकती सुंदरता ने तुम्हारे चिराग को टिमटिमाने भी नहीं दिया। कितनी कमजोर थीं तुम, मगरूर और अपने हुस्न के हथियारों से वाकिफ बहनों के घेरे में—उस समय मैंने सोचा था कि हुस्न के इस जमघट में तुम्हारी कहानी कितनी फीकी और संक्षिप्त होगी।

उन्हीं दिनों निरंतर बेकारी ने मुझे नये-नये रास्तों का परिचय दिया। घर से बहुत दूर एक हड़ताल के सिलसिले में गिरफ्तार हुआ तो आयशा के पत्र से पहली बार तुम्हारी ओर आकर्षित हुआ था। तुम लड़कियों को पत्र लिखने के लिए भी तो कोई बात नहीं मिलती।

आयशा के पत्र भी उसकी तरह खामोश और मासूम होते हैं जिनमें अब्बा की नाराजगी से लेकर परिवार में होने वाले महत्वपूर्ण समागमों में आने वाली स्त्रियों के कपड़े, जेवरों के डिजाईन और स्कूल की सहेलियों के रोमांस तक, हर बात का सविस्तार उल्लेख होता। साथ ही मुझे भी ऐसा ही मजेदार लंबा पत्र लिखने की हिदायत करती। मेरी बहन नहीं जानती थी कि मैं रोमांसों, कानाफूसियों और रंगीनियों से कितना दूर था। लेकिन वह मेरी निरंतर चुप के बावजूद एक हंगामे भरे घर के कमरे में बैठी, बार-बार मुंह पर झुक आने वाली लटों को पीछे झटक कर लिखती रही, "आपने और सुना, भाई जान! कुदसिया के

यहां छोटी मौसी अमजद भाई का संदेश लेकर गईं, तो कुदसिया ने स्वयं आकर कह दिया कि वह अमजद से विवाह नहीं करेगी। सुना है, चाचाजी जहर खाने वाले हैं। सारे परिवार में 'थू-थू' हो रही है।"

उस दिन, बहुत दिनों के बाद मैं जेल की मनहूस कोठरी में मुस्कुराया था। इस दिलेरी पर गुप्त रूप से तुम्हारी पीठ ठोंकी थी और महसूस किया था कि जिस खोल में हम अपने आप को लपेटे हुए हैं, वह जगह-जगह से टूट रहा है। जी चाहा, चाचाजी को एक जहर की शीशी तत्काल पार्सल कर दूं, ताकि वह सिर्फ इरादा करके ही न रह जाएं। तुम फिर एक बार मेरे सामने आई थीं, झुंझला कर स्वैटर उधेड़ती हुई। फिर मैं इस घटना को भूल गया। आयशा अपने पत्रों में लिखती रही कि तुम्हारा और रयाज का रोमांस चल रहा है। अपनी सफाई में कुछ कहने की कोशिश मत करो—मुझे मालूम है कि तुमने इस मुहब्बत को सफल बनाने की कितनी कोशिश की। लेकिन रयाज तुम्हारे यहां गोद लिया गया था। तुम्हारे घर के टुकड़ों पर पला था। फिर इस मुहब्बत की खबर चाचा के कानों में पड़ी, तो रयाज को घर ही से नहीं, बल्कि शहर से निकाल दिया गया और तुमने खामोशी से मुहब्बत की उस लाश को दिल के कब्रिस्तान में दफन कर देना चाहा...लेकिन शायद ऐसा न हो सका, क्योंकि मुर्दा खाने वाले गिद्ध जो ऐसे मौकों की तलाश में फिरते हैं, उस लाश को बाहर खींच लाए। जी भरके मजा लिया और चीर-फाड़के फेंक दिया। तुम्हारी बीमारी को बड़े अर्थ दिए गए, यानी यह सब रयाज की अमानत को ठिकाने लगाने के बहाने हैं और तुम अपने बंद कमरे में नहीं पड़ी रहतीं, बल्कि रयाज के साथ फरार हो चुकी हो।

ये अफवाहें मैंने बहुत दूर बैठ कर सुनीं और प्रत्येक बात को विश्वास के खाने में डालता चला गया। यह कोई अविश्वसनीय बात भी तो न थी। आयशा के अनुसार, तुम अपनी अहमियत का अहसास दिलाने का फैसला कर चुकी थीं और तुमने सारी दुनिया को ठुकरा कर अपनी मनमानी करने की ठान ली थी...फिर तुम जैसी मुहब्बत की मारी लड़कियां इससे अधिक अपनी अहमियत का सबूत क्या दे सकती हैं?

इसके बाद जब मैं जेल से छूट कर घर आया, तो तुम समय का महत्वपूर्ण विषय बन चुकी थीं या आयशा के शब्दों में, 'कुछ करने की धुन में अपना रहा-सहा आत्म-सम्मान भी खो चुकी थीं।'

इस दौरान तुम अपने मास्टर से मुहब्बत कर चुकी थीं, जो तुम्हें पढ़ाने आता था। सीधा-सादा खतरनाक हद तक शरीफ इंसान, जो अपनी मजलूमी और विवशता जाहिर करके दूसरों से दया की भीख मांगता था।

पहले उसने तुम्हें इज्जत और शराफत के पाठ पढ़ाए। अपनी विवशता और दुख

की कहानियां सुनाईं। उसकी प्रेमिका ने उसे धोखा दिया था, केवल गरीबी के कारण उसे ठुकरा दिया था। (यह प्रेमिकाओं के धोखा देने का दुखड़ा भी कितना पुराना हो चुका है?)

फिर उसकी प्यासी दुनिया में तुमने अपनी सहानुभूति की चंद बूंदें बरसानी चाहीं, अपने ढंग से उसका दुख कम करना चाहा। अपने गम की कहानी भी उसे सुना डाली। कोर्स की किताबों को एक तरफ समेट कर संतोष और तसल्ली के पाठ पढ़ाए जाने लगे। तुम्हारा मास्टर बीमार हो गया और चाचाजी ने दूसरा मास्टर रखना चाहा तो तुमने इंकार कर दिया। तुम उसी मास्टर से पढ़ना चाहती थीं। उसका हाल-चाल पूछने के लिए, उसके घर जाने की जिद कर रही थीं। ये सारी बातें घर के छोटे बच्चों तक ने मुझे सुनाईं। मैं कैसे विश्वास कर लूं कि तुम्हें उस मास्टर से मुहब्बत नहीं, केवल हमदर्दी थी? यह मानवता की भावना ही एक रात चुपके से उठा कर तुम्हें मास्टर के घर ले गई और जब तुम दरवाजा खटखटा रही थीं तो चाचाजी के डंडे की चोट से बेहोश हो गईं।

फिर महीनों घर वाले तुम्हारी परछाईं से अछूतों की भांति बचते रहे। घर की लंबी-लंबी नाकों वाली स्त्रियों ने बिरादरी में निकलना छोड़ दिया। चाचाजी ने समय से पहले, पैंशन ले ली और तुम सारे परिवार पर कलंक का झूमर बन कर लहराने लगीं।

लड़कियों को तुम्हारे नजदीक बैठने की आज्ञा न थी, मगर तुम बिलकुल बेखबर बड़ी शान से रहती थीं, 'गंगा री गंगा तू कहां लहराए? मैं पांव भी तो डुबोऊं।'

और बीच आंगन में खड़े होकर तुमने अम्मा से कहा, "मेरा जो जी चाहेगा, करूंगी या फिर आप लोग मुझे मार डालिए।"

फिर सबने दूसरी बात पर सहमति कर ली। सबने तुम्हें मृत मान लिया। मगर शमीम मामा उनसे सहमत नहीं हुए। धीरे-धीरे दूसरा गम भी भूलने लगा। कुछ शमीम मामा के लाड़-प्यार ने उसे मिटा डाला। वह तुम पर बेहद मेहरबान थे। आयशा कहती थी, "शमीम मामा की बेटी अजरा भी तो कुदसिया की क्लास-फैलो है। जैसी उनकी बेटी, वैसी कुदसिया। फिर वह कैसे एक लड़की को घुल-घुल कर मरता देखें !" शमीम मामा बड़े अर्से से बीवी-बच्चों से संबंध तोड़ कर बड़ी रंगीन जिंदगी बिता रहे थे। सिर्फ इतनी बात पर कि उनकी बीवी कभी अच्छी साड़ी न बांध सकी। एक बार आयशा ने लिखा था कि बेहतरीन साड़ी बांधने पर तुम पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हो। वह अपने बच्चों को छोड़ कर तुम्हें सैर कराने जाते हैं। तुम्हारे सदके में सारा घर सिनेमा देखता, पिकनिक पर जाता, मोटरों में घूमता। तुम कोई उच्च डिग्री लेना चाहती थीं और चाचाजी तुम्हें अकेला होस्टल में छोड़ने को तैयार नहीं थे। इसलिए बेचारे शमीम मामा अपनी वकालत के बेशुमार महत्वपूर्ण काम छोड़ कर बारह-बारह बजे रात तक फारसी और उर्दू शायरों का कलाम पढ़ाते। प्रेम और भक्ति में

डूबे हुए शेरों का अर्थ तुमसे पूछते और उनमें छुपे हुए नुक्तों की व्याख्या पर झूम-झूम उठते।

सब तरफ से ठुकराए जाने से पहले तुम स्वयं ही किसी से बात न करती थीं। दिन भर पलंग पर औंधी पड़ी, न जाने क्या-क्या सोचा करतीं, कोई बात न करता तो शिकायत न करतीं। शमीम मामा सिर पर हाथ फेरते तो मना न करतीं। हाथ पकड़ कर मोटर में बिठा देते, तो बैठ जातीं। संभव है, तुमसे उनकी वीरान और नीरस जिंदगी न देखी गई हो और मानवता के तकाजे ने मजबूर किया हो।

फिर तुम्हारा यह व्यवहार कितना आश्चर्यजनक था! मामी को अपना भविष्य खतरे में नजर आने लगा और सबकी प्रश्नसूचक निगाहें तुम्हारे चेहरे पर गड़ गईं।

एक रात जब तुम शमीम मामा से पढ़ रही थीं, कमरे में कुछ शोर सा हुआ और तुम बिना दुपट्टे के कमरे में भागती हुई आईं और पलंग पर गिर कर रोने लगीं।

पीछे-पीछे घर के सब लोगों की लंबी कतार थी। मैं बड़ी दिलचस्पी से यह तमाशा देखने लगा। चाची ने अपनी पूरी शक्ति से, तुम्हारी पीठ पर धौल जमाए और बहुत सी मुर्गानियां कुड़कुड़ाने लगीं। जवाब में सिसकियां रोक कर तुमने बड़ी मुश्किल से कहा, "मैं जहां भी जाऊं, सब मुझे ही बुरा कहते हैं। मुझे क्या पता कि वह इतना कमीना..." मुझे हंसी आ गई। कोई मर्द मामा नहीं होता, केवल कमीना होता है जो स्त्री से सब कुछ ले लेने के बाद भी उसे झिलमिलाते हुए आंसूओं के सिवा कुछ नहीं दे सकता।

शमीम मामा ने सोचा होगा कि यदि रयाज या मास्टर तुम्हें कोई अमानत नहीं दे सके, तो वह क्यों न इस बहती गंगा में हाथ धो लें, जबकि वह किसी रिश्ते से तुम्हारे मामा भी बने हुए थे। फिर तो उनकी बीवी ने यह खबर सारे शहर में फैला दी कि तुम चाहो तो बीवी-बच्चों वाले मर्दों को भी बहका दो। शमीम मामा जैसा परहेजगार इंसान तुम्हें देख कर सठिया गया।

किसी म्यूजियम में रखी हुई लाखों वर्ष पुरानी ममी की तरह तुम प्रदर्शनी की एक वस्तु बन गईं। छतों को फलांगती हुई यह बात सारे शहर की गश्त लगा कर तुम्हारे माथे पर चिपक गई। औरतें और लड़कियां दूर-दूर से बच्चे कूल्हों पर टिकाए, नाक पर अंगुली रखे, तुम्हें देखने को आतीं। मर्दों की महफिलों में जोरदार ठहाकों और अश्लील गालियों के दौरान तुम्हारा नाम आ जाता तो खुद भी उस लुटने वाले बाग में जाने को तबियत मचल उठती। अतहर इसी गनीमत माल की आस में आया था। मेरा छोटा भाई, ओ अपनी आवारगी के कारण हवालात तक हो आया था। मध्यम श्रेणी का एक बेकार नौजवान, जिसे बेकारी ने मिटा डाला था और सब उससे निराश हो गए थे। एक मत से यह तय हो गया था कि कोई उसे बेटी न देगा। बाहर तफरीह करने के अलावा कई बार घरेलू

लड़कियों को झांसा दे चुका था, बल्कि राहत के बारे में तो यह प्रसिद्ध था कि केवल अतहर के कारण वह अपने पति का घर छोड़ बैठी है। मगर इतनी काली करतूतों के बावजूद वह तुम्हारी तरफ से निराश नहीं लौटा। सारे संसार से धिक्कारा हुआ, मुंह-फट, बेरहम, चीख-चीख कर बातें करने वाला अतहर, जिसे अब्बा रोज घर से निकाल देते, अम्मी कोसती रहतीं और आयशा अपने भाग्य पर संतोष करके बैठ जाती। यदि बहनों के भाई गौरव योग्य न हों, तो वह कितनी बदनसीब नजर आती हैं ! खूबसूरत कमाऊ भाइयों के भरोसे पर ही तो वे न जाने कितनी नाक अपने सामने रगड़वा सकती हैं। आयशा का सारा ध्यान मेरी ओर केंद्रित हो गया था। मेरी खुश्क और उसूल-पसंदी और साफगोई की आदत के कारण मेरे व्यक्तित्व को काफी महत्व प्राप्त था। तुम्हारे दरबार में अतहर को कैसे मान-सम्मान बख्शा गया, यह बात सब के लिए आश्चर्यजनक थी। वह तो अपने खूबसूरत जिस्म और खुले स्वभाव से बड़े-बड़े मैदान मार आता था, लेकिन तुमने हमेशा बुझे दिल और बीमार मन तलाश किए थे।

यहां पर मुझे अपनी पिछली रिसर्च व्यर्थ मालूम हुई और उसे उठा कर फेंकने से पहले मैंने तुम से संबंध बढ़ाना चाहा। मुझे घर में बहुत कम रहने का मौका मिलता था, विशेष तौर पर तुम से कभी खुल कर बात करने का समय ही न मिला। उस एक घर में रहने के बावजूद, हम एक-दूसरे से बहुत दूर रहे। तुम मुझसे हमेशा छिपना चाहती थीं, क्योंकि पहले दिन हमारी मुलाकात ने वातावरण काफी कटु कर दिया था।

उस दिन हम नाश्ते की मेज पर मिले थे। तुम शायद मेरे बारे में आयशा से पहले ही सुन चुकी थीं और मुझ तक अपने कारनामे पहुंचाने से संकोच कर रही थीं। सावधानी से, सिर पर पल्लू डाले, नजरें झुकाए यूं बैठी थीं जैसे किसी पादरी के सामने अपने गुनाहों को स्वीकार करने आई हो। आयशा ने मेरी तरफ़ बड़ी अर्थपूर्ण नजरों से देख कर कहा था, "भाईजान, देखिए, यह है कुदसिया।" आयशा की व्यंग्यमय नजरों को तुमने पकड़ लिया और होंठों पर जुबान फेर कर खुश्क लहजे में कहा, "तो अहमद भाई मुझे पहले से जानते हैं?" और तुम चाय की प्याली रख कर उठ गई थीं।

बरसात की एक शाम को हल्की-हल्की रिमझिम ने मौसम बड़ा सुहावना बना दिया था। आदत के अनुसार मैं धुएं से काल्पनिक गोले बना रहा था। आयशा, परवीन, छोटी भाभी और फराजना नजदीक बैठी कैरम खेल रही थीं। और किसी फिल्म पर जोरदार विवाद चल रहा था। एक हीरो एक ही समय दो लड़कियों से प्रेम करता है और डाइरेक्टर हर बार उसकी मुहब्बत को सच बनाने का अनुरोध कर रहा है। आयशा के विचार में यह मुहब्बत का निरादर था, या हीरो का सिरफिरापन। तुम उनके निकट बैठी, काले साटन के एक टुकड़े पर नन्हें-नन्हें शीशे टांक रही थीं जिनकी बहुत सी किरणों ने तुम्हारे मुखड़े

पर मशालें जला दी थीं। अपनी राय को वजनी बनाने के लिए आयशा ने मुझ से पूछा, "आप बताइए भाईजान, क्या मुहब्बत एक से अधिक बार की जा सकती है?"

और मैंने बिना सोचे-समझे कह दिया, "कुदसिया से पूछो।" तुम्हारे हाथ काम करते-करते रुक गए। चेहरे पर जलती हुई मशालें बुझ गईं और शिकायत-भरी नजरों से मुझे देखती हुई तुम बाहर चली गईं।

भाभी और फरजाना धीरे-धीरे हंसने लगीं। बात टालने के लिए परवीन गुनगुनाने लगी और आयशा ने प्रशंसा-भरी निगाहों से मुझे देखा। फिर मैंने उस खूबसूरत शाम का सुनहरी लिबास नोच कर फेंक दिया। रिमझिम शोर मचाने वाली बूंदें, आंसुओं के धारें बन गईं और कमरे में अंधेरा बढ़ने लगा।

"आज मौसम कितना सुहावना हो रहा है !"

"हूं।"

"जी चाह रहा है, कहीं बाहर घूमने जाएं।"

"तो जाइए।" तुम अपनी आदत के अनुसार संक्षिप्त सा उत्तर दे रही थीं।

"मगर कोई साथ चलने वाला जो नहीं। अतहर ने वायदा किया था, मगर वह आया ही नहीं। बहुत गैर-जिम्मेदार और झूठा हो गया है यह लड़का।" अतहर की बुराई करके मैंने तुम्हारे चेहरे पर कुछ ढूंढ़ना चाहा, तुम्हारी आंखें खुली हुई किताब पर थीं और हाथ टेबल-क्लाथ के सल ठीक करने में लगे हुए थे। फिर बड़े व्यंग्य से तुम ने कहा, "इतने सुहावने मौसम में तो वह किसी बार में बेहोश पड़े होंगे। आप लोग तो उन्हें अच्छी तरह जानते हैं ना!" यह तुम कह रही थीं। तुम जिसके बारे में प्रसिद्ध था कि सारे परिवार की इज्जत जूते की नोक पर उछाल कर तुमने अतहर से विवाह कर लिया है। सब से छिपा कर उसे रुपये देती हो। वह शराब पीकर आता है तो उस पर पर्दा डालती हो। इतने बुरे आदमी पर तुम्हारी ये मेहरबानियां क्यों थीं, जबकि पिछले जीवन में कई अविश्वसनीय मर्द तुम्हें धोखा दे चुके थे...तुम्हारे संबंध में फैली हुई बदनामियों के बीच मुझे अपनी राय बड़ी हास्यास्पद लगी। उसे मैंने दिमाग से खुरच दिया। तुम सबके लिए एक पहेली सी बन गईं। भूल-भूलैया की भांति, तुम्हारे गिर्द धोखे और फरेब के जाल बिछे हुए थे। मुझसे उनसे घृणा हो गई। फिर एक दिन बदहवास, मैं तुम्हारे कमरे में आया।

"मैं तुम्हारे बारे में कुछ जानना चाहता हूं, कुदसिया ! यदि तुम आज्ञा दो तो....।" अपनी घबराहट पर मैं स्वयं हैरान था। उस दिन तुम्हारे चेहरे पर मैंने पहली बार डर की परछाइयां देखीं, जिन पर आश्चर्य की छाप थी। तुम यूं खड़ी हो गईं, जैसे शमीम मामा झपटना चाहते हों। तुमने दुपट्टे को सीने पर संभाल लिया।

"आप भी मुझे जानना चाहते हैं, अहमद भाई ! मैं आप का बहुत आदर करती हूं।

फिर आप क्यों कोयलों की दलाली में हाथ काले करना चाहते हैं?" और तुम पीछे देखे बगैर बाहर भाग गई थीं।

उन दिनों सहसा मुझे तुम्हारा एक पत्र हाथ लगा, जो तुमने शायद रयाज को लिखा था, परंतु उसे भेज न सकीं या शायद भेजने के लिए लिखा ही न था, क्योंकि यह तो तुम्हारी आत्मा की पुकार थी जिसे रयाज जैसा मूर्ख आदमी न सुन पाता। उसके प्रेम के मूल में यह भावना थी कि तुम महान हो और पूजनीय हो, और तुम उस की आत्मा को ऊंचाइयों तक कभी न उठा सकती थीं। भाभी का नन्हा राशिद नाव बनवाने को यह पत्र अटैची से निकाल लाया था। अपनी शराफत का सबूत देने के लिए मैंने उसे वापस रखना चाहा, मगर एक बार पढ़ने से अपने आप को न रोक सका। मेरी ओर लानत भेजती सी दृष्टि से न देखो।

उन दिनों मैं तुम पर रिसर्च कर रहा था। बीसवीं शताब्दी का एक निकम्मा इंटलैक्चुअल!

तुम्हारा यह पत्र बहुत सी ढकी-छिपी सचाइयों को सामने ले आया और मेरी राय फिर डगमगाने लगी।

उस पत्र में लिखा था कि तुमने बचपन से हर हृदय में अपने लिए नफरत और उपेक्षा पाई और किसी की नजरों में श्रेष्ठ बनने की यह भावना ही तुम्हें रयाज की ओर ले गई जो तुम्हारी तरह सब की ओर से दुत्कारा हुआ घर का दूसरा व्यक्ति था। रयाज की निष्कपटता ने उसे गहन कर दिया और घर वालों के विरोध ने उसे जंगल में लगी आग की भांति भड़का दिया। फिर तुमने हर कीमत चुका कर, उसे पाने का प्रण कर लिया। परंतु रयाज के कदम इस कठिन रास्ते पर लड़खड़ा गए। अब्बा की एक डांट पर मुहब्बत उछल कर दूर जा पड़ी और वह अपना बोरिया-बिस्तर समेट कर भाग गया।

पत्र के अंत में तुमने उसे खूब जलील किया था..."बुजदिल, तू समझता है, इस तरह तूने मुहब्बत को बदनामी से बचा कर मेरी लाज रख ली ! मगर अभी हमारी मुहब्बत शुरू ही कहां हुई थी? मेरी इज्जत पहले ही कौन से झंडे पर चढ़ी बैठी थी...मैं तुझे वह दे ही न सकी, जो मेरे जीवन का आदर्श था। काश, मैं तुझे उस ऊंचाई पर पहुंचा सकती, जहां मेरा भी हाथ न जाता...अब मेरी आत्मा इस विशाल समुद्र में एक तिनके को तलाश करती फिरेगी।"

अब तुम इस तिनके की तलाश में विकराल चट्टानों से टकरा रही थीं। तुम, जो मोम की मूर्ति की भांति अपने सृजक की कल्पना की गर्मी से पिघल सकती थीं। किसी की तेज-तीखी नजरों से सुलग सकती थीं, फिर अपने चारों ओर लपकने वाली लपटों में कैसे खड़ी थीं!

दूसरे दिन तुम्हारे सामने, मैंने अतहर को खूब डांटा। "कल तुम मुझसे वायदा करने के बावजूद, क्यों नहीं आए? मैं यहां प्रतीक्षा में बैठा रहा और जनाब कुदसिया के कथनानुसार किसी बार में जमे रहे।"

अतहर के कहकहे रुक गए। वह यूं चुप हो गया, जैसे मैंने उसे फांसी का हुक्म सुनाया हो। थोड़ी देर बाद वह बड़ा दुखी सा मेरे पास आया।

"और उसने मेरे बारे में क्या कहा? उसे मेरी आदतों की खबर है। वह बहुत शोकग्रस्त है!" जीवन में पहली बार मैंने अतहर को शर्मिंदा देखा था। वह भी किसी की शिकायत सुनने को तैयार था, उससे प्रभावित हो सकता था।

"यह कोई बात नहीं है। जबकि तुम हमेशा फरेब देते आए हो और कुदसिया सदा फरेब खाती आई है।"

"आप भी ऐसा समझते हैं, भाई जान !" उसने शिकायत-भरे स्वर में कहा, "कुदसिया के बिगड़ने में उसका कोई दोष नहीं। वह बड़ी अभागिन लड़की है। मैं सचमुच बहुत बुरा हूं और कुदसिया को धोखा देकर भी नुकसान में रहूंगा।"

अतहर बाहर चला गया और तुम एक बार फिर मेरे सामने नयी गुत्थियां लेकर आ गईं। अतहर कौन सा रास्ता अपना रहा था? वह बेरहम इंसान जो अपने हित के आगे किसी पर दया नहीं कर सकता था।

तुम मुझे वह कसौटी नजर आईं, जिस पर सोना और पीतल दोनों स्पष्ट रूप में चमक उठते हैं—दो गुनाहों के मेल से इतनी पवित्र भावना भी वजूद में आती है? फिर तुम्हारी कहानी का शेष भाग न देख सका। मेरी व्यस्तता मुझे आंध्र प्रदेश ले गई और वहां से मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। कलकत्ता की हंगामों से भरी जिंदगी और जोरदार गतिविधियों ने तुम्हारी मुहब्बत की अधभरी, रेंगती हुई कहानी भुला दी और घर में होने वाली ये छोटी-छोटी घटनाएं, दिमाग के किसी कोने में थक कर सो गईं।

एक बार आयशा ने लिखा कि अतहर के निरंतर आज्ञा-उल्लंघन के कारण, अब्बा ने उसे ख्वारखती दे दी है और वह घर से चला गया है। फिर पता लगा कि तुम अचानक घर से गायब हो गईं। किसी ने मुझे बताया कि तुम दोनों लखनऊ में रहते हो। चाचाजी तुम्हें वापस बुलाने के लिए तैयार नहीं हैं। इस से आगे की कहानी मुझे किसी ने नहीं सुनाई। मगर मैं इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि अब अतहर अपना उल्लू सीधा करके बंबई जाएगा, जहां कई वर्षों के बाद मैं तुम्हें एक फिल्म में देखूंगा। हीरोइन के पीछे एक्सट्राओं में कूल्हे मटकाती हुई, कोई आवारा सा गीत तुम्हारे होंठों पर होगा, जो तुम्हारे चेहरे, पिंडलियों और छातियों का प्रदर्शन करेगा। तुम झूठ का एक खोल होगी। सेल्यूलाईड की गुड़िया, जिसकी हर हरकत दूसरों की गुलाम होती है। तुम अपने स्वाभिमान की लाश पर नाच

रही होगी।

एक सीमा से अधिक भावुक लड़की की कल्पना की उड़ान यूं ही खाइयों में गिर कर दम तोड़ देती है। मुझे तुम दोनों के नाम से नफरत हो गई। आयशा ने एक बार लिखा भी कि कुदसिया ने लखनऊ के किसी प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली है। अतहर बीमार है और वह दोनों बड़ी कठिनाई से दिन बिता रहे हैं। लेकिन मैंने बड़ी कठोरता से लिख दिया कि अब मैं कुदसिया के संबंध में कुछ सुनना नहीं चाहता। अतहर का यह परिवर्तन जितना घृणित था, उतना ही आश्चर्यजनक भी।

किसी के विवाह का समाचार सुन कर भी वह मजाक उड़ाया करता था। "एक ही राग लगातार कैसे सुने जाते हैं लोग, मैं तो दो ही दिन में पागल हो जाऊं।" फिर उसने दो साल तक इस राग को कैसे सुना? अम्मी अपने भाग्य को रोकर बैठ रहीं। उनकी जिंदगी के दोनों फल कड़वे निकले। मैं तो खैर अपने स्वतंत्र जीवन से उन्हें कोई लाभ न पहुंचा सकता था। मगर अब्बा यह भी सहन न कर सके कि अतहर का जीवन अचानक पलटा खा जाए। वह एकदम शरीफ बन जाए और किसी अच्छी पोस्ट पर ले लिया जाए।

फिर अम्मी के आंसूओं ने अब्बा से कई खत लिखवाए जिनमें अतहर को पारिवारिक सम्मान और बेशुमार दौलत का वास्ता दिया गया था और तुम्हें अतहर की मुहब्बत का। और आज आयशा ने लिखा है–

"भाई जान ! आप कुदसिया से घृणा करते रहिए। क्योंकि भविष्य में उसकी कोई बात नहीं होगी जो मैं आप को सुना सकूं। आज अकेले अतहर भाई को अब्बा घर ले आए हैं। कुदसिया किसी साधारण सी बीमारी से मर चुकी है।"

तुम जीवन भर मेरी इज्जत करती रहीं और मैं तुमसे नफरत करता रहा। यह अपने-अपने भाग्य का दोष है। इधर मुंह करो। तुम्हारे चमकते आंसू क्या कह रहे हैं?

क्या सचमुच तुम किसी साधारण सी बीमारी से मर गईं? उस छोटी सी बीमारी को अपने कोमल जिस्म पर न सह सकीं और उस बीमारी का उपचार किसी से न हो सका! अतहर से भी नहीं। तुम्हें अपनी हार पर आंसू नहीं बहाने चाहिए, क्योंकि अतहर को तुमने वह उपहार दे दिया है जिसके लिए तुम जीवन भर लगी रहीं और चुपचाप अंधेरे में खो गईं। अब तुम्हारी मसली हुई सिसकियां और झिलमिलाते हुए आंसू ही मुझे तुम्हारी उपस्थिति का अहसास दिलाते हैं। तुम आज फिर घुटी-घुटी आहों और बहते हुए आंसुओं से इस कमरे में मेरे लिए अपनी इज्जत का उपहार ले कर आई हो। परंतु मैं इसके अलावा कुछ नहीं कर सकता कि जले हुए सिगरेट को ऐश-ट्रे में फेंक कर, तुम्हारे खयाल को जहन से झटक दूं।

दूसरे दिन तुम्हारे सामने, मैंने अतहर को खूब डांटा। "कल तुम मुझसे वायदा करने के बावजूद, क्यों नहीं आए? मैं यहां प्रतीक्षा में बैठा रहा और जनाब कुदसिया के कथनानुसार किसी बार में जमे रहे।"

अतहर के कहकहे रुक गए। वह यूं चुप हो गया, जैसे मैंने उसे फांसी का हुक्म सुनाया हो। थोड़ी देर बाद वह बड़ा दुखी सा मेरे पास आया।

"और उसने मेरे बारे में क्या कहा? उसे मेरी आदतों की खबर है। वह बहुत शोकग्रस्त है!" जीवन में पहली बार मैंने अतहर को शर्मिंदा देखा था। वह भी किसी की शिकायत सुनने को तैयार था, उससे प्रभावित हो सकता था।

"यह कोई बात नहीं है। जबकि तुम हमेशा फरेब देते आए हो और कुदसिया सदा फरेब खाती आई है।"

"आप भी ऐसा समझते हैं, भाई जान !" उसने शिकायत-भरे स्वर में कहा, "कुदसिया के बिगड़ने में उसका कोई दोष नहीं। वह बड़ी अभागिन लड़की है। मैं सचमुच बहुत बुरा हूं और कुदसिया को धोखा देकर भी नुकसान में रहूंगा।"

अतहर बाहर चला गया और तुम एक बार फिर मेरे सामने नयी गुत्थियां लेकर आ गईं। अतहर कौन सा रास्ता अपना रहा था? वह बेरहम इंसान जो अपने हित के आगे किसी पर दया नहीं कर सकता था।

तुम मुझे वह कसौटी नजर आईं, जिस पर सोना और पीतल दोनों स्पष्ट रूप में चमक उठते हैं—दो गुनाहों के मेल से इतनी पवित्र भावना भी वजूद में आती है? फिर तुम्हारी कहानी का शेष भाग न देख सका। मेरी व्यस्तता मुझे आंध्र प्रदेश ले गई और वहां से मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। कलकत्ता की हंगामों से भरी जिंदगी और जोरदार गतिविधियों ने तुम्हारी मुहब्बत की अधभरी, रेंगती हुई कहानी भुला दी और घर में होने वाली ये छोटी-छोटी घटनाएं, दिमाग के किसी कोने में थक कर सो गईं।

एक बार आयशा ने लिखा कि अतहर के निरंतर आज्ञा-उल्लंघन के कारण, अब्बा ने उसे ख्वारखती दे दी है और वह घर से चला गया है। फिर पता लगा कि तुम अचानक घर से गायब हो गईं। किसी ने मुझे बताया कि तुम दोनों लखनऊ में रहते हो। चाचाजी तुम्हें वापस बुलाने के लिए तैयार नहीं हैं। इस से आगे की कहानी मुझे किसी ने नहीं सुनाई। मगर मैं इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि अब अतहर अपना उल्लू सीधा करके बंबई जाएगा, जहां कई वर्षों के बाद मैं तुम्हें एक फिल्म में देखूंगा। हीरोइन के पीछे एक्सट्राओं में कूल्हे मटकाती हुई, कोई आवारा सा गीत तुम्हारे होंठों पर होगा, जो तुम्हारे चेहरे, पिंडलियों और छातियों का प्रदर्शन करेगा। तुम झूठ का एक खोल होगी। सेल्यूलाईड की गुड़िया, जिसकी हर हरकत दूसरों की गुलाम होती है। तुम अपने स्वाभिमान की लाश पर नाच

रही होगी।

एक सीमा से अधिक भावुक लड़की की कल्पना की उड़ान यूं ही खाइयों में गिर कर दम तोड़ देती है। मुझे तुम दोनों के नाम से नफरत हो गई। आयशा ने एक बार लिखा भी कि कुदसिया ने लखनऊ के किसी प्राइवेट स्कूल में नौकरी कर ली है। अतहर बीमार है और वह दोनों बड़ी कठिनाई से दिन बिता रहे हैं। लेकिन मैंने बड़ी कठोरता से लिख दिया कि अब मैं कुदसिया के संबंध में कुछ सुनना नहीं चाहता। अतहर का यह परिवर्तन जितना घृणित था, उतना ही आश्चर्यजनक भी।

किसी के विवाह का समाचार सुन कर भी वह मजाक उड़ाया करता था। "एक ही राग लगातार कैसे सुने जाते हैं लोग, मैं तो दो ही दिन में पागल हो जाऊं।" फिर उसने दो साल तक इस राग को कैसे सुना? अम्मी अपने भाग्य को रोकर बैठ रहीं। उनकी जिंदगी के दोनों फल कड़वे निकले। मैं तो खैर अपने स्वतंत्र जीवन से उन्हें कोई लाभ न पहुंचा सकता था। मगर अब्बा यह भी सहन न कर सके कि अतहर का जीवन अचानक पलटा खा जाए। वह एकदम शरीफ बन जाए और किसी अच्छी पोस्ट पर ले लिया जाए।

फिर अम्मी के आंसूओं ने अब्बा से कई खत लिखवाए जिनमें अतहर को पारिवारिक सम्मान और बेशुमार दौलत का वास्ता दिया गया था और तुम्हें अतहर की मुहब्बत का। और आज आयशा ने लिखा है–

"भाई जान ! आप कुदसिया से घृणा करते रहिए। क्योंकि भविष्य में उसकी कोई बात नहीं होगी जो मैं आप को सुना सकूं। आज अकेले अतहर भाई को अब्बा घर ले आए हैं। कुदसिया किसी साधारण सी बीमारी से मर चुकी है।"

तुम जीवन भर मेरी इज्जत करती रहीं और मैं तुमसे नफरत करता रहा। यह अपने-अपने भाग्य का दोष है। इधर मुंह करो। तुम्हारे चमकते आंसू क्या कह रहे हैं?

क्या सचमुच तुम किसी साधारण सी बीमारी से मर गईं? उस छोटी सी बीमारी को अपने कोमल जिस्म पर न सह सकीं और उस बीमारी का उपचार किसी से न हो सका! अतहर से भी नहीं। तुम्हें अपनी हार पर आंसू नहीं बहाने चाहिए, क्योंकि अतहर को तुमने वह उपहार दे दिया है जिसके लिए तुम जीवन भर लगी रहीं और चुपचाप अंधेरे में खो गईं। अब तुम्हारी मसली हुई सिसकियां और झिलमिलाते हुए आंसू ही मुझे तुम्हारी उपस्थिति का अहसास दिलाते हैं। तुम आज फिर घुटी-घुटी आहों और बहते हुए आंसुओं से इस कमरे में मेरे लिए अपनी इज्जत का उपहार ले कर आई हो। परंतु मैं इसके अलावा कुछ नहीं कर सकता कि जले हुए सिगरेट को ऐश-ट्रे में फेंक कर, तुम्हारे खयाल को जहन से झटक दूं।

अपनी कल्पना में ही मिल सकती थी।

गोपाल चित्र क्यों बनाता था? इसका उत्तर वह शायद खुद भी न दे सकता था। उसका कोई भी चित्र आज तक नहीं बिका था। किसी अखबार या पत्र-पत्रिका में उसके चित्रों का उल्लेख कभी नहीं हुआ था। कला की दुनिया में कोई उसका नाम भी न जानता था। फिर वह चित्र क्यों बनाता था? शायद इसलिए कि उसका पिता त्यौहारों के अवसर पर मिट्टी से देवताओं की मूर्तियां बनाता था और बचपन से गोपाल को अपने पिता के रंग चुरा कर कागज पर रेखाएं खींचने का शौक हो गया था। शायद इसलिए कि स्कूल में ड्राइंग की क्लास के सिवा और किसी काम में उसका मन नहीं लगता था और ड्राइंग मास्टर ने उसके बनाए हुए चित्र देख कर उसकी हिम्मत बढ़ाई थी। या शायद इसलिए कि गोपाल गरीब था और एक गंदी गली में, एक बदबूदार चाल में रहता था और उसे अपने मन की भड़ास निकालने के लिए एक निकास की आवश्यकता थी। अनाथ और गरीब गोपाल के दिल में खूबसूरती, कोमलता तथा प्यार की एक अजीब प्यास थी, जिसे वह चित्र बना कर ही तृप्त कर सकता था।

गोपाल चित्र क्यों बनाता था? शायद इसलिए कि जब वह सतरह साल का था, उसने एक लड़की से प्रेम किया था। एक लड़की, जो उसके पड़ोस में रहती थी। जो सुंदर थी, अमीर बाप की बेटी थी और गरीब गोपाल की पहुंच से बाहर थी। और इसलिए उस मोहब्बत को वह कभी जाहिर नहीं कर सका था। वह मुहब्बत उसके दिल ही दिल में घुट रही थी, मगर बुझी नहीं थी। राख में दबी हुई चिनगारी की तरह चुपचाप सुलगती रही थी और वर्षों बाद जब वह अपना कस्बा छोड़ कर बंबई आ गया था और वह लड़की एक डिप्टी-कलेक्टर के चार बच्चों की मां बन चुकी थी, तब भी मुहब्बत का वह जज्बा गोपाल के दिल में सुलग रहा था और उसे प्रकट करने का भी इन चित्रों के सिवा कोई दूसरा तरीका नहीं था। रजनी को गोपाल ने सिर्फ देखा था। कभी उससे बात भी न कर पाया था। बस, दूर से उसकी पूजा की थी और इसीलिए अब भी बड़े आदर और सम्मान से अपने चित्रों में गोपाल उसकी पूजा कर रहा था। कभी सरस्वती के रूप में तो कभी शकुंतला के। कभी मुगल शहजादी के लिबास में, तो कभी राजपूत राजकुमारी के शृंगार में। पुजारी की निगाहों ने रजनी को अमर सुंदरता की एक मूरत बना दिया था, एक कवि की कल्पना, एक देवी—जिसका इस संसार की चलती-फिरती, बोलती-चालती सुंदर लड़कियों से कोई साम्य नहीं था। जिसकी आंखें मृग जैसी थीं और कमर इतनी पतली कि जैसे हो ही नहीं, और अंगुलियां इतनी पतली कि...

आज गोपाल फिर रजनी की याद को एक नये चित्र के सांचे में ढालना चाहता था। अगले हफ्ते शहर में कला की प्रदर्शनी होने वाली थी और गोपाल इसमें एक नया चित्र

बना कर भेजना चाहता था। ऐसा चित्र जिसमें उसकी पूरी कला का निचोड़ हो, जो सचमुच ही शाहकार हो, जिसे देख कर हर कोई उसकी कला का लोहा मानने पर मजबूर हो जाए...कौन जानता है, शायद उसके चित्र को इनाम भी मिल जाए। मगर उसका असल मनोरथ न पुरस्कार प्राप्त करना था, न प्रसिद्धि पाना। वह तो अपने मन में सुलगते हुए प्रेम को आर्ट के रूप में अमर करना चाहता था, रजनी का एक ऐसा चित्र बना कर जिसमें उसकी सारी सुंदरता, उसका यौवन, उसके नयनों की मस्ती, उसके सुडौल शरीर का हर रंग ऐसी खूबसूरती से उभर आए कि दुनिया देखे और अश-अश कर उठे। और शायद रजनी भी इस चित्र को कहीं देखे,...और इतने वर्षों के बाद उस चित्र की जुबान से गोपाल अपनी गूंगी मुहब्बत का संदेश रजनी तक पहुंचा सके...।

हां तो, आज वह रजनी का चित्र बनाना चाहता था। खाली कैनवस चौखटे पर चढ़ा हुआ उसके ब्रुश के स्पर्श की प्रतीक्षा कर रहा था। परंतु रजनी के गालों में सुर्खी भरने के लिए गुलाबी रंग चाहिए था और आज गोपाल के पास लाल रंग खत्म हो चुका था। बाजार से नया रंग खरीदने के लिए पैसे भी जेब में नहीं थे। लाल रंग इतना भी नहीं था कि चित्र में रजनी के माथे पर एक बिंदी ही बना सके...।

फिर उसने सोचा कि रजनी का चित्र नहीं, कृष्ण का चित्र बनाऊंगा। उसके खूबसूरत नीले बदन में बचपन का भोला-भालापन और कोमलता भरूंगा। उसके चेहरे पर अमर बचपन की शोखी और शरारत होगी। लेकिन आज उसके पास नीला रंग भी तो नहीं था...।

लाल रंग नहीं था, गुलाबी नहीं था, पीला नहीं था, हरा नहीं था, गेरुआ नहीं था... बस एक रंग बाकी था, काला स्याह रंग...क्योंकि यह रंग अब तक उसने अपने चित्रों में इस्तेमाल ही नहीं किया था। मगर काले रंग से कहीं कोई खूबसूरत, रोमानी चित्र बनाया जा सकता है? काला रंग तो उदासी का रंग है। काले रंग से रजनी की तस्वीर नहीं बनाई जा सकती...बाल-कृष्ण का चित्र नहीं बन सकता, न किसी सुंदर राजकुमारी का, न मुगल शहजादी का, न हरी-भरी फूलों से लदी पहाड़ी का, न डूबते हुए सूरज के दृश्य का। इस बदसूरत, मनहूस और भद्दे रंग से तो बस इस अंधेरी, गंदी, बदबूदार गली का चित्र ही बन सकता है।

इस गली का चित्र? नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है भला ! इस भयंकर दृश्य का चित्र देखना कौन पसंद करेगा? मगर...।

इस बार गोपाल ने खिड़की से बाहर झांक कर नीचे गली को देखा तो उसे चालों की टेढ़ी-मेढ़ी दीवारों में, उनके ऊपर निकली चिमनी और उससे निकलते हुए धुएं में, खेलते हुए बच्चों में, पनवाड़िन की दुकान के आगे लगी हुई भीड़ में, एक विचित्र और अनोखा

कलात्मक नक्शा उभरता हुआ नजर आया।

चालों की दीवारें एक-दूसरी पर इस बेढंगे अंदाज से गिरी पड़ रही थीं, जैसे लड़खड़ाते हुए शराबी एक-दूसरे का सहारा लेने का प्रयास कर रहे हों। दीवारों के साए जमीन पर काली तिकोनें बना रहे थे। रोशनी और छाया, छाया और रोशनी। ढलते हुए सूर्य की तिरछी किरणों ने एक ओर की दीवारों पर उजाला कर रखा था और दूसरी ओर छाया। रोशन दीवारों पर काली-काली खिड़कियां ऐसी लगती थीं, जैसे अंधी बेनूर आंखें...खेलते हुए गरीब बच्चे कठपुतलियां लगते थे और उनकी लंबी-तिरछी परछाइयां ऐसे पड़ रही थीं जैसे उनके भयानक भविष्य की परछाइयां अभी से पड़ रही हों। मरियल बिल्ली के पीछे दौड़ता हुआ खारिश-जदा कुत्ता किसी हजारों वर्ष पुराने जमाने की याद दिला रहा था जब जंगल का कानून चलता था और प्रत्येक शक्तिशाली जानवर अपने से कमजोर को भोजन बनाना अपना अधिकार समझता था। दीवार के नीचे खड़े हुए मजदूरों की, मैली-कुचैली धोतियों से झांकती हुई काली टांगें ऐसी लगती थीं जैसे वे पतले-पतले, काले-काले स्तंभ हों जिन पर उस सारी इमारत का बोझ है। खपरैल की तिकोनों के ऊपर कारखाने की चिमनी एक डरावनी उंगली की तरह आकाश की ओर इशारा कर रही थी...और उसमें से निकलता हुआ धुआं आसमान में इस प्रकार फैल रहा था, जैसे कोई काला शैतानी परचम हवा में लहरा रहा हो...।

गोपाल, जो इस गली और इसकी हर चीज से घृणा करता था, उसे भी आज मानना पड़ा कि उस दृश्य में एक चित्र अवश्य उभरता नजर आता है, एक भयंकर और कुरूप चित्र। और उसे ऐसा महसूस हुआ कि शायद इस अंधकारमय, बदसूरत दृश्य को पेंट कराने के लिए ही किस्मत ने उससे सारे सुंदर—लाल और पीले तथा नीले और हरे—रंग छीन लिए थे...

और फिर उसने सोचा, अच्छा, ऐसा है तो यही सही। मैं दो साल से देवी-देवताओं, राजकुमारियों, शहजादियों की भांति-भांति की तस्वीरें बनाता रहा हूं और दुनिया ने उन्हें देखने और परखने से इंकार कर दिया है। मैं अपने कला-मंदिर में रजनी की पूजा करता हूं, लेकिन उसने कभी भूले से भी मुझे याद नहीं किया। मैंने उसके चरणों में इंद्रधनुष के सारे रंग रख दिए, मगर उसने मेरी भेंट को कभी स्वीकार नहीं किया। मैंने अपनी कला के लिए मजदूरी करके, भूखा रह कर, अपनी नींद और आराम तथा अपने खून की कुरबानी दी, परंतु किसी ने मेरी कला की ओर नजर उठा कर नहीं देखा। अब मैं इस दुनिया, इस समाज से यह भयानक चित्र बना कर ही बदला लूंगा, ताकि लोग देखें कहां और किस हाल और माहौल में गरीब, गुमनाम कलाकार अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

और उसी पल चित्र का नाम भी बिजली की तरह कौंधता हुआ उसके दिमाग में आ गया—'जहां मैं रहता हूं'...अपने रंगों के डिब्बे को उठा कर वह खिड़की में लाया और उसमें से लाल और नीले तथा पीले और हरे रंगों की खाली पिचकी हुई ट्यूबें बाहर गली में फेंक दीं और काले रंग की भरी हुई ट्यूबें ऐसे उठा लीं जैसे वे उसके हथियार हों।

दो दिन और दो रात वह बराबर उस चित्र पर काम करता रहा...। खाना-पीना, नहाना धोना, दाढ़ी बनाना, कपड़े बदलना, सब कुछ भूल गया। उसे धुन थी तो यही कि इस अंधेरी, गंदी गली के चित्र में उस सारे समाज की तस्वीर खींच कर रख दे जो इस अधेरे और गंदगी को परवान चढ़ाता है। यहां तक कि उसके कैनवस पर न केवल गली के नाक-नक्श नजर आने लगे बल्कि उस गली की आत्मा भी उभर आई...इस आत्मा का अनुभव गोपाल को आज पहली बार हुआ था। चित्र बनाते हुए, उसने अपनी गली को एक नये ढंग से देखा। कलाकार की आंखों से देखा और उसकी निगाह गली की गंदगी और अंधकार को चीरती हुई उस मानवता तक जा पहुंची जो इस गंदगी और अंधेरे में छिपी हुई थी।

अब गोपाल ने देखा कि उसकी गली ईंट-पत्थर और लकड़ी के ढेरों से मिल कर नहीं बनी, बल्कि उन इंसानों की जिंदगी के ताने-बाने से बनी है जो उसमें रहते हैं। पहली बार उसने देखा कि यहां के रहने वाले जानबूझ कर गंदे नहीं रहते, गंदा रहने पर मजबूर हैं। उसने देखा कि पनवाड़िन की दुकान के सामने लगा हुआ नल केवल दो-तीन घंटे के लिए चलता है, वह भी सुबह-सबेरे जबकि आसपास की सब चालों की स्त्रियां, अपनी-अपनी गागरें लेकर पानी भरने आती हैं और पानी की एक-एक कीमती बूंद पर कितना लड़ाई-झगड़ा होता है और फिर नल में पानी आना बंद हो जाता है। कितनी ही स्त्रियां खाली गागरें लिए म्युनिसपैलिटी को गालियां देती हुई वापस चली आती हैं। इसलिए उसने अपने चित्र में सुबह का समय ही रखा और दिखाया कि स्त्रियों की कतार खाली गागरें लिए इंतजार में खड़ी है। एक गागर जल के नीचे रखी है और नल में से एक-एक बूंद, सिर्फ एक-एक बूंद टपक रही है...अब गोपाल ने देखा कि इस गली में रहने वाले गंदे हैं, लेकिन बुरे नहीं हैं। वे आपस में लड़ते थे, गाली-गलौच करते थे मगर उनके दिलों में ईर्ष्या और लालच नहीं था। वे मेहनत-मजदूरी से झुके-झुके परेशान जरूर रहते थे, मगर उनके चेहरों पर से मुस्कान बिलकुल गायब न हुई थी। वे अब भी हंस सकते थे और हंसते थे...और गोपाल ने कोशिश की कि यह सब कुछ उसके चित्र में आ जाए, मगर जब चित्र बन कर तैयार हुआ तो गोपाल को संतोष न हुआ। ऐसे लगा जैसे कि चित्र में किसी चीज की कमी है। गली की उस आत्मा की कमी थी जो वहां के रहने वालों की हंसी, मुस्कुराहट, चीख-पुकार, बच्चों के खेल-कूद में प्रकट होती थी। उस आशा की कमी थी जो इस गली के रहने वालों

के दिलों में अभी तक जीवित थी...। मगर इस आत्मा को, आशा को, इस तड़प और जोश को, इस गली के भविष्य को कैसे इस चित्र में दिखाए? रात भर गोपाल खिड़की में बैठा यही सोचता रहा, मगर उसकी समझ में न आया...। यहां तक कि सबेरा हो गया। और सोती हुईं गली आंखें मलती हुई जाग उठी। औरतें फिर लाईन बना कर नल के निकट खड़ी हो गईं। पनवाड़िन ने अपनी दुकान को झाड़ना-पोंछना शुरू कर दिया। सबेरे की शिफ्ट वाले मजदूर कारखाने को जाने लगे। कितनी ही रसोइयों से धुआं निकल कर, चिमनी के धुएं से मिलने लगा। यही सब कुछ तो उसने अपने चित्र में भी दिखाया था, मगर जब उसकी नजर छतों पर से होती हुई ऊपर उठी तो अचानक उसे पता चला कि उसके चित्र में किस चीज की कमी थी? सुर्खी की कमी थी।

सारे आकाश पर सबेरे की गुलाबी उषा फैली हुई थी जैसे किसी सुंदरी ने, जैसे रजनी ने, सोकर उठते ही अपने चेहरे पर पाऊडर और लाली रचा ली हो और इस गुलाबी आकाश की पृष्ठभूमि में गली की गंदगी और स्याही थी। काली रात, जो अब खत्म हो रही थी, जो सबेरे की सुर्खी में घुलती जा रही थी, उसके चित्र के आसमान को भी सबेरे की, नये दिन की आशा की सुर्खी से जगमगा उठना चाहिए। यह अहसास बिजली की तेजी के साथ उसके दिमाग पर चमका। मगर यह सुर्खी आए कहां से? उसके पास लाल रंग था ही नहीं। न बाजार से खरीदने के लिए पैसे थे, न किसी से उधार ला सकता था।

लेकिन चित्र के आकाश में सुर्खी तो जरूर होनी चाहिए...।

गोपाल को याद आया कि उसी दिन चित्र को नुमाइश के लिए भेजना है...मगर सुर्खी कहां से आए?

आकाश पर सुर्खी छाई हुई थी। मगर गोपाल के हाथ वहां तक नहीं पहुंच सकते थे कि आकाश के चेहरे से उतार कर अपने चित्र में सुर्खी भर दे।

तो क्या चित्र अधूरा रहेगा?

नहीं, नहीं....गोपाल को ऐसा लग रहा था कि चित्र अधूरा रहा तो उसकी जिंदगी, उसकी मेहनत, और उसकी कला—सब बेकार हो जाएगी।...तीन रातें जागने के बाद उसका सिर चकरा रहा था। हाथ-पैर बुखार से जल रहे थे...गाल तमतमा रहे थे...।

उसे अपना कमरा, सब चित्र, महात्मा बुद्ध, भगवान कृष्ण, सावित्री और शकुंतला, मुगल शहजादी और राजपूत राजकुमारी, कमल के फूल, हरी-भरी वादियां—हर चीज घूमती हुई लग रही थी....बस एक चीज अपने स्थान पर स्थिर थी, उसका नया बनाया हुआ चित्र जो संपूर्ण होने के लिए सुर्खी के चंद रंगों की प्रतीक्षा में था... न जाने कैसे और कब गोपाल एक टूटे हुए शीशे के सामने खड़ा हो गया जिसमें देख कर वह शेव किया करता था। दर्पण में अपनी सूरत देख कर वह डर गया। दाढ़ी बढ़ी हुई, बाल बिखरे हुए और धूल में अटे

हुए, कमीज की कालर पर काले पेंट के धब्बे, आंखों में लाल-लाल डोरे, तपते हुए गालों पर सुर्खी...बुखार में जलते हुए, खौलते हुए खून की सुर्खी।

कला-प्रदर्शनी में सबसे अधिक भीड़ 'जहां मैं रहता हूं' चित्र के सामने थी। प्रथम पुरस्कार भी उसी को मिला था। कला के समझने वाले, कला को परखने वाले, कला को खरीदने वाले, कला को बेचने वाले,—कला की दलाली करने वाले, कला की पूजा करने वाले, कला के बारे में लंबी-चौड़ी डींगें मारने वाले— सभी वहां मौजूद थे। सभी गोपाल की सराहना कर रहे थे।

"यह है सच्ची कला।"

"जीवन का वास्तविक रूप।"

"कितनी जान है इस चित्र में, मुंह से बोलता है।"

"गोपाल ने चित्र नहीं बनाया, जीवन को दर्पण दिखाया है।"

"मगर दो सौ रुपये बहुत हैं इस चित्र के।"

"कला की कोई कीमत नहीं होती।"

"इस चित्र से रोमांटिक आर्ट का दौर खत्म और नये आर्ट का युग शुरू होता है।"

"कितनी गहरी नजर है कलाकार की, हर छोटी से छोटी चीज तक पहुंची है।"

"ऐसा लगता है कि कलाकार ने महीनों इस गली में जाकर वहां के गरीबों के जीवन का गहरा अध्ययन किया है।"

"इस पूरी गली को काले रंग से पेंट किया है...इस विचार को भी दाद देनी पड़ती है। कितनी उदासी है इस स्याही में ! कितना दुख, कितना दर्द है, कितना गहरा सन्नाटा! जैसे एक गली का चित्र न हो—संसार के सारे गरीबों के जीवन का चित्र हो...।"

"हां, लेकिन आकाश पर जो उषा की लाली है...असल कमाल तो यह है, जिससे चित्र का अर्थ ही बदल जाता है। बजाये मायूसी और निराशा के यह चित्र जनसाधारण के उज्ज्वल भविष्य की झलक दिखाता है।"

"यह लाल रंग का उपयोग वाकई खूब किया है।"

"और यह मामूली रंग नहीं है...यह खून की तरह सुर्ख है, जिसमें हल्की-हल्की कालिमा दौड़ती जा रही है...।"

"कलाकार ने जान कर इस रंग का उपयोग किया है...गोया नये सबेरे की सुर्खी जनसाधारण के खून से उत्पन्न होती है।"

"जनसाधारण के खून से या कलाकार के खून से?"

और इस पर सब कहकहा मार कर हंस पड़े। इतने में किसी ने कहा—"गोपाल आर्टिस्ट

को भी देखा?"

सब की निगाहें घूम गईं। "कहां ? किधर?"

"वह क्या है, दुबला-पतला सा, सूखा सा युवक जो दीवार का सहारा लिए, दूर से अपने चित्र की ओर देख रहा है।"

"जी नहीं, वह नहीं हो सकता। इतना बड़ा कलाकार ओर ऐसे फटे-पुराने कपड़े?"

"मगर मैं कहता हूं, यही है गोपाल।"

"बीमार मालूम होता है बेचारा...चेहरे का रंग तो देखो, बिलकुल पीला लगता है। बदन में खून है ही नहीं।"

कब्र

राम लाल

मैं पूरे सफर में सो नहीं सका था। सफर बहुत लंबा था और थका देने वाला भी। ऐसा महसूस हो रहा था कि यह सफर कुछ रातों और दिनों का नहीं है, कई युगों का है। मेरे शरीर के जोड़-जोड़ से जो दर्द उठ रहा था, वह सदा-सदा साथ रहेगा। मेरी आंखों में जो कांटे घुसे हुए थे वे मुझे जीवन भर चैन से नहीं सोने देंगे और मैं हमेशा इसी तरह घूमता रहूंगा, एक शहर से दूसरे शहर।

उस दिन मैं जबलपुर से आ रहा था। मेरे साथ मेरी पत्नी बिलकीस और तीन बच्चे—हामिद, नजमा और नसरीन भी थे। एक गाड़ी हमने इलाहाबाद में बदली थी। यह गाड़ी हमें लखनऊ ले जा रही थी। लखनऊ से हमें एक और गाड़ी में बैठ कर इकबालपुर जाना था।

इकबालपुर जाना मैंने कभी पसंद नहीं किया था। जब से मैंने शादी की थी, वहां केवल दो ही बार पहले गया था। वह भी बिलकीस के अनुरोध पर, क्योंकि वह वहां की रहने वाली थी। वह हर वर्ष वहां कुछ दिन बिता आती थी।

मैं आपको जबलपुर के संबंध में भी कुछ बता दूं। वहां मैं अठारह साल से रह रहा था। ट्रांसपोर्ट विभाग में अच्छी-खासी तनखाह पर मुलाजिम था और एक बहुत खूबसूरत और आरामदायक मकान का मालिक था जो मेरी वर्षों से बचा-बचा कर रखी हुई कमाई का प्रतिफल था। ऐसा फल जिसे पाकर किसी भी आदमी की बीवी अपने पति पर सचमुच गर्व कर सकती है। परंतु बिलकीस को इस मकान का आराम और सुंदरता कभी पसंद नहीं आई। उसने मेरी किसी भी सुंदर वस्तु को कभी प्रशंसा की नजर से नहीं देखा। मुझे मित्रों को खाने पर आमंत्रित करना अच्छा लगता है जिसके लिए वह नाक-भौं चढ़ा लेती है। मैं ब्रिज का शौकीन हूं। उसने इस खेल का 'क' 'ख' भी जानना पसंद नहीं किया। फिर भी मैंने उससे असीम मुहब्बत की है। बीते बारह वर्षों में जब से वह मेरे घर का शृंगार बन कर आई है मेरी मुहब्बत में जरा भी कमी नहीं आई। इस कारण कभी उस पर गुस्सा नहीं हुआ कि उसने मेरे खूबसूरत घर को पसंद क्यों नहीं किया; कि वह मेरे घर में खुद

को अजनबी क्यों समझती रही है। मैं उससे इसलिए भी प्रसन्न रहा हूं कि उसने मुझे अत्यंत सुंदर और शरारती बच्चे दिए हैं जिन्हें देख कर मैं अपना हर दुख भूल जाता हूं, हर अभाव भूल जाता हूं। मेरे मन में किसी के खिलाफ कोई शिकायत शेष नहीं रह जाती। बिलकीस ने जब कभी मुस्कुरा कर मेरी ओर देखा है, मेरे अंदर जीने की ललक और बढ़ गई है।

लेकिन मैंने कभी-कभी बिलकीस की आंखों में किसी ऐसे दुख को भी करवटें लेते देखा है जिससे मुझे स्वयं अपना संसार उलटता हुआ अनुभव हुआ है। कभी-कभी तो मुझे बेहद अकेलेपन का भी अहसास हुआ है, लेकिन जब हामिद, नजमा और नसरीन अपनी मासूम मुस्कुराहटों से मेरी ओर लपक कर आते हैं, और जब बिलकीस मुझे मेरे असीम निराश क्षणों में कंधे से छूकर पूछती है, "खालिद, क्या बात है? तुम खोए हुए क्यों हो?" तो मैं उस समय जैसे इस संसार में लौट-लौट कर आ जाता हूं। उस समय मेरे मन और मस्तिष्क पर से अकेलेपन और उदासी के बादल बिखर-बिखर जाते हैं।

जिस रात हम इलाहाबाद से लखनऊ जा रहे थे, वह रात बहुत ठंडी थी। इतनी ठंडी कि उसे पूरी तरह बयान करने के लिए मुझे शायरी करनी पड़ेगी। लेकिल शायरी मेरे बस का रोग नहीं है। इतना समझ लीजिए कि जनवरी का आरंभ हो चुका था और पिछले दो दिनों से एक जोरदार शीत-लहर चल रही थी। हमारे पास पूरा बिस्तर भी नहीं था, बस दो कंबल थे जो हम अफरा-तफरी की हालत में उठा पाए थे। एक कंबल में हामिद और नजमा सो रहे थे, दूसरे में बिलकीस और नसरीन। मैं अपने ओवरकोट में एक बंद खिड़की के साथ कमर टिकाए 'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' पढ़ रहा था। अकेले रह जाने वालों और अकेलापन पसंद करने वालों का साथ पुस्तकें ही दिया करती हैं। पुस्तकों के अलावा सिगरेट भी बहुत पिए थे। मैं बहुत ज्यादा सिगरेट नहीं पिया करता, परंतु उस रात सिगरेट पीने में मुझे एक अजीब सा सुख मिल रहा था।

पढ़ते-पढ़ते और सिगरेट पीते-पीते मुझे इकबालपुर याद आ रहा था। इकबालपुर हमारे सफर की मंजिल थी, लेकिन वहां मैं अपनी खुशी से नहीं जा रहा था, बल्कि बेमन से जा रहा था। आज तक वहां जाने से इंकार किया था। आपको बताया न कि वहां हर साल बिलकीस अकेली ही जाती थी, लेकिन इस बार मैं इंकार नहीं कर सका था। उसने जबलपुर छोड़ते समय मेरे सामने इकबालपुर जाने का सुझाव रखा तो मैं झट-पट राजी हो गया, लेकिन उस समय वह किसी दूसरे शांत स्थान का नाम लेती तो वहां चलने के लिए भी तैयार हो सकता था। मैं हर ऐसे स्थान पर जाने के लिए तैयार था जहां पहुंच कर मेरे सहमे हुए बच्चों की आंखों में वह पहली सी प्रसन्नता और चमक लौट आने की संभावना हो सकती थी।

इकबालपुर में हमारा कोई नहीं रहता था। मेरा तो वहां कभी अपना कोई प्यारा रहा

भी नहीं था। बिलकीस ही के अब्बा, अम्मी, नाना, बल्कि पूरा परिवार कभी वहां आबाद था। अब तो वहां कोई भी न था। अब्बा और अम्मी मर चुके थे। नाना भी वहीं की खाक में दफन हुए थे, यद्यपि वह अपनी जन्मभूमि को अलविदा कह देने का निश्चय कर चुके थे। उनके कई अपने प्यारे जन्मभूमि को छोड़ कर सीमा-पार भी जा चुके थे।

बिलकीस फिर भी इकबालपुर जाया करती थी, जहां केवल कब्रें ही कब्रें रह गई थीं और जिनकी देखभाल करने वाला भी अब कोई नहीं रहा था। हर वर्ष, वर्षा की तेज बौछारों से कोई न कोई कब्र अचानक जमीन के अंदर धंस जाती और एक गड्ढा सा बना देती थी, जिसकी कल्पना से भी दिल घबराता था। दो बार ही वहां जाकर मैं स्वयं को बेहद दुखी महसूस करने लगा था। वहां जाकर मुझे किसी प्रकार के सुख का अनुभव नहीं हुआ था, जैसा कि जबलपुर में होता था, या जैसा और कई शहरों में होता था।

जहां मुझे जानने वाले हजारों की संख्या में मौजूद थे, इकबालपुर की धरती पर तो चलते यूं लगता था जैसे पांवों के नीचे जगह-जगह गड्ढे बने हुए हैं, न जाने मैं कौन से कदम पर किस गड्ढे में उतर जाऊंगा।

इकबालपुर में बिलकीस की एक बहुत दूर की बुआ रहती थी, रहमत बुआ। खुदा जाने वह उसकी बुआ थी भी या नहीं, लेकिन बिलकीस सदा उसके यहां ही जाकर ठहरती थी। वह उस कस्बे की सबसे बूढ़ी स्त्री थी, अस्सी साल की। वह उसके नाना-दादा के वक्तों की थी। उसके सारे परिवार को जानती थी जो आधा धरती-तले जा चुका था और आधा पाकिस्तान में। बिलकीस भी किसी काफिले के साथ वहां चली गई होती, जैसा कि उसके स्वर्गीय नाना चाहते थे। उसके नाना तो अपने एक प्रिय युवक का चुनाव भी कर चुके थे, जो वहां जाकर लाहौर में बस गया था। बिलकीस का हाथ किसी के हाथ में देने का अधिकार उसके नाना को ही हो सकता था, क्योंकि वह अपने माता-पिता की अपेक्षा उनके अधिक निकट रही थी। उन्होंने ही उसे अरबी-फारसी और उर्दू की शिक्षा दी थी। लेकिन जब बिलकीस के सामने उसकी जिंदगी की सब से बड़ी मंजिल आ गई तो उसके अपने अब्बा रास्ते में रुकावट बन गए। वह अपनी संतान को उसी धरती पर रखना चाहते थे जहां वह स्वयं रहते थे। उनका यह विचार परिवार के अंदर एक जोरदार मतभेद का कारण बन गया। केवल मतभेद का ही नहीं, बल्कि बिलकीस के नाना की मृत्यु का भी। वह इस सदमे को सहन न कर सके। जिस दिन मैं बिलकीस को अपनी दुल्हन बना कर जबलपुर ले जा रहा था, उसी दिन उसके नानाजी का देहांत हुआ। बिलकीस जब रहमत बुआ के पास जाती थी, वह उसे उसके नानाजी की बहुत सी बातें सुनाया करती थी। उनकी सारी आदतें, जिनके कारण वह अपने कस्बे में प्रसिद्ध थे। बिलकीस को स्वयं भी अपने नानाजी की बहुत सी बातें याद थीं—उनका एक विशेष अंदाज से हंसना, खांसना, गुस्सा

होना, कुरान शरीफ पढ़ना और शेख सादी के शेरों की व्याख्या करते समय अपने ऊपर एक जादू सा कर लेना।

रहमत बुआ से मिलने के लिए वहां पाकिस्तान से कई लोग आते-जाते रहते थे। रहमत बुआ सब की खैर-खबर रखती थी। बिलकीस जब इकबालपुर से लौटती, तो उसकी वही हालत होती जो किसी स्त्री की मायके से लौटने के बाद हुआ करती है। वह एक-एक मित्र-प्यारे का हाल सुनाती। मैं न पूछता, तब भी वह बता देती। कभी-कभी लाहौर छावनी के डिपो के सुपरवाईजर का उल्लेख उसकी जुबान पर आ जाता था, जो अब कई बच्चों का बाप बन चुका था।

मेरा ध्यान पढ़ने से हट चुका था। इकबालपुर के बारे में सोचते-सोचते मेरी निगाहें बिलकीस के चेहरे पर जमी रह गई थीं। उसने एक बार करवट बदली तो उसके सिर के नीचे रखा हुआ काला बुर्का खिसक कर नीचे गिर पड़ा। मैंने बुर्का उठा कर उसके सिर के नीचे रखना चाहा तो उसकी नींद टूट गई। उसने मेरी ओर चौंक कर देखा, लेकिन मुझे मुस्कुराता हुआ पाकर फिर लेट गई। फिर आंखें बंद कर लीं और सो गई। मैंने एक नयी सिगरेट सुलगाई और 'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' के खुले पृष्ठों पर से वह पंक्ति ढूंढने लगा जहां मैंने उसे छोड़ दिया था। लेकिन मैं बहुत देर तक इस पुस्तक में खोया हुआ न रह सका। मेरी नजरों के सामने बार-बार बारह वर्ष पहले वाली बिलकीस आकर खड़ी हो जाती थी, जो उस समय एक सोलह-सतरह साल की सीधी-सादी लड़की थी, जिसका सबसे बड़ा आकर्षण उसके चमकते हुए काले बालों की आसाधारण लंबाई में नहीं था, बल्कि उसके चेहरे के मनोहर नाक-नक्शों में भी था जो उसे गत वर्षों में भारत में बसे पठान-परिवारों से विरसे में मिले थे। लेकिन वह अपने शरीर में खैबर के पर्वतों की बुलंदी और गठन ही नहीं रखती थी, बल्कि उसकी सुंदर आंखों में दूर-दूर तक फैले उत्तरी मैदानों पर छाए हुए आकाश की गहरी नीलिमा भी मौजूद थी जो किसी भी पूरब की लड़की के अत्यंत बुद्धिमान और तीव्र प्रेम से भरे होने का द्योतक हुआ करती है। बिलकीस की आंखों में जब कभी बेचैनी झलकती, वह मेरे गले का कांटा बन जाती थी। मैंने अपने लिए जो राहें चुनी थीं, मैं जिधर भी मुड़ कर जिस ओर भी गया था, वह मेरे पीछे-पीछे चलती ही आती थी, परंतु ऐसे जैसे कोई अपने सिर पर मनों बोझ उठाकर लड़खड़ाता हुआ चल रहा हो। आज जब मैं उसके साथ इकबालपुर जा रहा था तो खुद भी लड़खड़ाता हुआ चल रहा था, शायद यह उसी हार का अहसास था जो मेरे दिल पर एक पहाड़ जितना भारी बोझ बन कर बैठ गया था।

सहसा कंपार्टमेंट की पीली और बीमार रोशनी में मैंने सुबह के उजाले की किरण देखी जो एक खिड़की के कोहरा-पुते शीशे के पीछे से झांक रही थी। उसी समय गाड़ी एक स्टेशन

पर अचानक रुक गई थी। अब उसे लखनऊ से पहले किसी स्टेशन पर नहीं रुकना चाहिए था। लेकिन वह रुक गई थी। मैंने सोचना छोड़ कर बाहर की आवाजों पर कान लगा दिए थे। सख्त कंकर वाली भूमि पर कोई धीरे-धीरे चलता हुआ जा रहा था। इंजन अचानक रुक जाने के बाद जोर-जोर से सांस लेता हुआ जैसे हांफ रहा था। जब गाड़ी कई मिनटों तक नहीं चली तो मैं दरवाजा खोल कर बाहर देखने लगा। धुंध में डूबा हुआ एक छोटा सा स्टेशन था। ऊंचा प्लेटफार्म, छह-सात कमरों की एक-मंजिला इमारत और दूर और पास की बत्तियां—सफेद और हरी। हवा बंद हो चुकी थी। मेरे सामने कुछ ही दूरी पर अपने छोटे से दफ्तर में एक लैंप के आगे रात की ड्यूटी वाला स्टेशन-मास्टर कुछ लिखने में व्यस्त था। मैं कई मिनटों तक उसकी ओर देखता रहा। फिर उस कुली की तरफ देखने लगा जो इंजन पर से गरम-गरम चाय से भरा हुआ एक मग उठाए गार्ड के पास ब्रेक की ओर लंगड़ाता हुआ जा रहा था। वह बहुत धीरे-धीरे चला आ रहा था। उसके चलने की आवाज से मैंने अनुमान लगाया कि थोड़ी देर पहले वह मेरी बंद खिड़की के पास से गुजरा था। जब वह निकट आया तो मैंने ध्यानपूर्वक देखा, परंतु मुझे भारी-भरकम ओवरकोट और नीली पगड़ी में छिपे हुए एक साये के अलावा कुछ दिखाई नहीं दिया। मैंने उससे पूछा, "यह कौन सा स्टेशन है?" तो वह रुका नहीं। मेरी ओर देखे बिना जाते-जाते कह गया, "नगोहां।" नगोहां का नाम सुन कर मैं एकाएक ही जैसे चौंक पड़ा। मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इसी स्थान का नाम नगोहां हो सकता है। मुझे याद नहीं आ रहा था कि लखनऊ से पहले नगोहां भी एक स्टेशन आता है। वास्तव में इधर से मैं जब भी गुजरा था, गाड़ी रात में ही गई थी और वहां कभी रुकी भी नहीं थी जैसे अब अचानक रुक गई थी।

अब कुली से और अधिक पूछने के लिए प्लेटफार्म पर उतर गया, लेकिन वह बहुत दूर जा चुका था। मैंने प्लेटफार्म पर चल कर उस बात की तसल्ली करने की कोशिश की कि क्या वह स्थान वाकई नगोहां हो सकता है। फिर स्टेशन-मास्टर के कमरे में जाकर उससे वही सवाल किया। उसने कुली की बताई हुई बात का समर्थन किया, तो मैंने अपने अंदर एक अजीब सी खुशी की लहर महसूस की जो मेरे अंग-अंग में दौड़ती जा रही थी। मैं तेज-तेज कदमों से चलता हुआ बाहर निकल गया। सिर उठा कर इमारत को गौर से देखा। सुबह की धीरे-धीरे बढ़ती हुई रोशनी में एक स्थान पर नगोहां लिखा हुआ भी दिखाई दिया। लेकिन अब यह स्थान इतना बदल चुका है ! पहले तो स्टेशन पर केवल एक ही कमरा था। तब यह ऊंचा प्लेटफार्म भी नहीं था। बिलकुल जमीन के साथ लगा हुआ प्लेटफार्म था। उस समय तक मैं एक विचित्र से उन्माद में मस्त हो चुका था। मैं झट-पट डिब्बे में जाकर बिलकीस को यह खुशखबरी सुना देना चाहता था कि गाड़ी नगोहां स्टेशन पर रुकी

हुई है।

लेकिन डिब्बे के अंदर जाने से पहले मुझे एक और खुशी ने घेर लिया। वह खुशी, पहली खुशी से कहीं अधिक प्रबल थी। इसने तो मुझे पागल कर दिया। मैं भागता हुआ स्टेशन-मास्टर के पास गया। मैंने अपनी जेब से गाड़ी के टिकट निकाल लिए थे। हर टिकट उसके सामने मेज पर रख कर पूछा, "क्यों साहब, गाड़ी अभी कुछ और देर रुकेगी? और क्या हम यहां उतर सकते हैं? यदि हम यह गाड़ी छोड़ कर दिन में किसी दूसरी गाड़ी में चले जाएं तो कोई हर्ज तो नहीं होगा?" उसने मेरे प्रश्नों का उत्तर सिर हिला कर "हां" में दे दिया और मेरी ओर थोड़ी हैरानी से देखता भी रहा। मैं अपनी खुशी को और देर तक काबू में न रख सका और खुश होकर उससे कहने लगा—"धन्यवाद, जनाब ! मैं इसी गांव का रहने वाला हूं। पर यहां पच्चीस साल से नहीं आया हूं। देखिए, यह कितना अजीब इत्तिफाक है कि गाड़ी यहां इस तरह अचानक रुक गई है। और मैं महसूस कर रहा हूं जैसे यह मेरे लिए ही रुकी है।" मैं अपने आप हंसता हुआ बाहर चला आया। लेकिन दो कदम चल कर फिर रुक गया। पलट कर पूछा, "लेकिन जनाब, यह कहीं चल न दे, मेरे साथ मेरे बच्चे भी हैं।"

"नहीं श्रीमान जी, आप इत्मीनान से उतर सकते हैं। आगे से एक और गाड़ी आ रही है।"

मेरे मुंह से एक लंबी सी "ओह" निकली और मैं भागता हुआ सा अपने डिब्बे में जा पहुंचा। बिलकीस कुछ क्षण पहले ही जगी थी और वह मुझे अपने पास न पाकर और दरवाजे को खुला हुआ देख कर हैरान हो रही थी।

मैंने एक विचित्र सी मस्ती के साथ अपने दोनों हाथ उसके गालों पर रख दिए, जिन्हें उसने एक झटके से परे हटा दिया, क्योंकि उस डिब्बे में दूसरे मुसाफिर भी सोए हुए थे। लेकिन मैंने अपनी गलती की कोई परवाह न करते हुए उससे कहा, "बिलकीस, शीघ्र ही बच्चों को जगा दो। हम यहां उतरेंगे, इसी स्टेशन पर। लेकिन देर मत करो। यह गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से क्रास करने के लिए रुकी हुई है। उसके बाद झट-पट चल देगी।"

मैं खुद ही बच्चों को जगाने लगा। एक-एक को धीरे-धीरे हिलाया और पुकारा और शायद बिलकीस मेरी खुशी का जरा सा भी अंदाजा नहीं कर सकती थी। वहां अचानक उतर पड़ने की बात सुन कर वह घबरा सी गई थी। जल्दी से पास लेटी हुई नसरीन को सीने से लगा कर पूछने लगी, "हाय अल्लाह ! खैर तो है ?"

उसका इतना घबराया हुआ चेहरा देख कर मेरी फूटती हुई हंसी गायब हो गई, बिलकुल ही गायब हो गई। मुझ पर निराशा छा गई। अभी चंद मिनट पहले मैं कितनी तेजी से दौड़ता फिरता था। इस समय मेरे पांवों में जंजीरें सी पड़ गईं। मैं जहां खड़ा था, वहीं रुका

रह गया। कुछ क्षणों तक बिलकीस की आंखों में देखता रहा। उन्हीं आंखों में जो जबलपुर से निकलते समय बेहद खतरों के बावजूद एक दबी-दबी जीत के अहसास से चमक उठी थीं, लेकिन अब उन में कोई चमक नहीं थी। उनमें सिर्फ डर ही डर था।

लेकिन मैं कुछ क्षणों की खामोशी के बाद संभल गया तो मुझे अपनी खुशी वापस आती हुई अनुभव हुई। शरीर में फिर शक्ति आ गई। मैंने मुस्कुराने की कोशिश करते हुए कहा, "आगे कोई खतरा नहीं है। हम अपनी इच्छा से यहां उतरेंगे। अपनी खुशी से फिर चल देंगे। खतरा तो बस वहीं तक था, जहां से हम चले थे।"

हम सब गाड़ी से नीचे उतर गए। हामिद और नजमा अपने कोटों की जेबों में हाथ डाले, जमीन पर उकड़ूं बैठ कर गाड़ी के पहियों के नीचे से उधर दूसरी दिशा में जाती हुई गाड़ी को देखने लगे थे। नसरीन बिलकीस की छाती से लगी हुई है। बिलकीस ने उसे सर्दी से बचाने के लिए अपना बुर्का फैला दिया था। मैं दोनों कंबल और एक अटैची केस उठाए वेटिंग रूम की ओर बढ़ा। बिलकीस बच्चों को साथ-साथ न चलने के लिए डांट-डपट करने लगी।

कुछ ही देर बाद दिन का उजाला चारों दिशाओं में फैल गया। बिलकीस वहां उतर जाने के कारण अब तक परेशान थी और बेंत से बने हुए एक चौड़े से बैंच पर कंबल ओढ़ कर लेट गई थी। हामिद और नजमा बाहर प्लेटफार्म पर घूमते-फिरते थे। नन्हीं नसरीन जाली के पीछे खड़ी होकर आश्चर्य से झांक रही थी।

अचानक हामिद ने बाहर आने के लिए पुकारा। मैं बाहर गया तो वह हैरान होकर मुझसे उस कुली की ओर देखने के लिए कहने लगा जो गले में बुझे हुए सिगनलों की बत्तियों का हार डाले, दोनों हाथों से मिट्टी के तेल की आधी-भरी बोतलें उठाए लंगड़ाता हुआ चला आ रहा था। वह वही कुली था जो मुझे सुबह के धुंधलके में मिला था। उस समय उसने अपना चेहरा सर्दी से बचने के लिए पगड़ी से छिपा रखा था। अब मैं उसे साफ देख सकता था। वह भी मेरी ओर देखते हुए चला आ रहा था। हम एक-दूसरे पर से नजरें न हटा सके। वह बिलकुल पास आ गया तो वह 'खालिद भाई' कह कर रुक सा गया। केवल कुछ ही कदम दूर, इस बात का विश्वास करने के लिए कि मैं सचमुच खालिद ही था न !

मैं उसे "अरे तुम हो, रामदासे !" कह कर खुशी और हैरानी के मिले-जुले भावों के साथ आगे बढ़ गया। उसे बुझी हुई बत्तियों के हार समेत ही गले से लगा लिया। मुझसे इस तरह अचानक मिल कर उसकी आंखों में आंसू चमकने लगे। कई दिनों से उगी हुई खिचड़ी सी दाढ़ी में छिपी हुई सांवली चमड़ी चमकने लगी। मैंने पूछा, "यह तुम लंगड़ाते हुए क्यों चल रहो हो।"

उसने उत्तर दिया, "जोड़ों के दर्द ने यह हाल कर रखा है। तुम अपनी कहो, खालिद भाई ! आज इधर कैसे भूल पड़े? जान पड़ता है, कहीं अफसर जरूर हो गए हो। क्यों, गलत तो नहीं कहा मैंने?" यह कह कर वह स्वयं ही हंस पड़ा। मैंने उसे एक बार फिर गले लगा लिया ओर फिर भरे हुए गले से अपने बच्चों को बताया—"जानते हो, यह कौन है? मेरा बचपन का मित्र। हम दोनों इसी गांव में खेले हैं। वे सामने जो बहुत सारे मकान दिखाई दे रहे हैं, वही हमारा गांव है। वहां की हर गली...हर गली का चप्पा-चप्पा हमारे बीते हुए जमाने का साक्षी है। क्यों, रामदास?"

उसने 'हां' में सिर हिलाया तो बत्तियों का हार बज उठा। बच्चे मुस्कुराने लगे। रामदास ने हम सब को अपने हाथ से बना कर चाय पिलाई। स्टेशन के पास एक छोटी सी बजरिया में जाकर गर्म-गर्म जलेबियां भी ले आया। फिर हम सब गांव देखने के लिए चल दिए। मैं उन्हें अपना गांव दिखाने में गौरव का अनुभव कर रहा था। बच्चे भी प्रसन्नता और चाव से भरे हुए थे कि इस गांव में उनका अब्बा कभी उनकी उम्र के बच्चों की भांति फिरता रहा था। बच्चों को जब अपने माता-पिता के बचपन की बातों का ज्ञान होता है तो वे हैरान भी होते हैं और प्रसन्न भी। मैं अपने बच्चों की हैरानी और खुशी की इस स्थिति से बहुत आनंदित हो रहा था। मुझे बच्चों के साथ खेलने में बहुत मजा आता है, उन्हें छेड़ने में, विचित्र और अनोखी बातें सुना-सुना कर आश्चर्य-चकित कर देने में और कोई ऐसी बात करने में, जिस पर वे खिलखिला कर हंस पड़ें। मैं बच्चों को खुश रखने के सारे ढंग भी जानता हूं। उन्हें जोर-जोर से हंसता हुआ देखता हूं तो यूं अनुभव होता है जैसे मेरे इर्द-गिर्द रंग-बिरंगे महकते हुए फूलों वाले कई गुलजार खिल गए हैं।

हमारे साथ बिलकीस भी थी। चेहरे से पर्दा उठाए चुपचाप साथ दे रही थी। न हंसती थी, न मुस्कुराती थी, न ही कोई बात पूछती थी। मैंने जब अपने बचपन के दोस्तों के अजीब-अजीब नाम शिब्बू, नवाबो, गुरशरणी, राम भजो इत्यादि सुनाए तो बच्चे खिलखिला कर हंस पड़े, परंतु बिलकीस के चेहरे पर बस एक व्यंग्य ही उभर सका।

अब तो गांव की रूप-रेखा ही बदल चुकी थी। उस बड़े मैदान में जो स्टेशन और गांव के बीच खाली पड़ा रहता था और जहां हम दौड़ लगाया करते थे, अब कई मकान बन चुके थे। वहां पानी का वह तालाब भी दिखाई दिया, जिसमें एक ईद के अवसर पर मुझे एक लड़के ने धक्का देकर गिरा दिया था और मेरे नये कपड़े भीग गए थे। और जब मैं घर पहुंचा था, तो मुझे मेरे अब्बा ने खूब पीटा था। मेरे इस तरह पिटने की बात सुन कर हामिद ने बड़े जोर का कहकहा लगाया और पूछा, "अच्छा अब्बू, यह बताइए, आपको आपके अब्बू ने किस प्रकार पीटा था?"

"जिस प्रकार पीटा जाता है।"

"मेरा मतलब है, छड़ी से या थप्पड़ों से?"

"इस तरह थप्पड़ों से।" मैंने हंसते हुए उसके गाल को थपथपा भी दिया।

नजमा बोली, "लेकिन अब्बा, आप तो हमें कभी नहीं मारते।"

मैंने मुस्कुराकर बिलकीस की ओर देखा और शरारत से कहा, "मेरे स्थान पर तुम्हें तुम्हारी अम्मी जो मारा करती है।"

बिलकीस तब भी नहीं मुस्कुराई। नजमा अपनी मां के साथ जा लगी और बोली, "कहां मारा करती है, अम्मी! यह तो हमें प्यार करती है।"

मैं उन्हें अपना मकान भी दिखाना चाहता था जिसे पच्चीस वर्ष पूर्व मेरे पिता ने अपना हाथ तंग होने के कारण बेच दिया था, क्योंकि वह मुझे हाई स्कूल और कालेज की शिक्षा दिलाना चाहते थे। लेकिन जब वहां पहुंचे तो वहां एक दूसरे ही मकान का निर्माण हो चुका था जिसमें रहने वाले हमें पहचानते तक नहीं थे। वहां हमें अभी तक रामदास के सिवास किसी ने भी नहीं पहचाना था। वहां कोई ऐसा व्यक्ति था भी नहीं। वहां की अधिकतर जनसंख्या यदि वहीं पर दुकानदारी या खेती-बाड़ी नहीं करती थी तो फिर आसपास के जिलों के मुख्यालयों पर जाकर कारखानों में नौकरी करके या सड़कों पर रिक्शा चला कर अपना पेट पालती थी। मैं अपनी ही गलियों में गैरों की तरह घूमता रहा। मस्जिद के सामने रुक कर मैंने उस इमाम को याद किया, जिसने मुझे नमाज पढ़ना सिखाया था। अपने जमाने के प्राईमरी स्कूल में पहुंच कर उसी कमरे के कोने को तलाश किया जहां बैठ कर मैं पढ़ता था और स्कूल से मिला हुआ काम न करने के कारण अपने अध्यापक के सामने मुर्गा बन कर सजा पाया करता था। अब वह हाई स्कूल बन गया था।

मैं जहां-जहां गया, बच्चे मेरे साथ खुश-खुश घूमते रहे। मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मेरा बचपन फिर वापस आ गया है और एक बच्चे का रूप धारण कर मेरे संग घूमता-फिरता है।

हम लोग घूमते-फिरते रेलवे लाईन के पास जा पहुंचे। अब हम स्टेशन के दूसरे सिरे पर थे, उत्तरी सिरे पर, जिधर लखनऊ था। वहां पहुंचते ही मेरे अंदर एक विचित्र बेचैनी सी पैदा हो गई। मैं एक भूली-बिसरी हुई जगह तलाश करने लगा। वहां रेलवे लाईन के सामने, जहां फासले पर आम का पेड़ था। इस पेड़ के सामने रेलवे लाईन बल खा जाती थी। परंतु वहां न वह पेड़ दिखाई देता था, न ही रेलवे लाईन का वह बल...

"अब्बू, आप क्या ढूंढ़ रहे हैं?" बच्चों ने भी बड़ी बेचैनी से मुझसे पूछा। मैं उन्हें बताने लगा, "जब मैं यहां रहता था, तो मेरे पास एक बहुत ही खूबसूरत कुत्ता था, छोटा सा, इतना छोटा कि जब चलता तो बिलकुल धरती के साथ लगा हुआ लगता। उसके शरीर पर गहरे भूरे रंग के लंबे-लंबे चमकदार बाल थे, जो उसके मुंह पर उगे हुए थे, उसकी

आंखों पर भी गिर-गिर पड़ते थे। उसकी प्यारी-प्यारी आंखें थीं। हम एक-दूसरे की आंखों में आंखें डाल कर कितनी-कितनी देर तक देखते रहते थे।"

"उसका नाम क्या था, अब्बा?"

"पप्पी।"

"पप्पी, बहुत ही प्यारा नाम है।"

"अब वह कहां है, अब्बू?"

"वह आप ने लिया कहां से था, अब्बा?"

"मेरे अब्बा को एक अंग्रेज अफसर दे गया था। उस अंग्रेज की मेरे अब्बा ने बहुत सेवा की थी। मेरे अब्बा ने यह कुत्ता मेरे ही लिए उससे मांगा था। बहुत ही कीमती था वह। लेकिन उस अंग्रेज ने मेरे अब्बा को दे ही दिया था। पप्पी फिर मेरा मित्र बन गया। पहले मुझ पर बहुत भौंकता था। फिर मुझ से प्यार करने लगा। हर समय मेरे पांव चाटता था। मेरी सीटी की आवाज सुनते ही भागा हुआ आता था। मैं खेलने के लिए कहीं जाता तो वह मेरे साथ-साथ ही रहता था। मैंने उसके गले में घुंघरू बांध रखे थे। वह भागता तो घुंघरू बहुत ही मजे से बजते थे। छन-छन, छन, छन, छन।"

बच्चों की मुस्कुराहटें चौड़ी होती गईं, आंखों की चमक बढ़ती गई। बिलकीस हमारे करीब ही थक कर लाईन पर बैठ गई थी। मैं बच्चों के सामने खड़ा अपनी कहानी सुना रहा था।

"पप्पी को मैंने गेंद उठा लाना भी सिखा दिया था। जब हम गुल्ली-डंडा खेलते, तो वह भाग कर अपने-आप ही गुल्ली उठा कर ले आता था। धीरे-धीरे मैंने उसे अपनी किताबों का बस्ता उठाना भी सिखा दिया। जब मैं लखनऊ के एक मिडिल स्कूल में पढ़ने के लिए हर रोज गाड़ी से जाने लगा तो पप्पी, मेरा बस्ता उठा कर स्टेशन जरूर आता था। वहां मैं उससे बस्ता लेकर गाड़ी में चढ़ जाता। गाड़ी चल पड़ती तो गाड़ी के साथ-साथ भागने लगता। वह कुछ दूर तक ही भाग पाता था। फिर गाड़ी तेज हो जाती। वह एक मोड़ तक पहुंच कर रुक जाता था। गाड़ी चली जाती तो वह घर लौट आता...

"एक दिन हम गाड़ी में बैठे हुए उसे 'पप्पी, पप्पी' कहते हुए जा रहे थे। वह गाड़ी के साथ-साथ खुशी से उछलता हुआ भाग रहा था। हम जोर-जोर से पुकारते रहे। वह और तेज भागने की कोशिश करता था। जब गाड़ी लाईन के मोड़ से घूमने लगी तो उसने भी घूम कर साथ देना चाहा। लेकिन वह मोड़ बहुत ही खतरनाक था। तेजी से भाग कर आता हुआ वहां कोई भी आदमी गाड़ी के नीचे आ सकता था। उस दिन पप्पी जब मोड़ से निकलने लगा, अचानक गाड़ी के नीचे आ गया।" यह सुन कर बच्चों के मुंह खुले रह गए।

मैंने बताया, "वह गाड़ी के नीचे कट गया। हम लोगों ने गाड़ी की जंजीर खींच ली। जंजीर खींचने से गाड़ी रुक गई। हम लोग नीचे उतर आए। पप्पी कट चुका था। पत्थरों और कोयलों पर उसके गर्म खून का जैसे छिड़काव सा हो गया था। उसे मरा हुआ देख कर मैं ढाहें मार-मार कर रो पड़ा था।"

"फिर, फिर अब्बू?" हामिद के गले से मुश्किल से आवाज निकली। नजमा का हलक भी सूख गया था। वह कुछ बोल ही न पाई। नसरीन सहमी हुई नजरों से मुझे घूरे जा रही थी। बिलकीस पहली बार बड़ी दिलचस्पी से मेरी बात सुन रही थी। मैंने उन्हें बताया—

"उसके बाद हम लोग पप्पी के कटे हुए शरीर के हिस्से इकट्ठे करके पेड़ के नीचे ले गए। वहां हमने मिल कर एक गड्ढा खोदा। पप्पी को उसमें लिटा कर उस पर बहुत सी मिट्टी डाल दी। गड्ढा भरने के बाद, उस पर बहुत से पत्थर रख दिए। वह हमारे एक बहुत ही प्रिय मित्र की कब्र थी। हम पढ़ने के लिए लखनऊ जाते, तो उसकी कब्र की ओर एक नजर देखना कभी नहीं भूलते थे।"

"अब्बू, उसकी कब्र अब कहां है?"

कब्र तो अब कहीं भी नहीं थी। उसका नाम-निशान तक मिट चुका था। केवल याद बाकी रह गई थी। इधर-उधर देख कर पप्पी की कब्र तलाश करते समय सहसा मेरी नजरें बिलकीस की नजरों से टकरा गईं। वह न जाने कितनी देर से मेरी ओर देखे जा रही थी। उसकी आंखों में मेरी हैरानी और बेचैनी के लिए भरपूर समर्थन था, समर्थन और सहानुभूति। मैंने उसकी ओर देखा तो उसके होंठों पर एक निराश सी मुस्कुराहट उभरी। वह अपने स्वप्न से उठ कर मेरे पास आ गई। मेरी बांह को पकड़ कर धीरे से बोली, "क्या आप चाहते हैं, हम लोग कुछ दिन यहां रहें?"

हजारों साल लंबी रात

रतन सिंह

सुनने वाले उसकी बात बड़े ध्यान से सुन रहे थे, हालांकि सुनाने वाला युवक सब के बीच लेटा हुआ बिलकुल ऊत-पटांग बातें कर रहा था। उन बातों में कहीं कोई संबंध नहीं था। बात करते-करते वह खुद ही बहक जाता जैसे कोई राह चलता मुसाफिर अपने रास्ते से भटक कर किसी गलत पथ पर चलने लगे। एक बात को अधूरा ही छोड़ कर, वह किसी दूसरी बात का सिरा पकड़ लेता। इस तरह रात बहुत धीरे-धीरे सरक रही थी।

वे सब के सब स्टेशन की ओर जाने वाले बाजार की एक दुकान के बरामदे में आकर रात काटने के लिए लेट गए थे। थोड़ी देर बाद, जब उनमें से सब से बूढ़े आदमी ने गला साफ करते हुए, किसी राजा की बात शुरू की, तो उस बरामदे में लेटे हुए सब के सब आदमी हुंकारा भरने लगे।

"हूं, फिर क्या हुआ, बाबा?"

बस, फिर क्या था। बात चल निकली....।

एक राजा था। उसकी सात रानियां थीं।

सातों रानियों के लिए राजा ने अलग-अलग महल बनवाए। एक लकड़ी का, दूसरा ईंट-गारे का, तीसरा संगमरमर का, चौथा तांबे का, पांचवां चांदी का, छठा सोने का और सातवें में हीरे-जवाहरात जड़े थे।

"बिलकुल ठीक।" किसी ने हामी भरी।

इतना धन होने पर भी, राजा के यहां संतान नहीं थी। इसलिए वह बहुत दुखी था। राजा को आखिर किसी ने सलाह दी कि फलां जंगल में एक पेड़ है, उस पर सात फल लगे हैं। यदि राजा फलों को तोड़ कर अपनी रानियों को खिलाए तो सब के संतान हो जाएगी। परंतु मुसीबत यह थी कि उस पेड़ तक पहुंचना बड़ा मुश्किल था। रास्ते में सात नदियां पड़ती थीं और सात देवों से मुकाबला करना पड़ता था और पेड़ के गिर्द सात सांपों का जोरदार पहरा था। लेकिन राजा भी अपनी धुन का पक्का था और वह अपनी सेना लेकर चल पड़ा। बात अभी यहीं तक पहुंची थी कि बूढ़े को खांसी का दौरा पड़ा। जब

उस की सांस ठीक हुई, तो बूढ़ा बहक गया। उसने एक दूसरी बात चला दी।

बड़ी पुरानी बात है। एक कारीगर ने एक ऐसा डंडा बनाया जिसके अंदर एक आदमी बैठ सकता था। इस तरह वह डंडा आदमियों की तरह ही बोलता था, चलता था और खाता-पीता था। "ठीक ! ठीक !" लगभग सबने मिल कर हुंकारा भरा। फिर सहसा यह हुआ कि रिक्शाओं और तांगों का रेला शोर मचाता हुआ, सड़क पर से गुजरने लगा। शायद स्टेशन पर कोई यात्री-गाड़ी रुकी थी। इसलिए बूढ़ा थोड़ी देर रुका। फिर उसने एक मछली की कथा शुरू कर दी, जो इतनी बड़ी थी कि उसकी पीठ पर पूरा एक शहर बसा हुआ था जिस पर न जाने कितने ही मकान बने हुए थे, कितने ही खेत थे। सागर में जिस ओर यह मछली जाती, उसी ओर यह बसा-बसाया शहर चला जाता। "बिलकुल ठीक।" सब ने हुंकारा भरा।

इस प्रकार रात अत्यंत धीरे-धीरे खिसक रही थी। बूढ़ा बातें किए जा रहा था और वे सब के सब बड़े ध्यान से सुन रहे थे। फिर किसी बात को अधूरी ही छोड़ कर बूढ़े ने एक नयी बात आरंभ कर दी।

हजारों साल पहले की बात है। एक राजा ने आधी दुनिया पर विजय पा ली।

"फिर?"

"फिर, इस खुशी में राजा ने एक बहुत बड़ा भोज किया।"

"फिर! फिर !"

"फिर क्या ! इतना भोजन बनाया गया कि राजा के शहर के सारे मकानों में भोजन बना-बना कर रखा गया।"

"फिर ! फिर!" सभी आदमी एक साथ हुंकारा भर रह थे। बूढ़े ने कहना शुरू किया।

"सबसे पहले राजा और उसके संगे-संबंधियों ने खाना खाया।"

"ठीक !"

"फिर राजा के हजारों सैनिकों और चुने हुए नागरिकों ने खाना खाया।"

"ठीक।"

"इतने लोगों के खाना खाते-खाते रात हो गई।"

"ठीक।"

"और सब के बाद रात के समय लाखों गरीब-गुर्बे और भिखारियों ने पेट भर कर खाना खाया।"

"बिलकुल झूठ ! बिलकुल झूठ ! उस बरामदे में लेटे हुए सभी आदमी रोष के तौर पर उठ खड़े हुए और उनमें से एक आदमी बोला, "बूढ़े, तुझे झूठी बातें करते शर्म नहीं आती ! यदि हमने रात को पेट भर कर खाना खाया होता, तो इस समय सुख की नींद

न सोए होते। रात भर तुम्हारी यह बकवास कौन सुनता?"

"अरे भाई, नाराज क्यों होते हो।" बूढ़े ने कुछ सहमे हुए स्वर में कहा, "मैं भी तुम्हारी तरह भूखा हूं। अगर मुझे ही नींद आ रही होती तो ये बातें करने के लिए जागता होता! मैं भी...तो सो जाता।"

अल्लाह दे बंदा ले

रज़िया सज्जाद ज़हीर

जब फखरु सिरसी से संभल आया, तो उसने धोती की जगह तहमद बांधा। कमरी उतार कर कुरता पहना। संभल से मुरादाबाद पहुंचा, तो तहमद का स्थान पायजामे और कुरते का स्थान कमीज ने ले लिया। सिरसी में वह 'अलिफ़ के नाम लट्टा' नहीं जानता था। संभल में हमारे मामा ने उसे उर्दू पढ़नी-लिखनी सिखाई और मुरादाबाद पहुंच कर तो वह इतना तेज हो गया कि हमारे बैरिस्टर मामा जो किताब कहते, वह अलमारी से निकाल लाता। कानून की एक-एक किताब पहचानने लगा। सब किस्से-कहानियां, पत्र-पत्रिकाएं उसे मालूम हो गईं।

परंतु इस सारी उन्नति के बावजूद एक कमी उसके व्यक्तित्व में रह गई कि वह बूट नहीं खरीद सका—बूट उस समय भी काफी महंगे थे और पांच रुपये में से तीन रुपये घर भेजने और चार आने महीना मस्जिद में 'चिरागी', चार आने अनाथालय का चंदा और आठ आने फाखरी दादी के पास जमा कराने के बाद फिर बचता ही क्या था जो फखरु बूट भी खरीद सकता! आखिर हर महीने हजामत बनवाता था, बीड़ी-माचिस, धोती की धुलाई, सिर का तेल—यह सब मुफ्त तो होता नहीं था। इसलिए उसके व्यक्तित्व में यह एक कमी रह गई—और दूसरी कमी उसके स्वभाव में रह गई थी कि वह नमाज पढ़ने से बराबर इंकार करता चला गया, तरक्की के किसी भी पड़ाव पर उसने नमाज नहीं पढ़ी। हमारे बैरिस्टर मामाजी को इस मामले में उसका यह अड़ियल बैल वाला व्यवहार सख्त नापसंद था।

बैरिस्टर मामा कई वर्ष विलायत में रहे थे। सूट पहनते थे। अंग्रेजी फर्राटे की बोलते थे, मगर नमाज पांचों वक्त की पढ़ते थे। जब वह नमाज के लिए ऊंची आवाज से अजान देते, तो बाकी घर वालों की सिट्टी गुम हो जाती। प्रत्येक व्यक्ति उनकी गरजदार आवाज के रौब में आकर फौरन नमाज पर खड़ा हो जाता! हमारे नाना जब तक जीवित रहे, इस बात पर असीम गौरव करते रहे कि उनके कई मित्रों के बेटे तो विलायत जाकर अपना दीन-ईमान ही भूल गए, मगर उनका बेटा इतने दिनों विलायत रहने के बाद भी पांचों वक्त की नमाज पढ़ता और तीसों रोजे रखता था। अजी, उसकी नमाज की तो वेश्याएं तक

कायल थीं। ऐसी न जाने कितनी स्त्रियों को उसने नमाज सिखा कर, उन गुमराहों को दीन-ईमान का रास्ता दिखाया था!

वैसे वैरिस्टर मामा को फखरु से मुहब्बत बहुत थी और क्यों न होती! यूं तो वह उमर में उनसे बड़ा था, पर आखिर उन्होंने ही तो उसे जानवर से आदमी बनाया था। यह बात और थी कि अब फखरु के बगैर उनका कोई काम नहीं हो सकता था। इतना सस्ता, इतना अधिक काम करने वाला, और ऐसा शुभचिंतक नौकर नहीं मिल सकता था--वरना कभी-कभी तो वह खुद भी कहते थे कि ऐसे आदमी के हाथ का तो पानी भी नहीं पीना चाहिए, जो कभी एक टक्कर नहीं मारता, जिसके दिल पर अल्लाह ने मुहर लगा दी है।

फखरु रोजे तीसों रखता था। रमजान-भर जो कुछ हो सकता, खैरात करता। मस्जिद में आने वालों के लिए नुक्कड़ की लालटेन में तेल अपने पास से रमजान-भर डालता, ताकि रास्ते पर रोशनी रहे। मगर खुद मस्जिद के अंदर नमाज पढ़ने न जाता--और कामों से पचास फेरे मस्जिद के करता।

मामाजी रमजान के दौरान दो-तीन बार उससे कहते, ''अबे, तेरे रोजे रखने से फायदा ही क्या, बेकार फाका करे है, बगैर नमाज के कहीं रोजे हुए हैं!''

"अजी, आप ने जो किताब पढ़ाई थी, मीर साहिब, उसमें तो नमाज अलग लिखी हैगी, रोजा अलग लिखा हैगा, यूं तो न लिखा कि नमाज बगैर रोजा न हो सकता या रोजे के बगैर नमाज न हो सकती।"

अब इस सीधे-सादे तर्क का मामाजी के पास क्या जवाब था! वह उसे धिक्कारते हुए कहते, "चल कमबख्त, दूर हो, लाख तोते को पढ़ाया पर हैवान ही रहा...।"

दिलचस्प बात यह थी कि फखरु ने कभी बैरिस्टर मामाजी से इंकार भी नहीं किया था कि वह नमाज नहीं पढ़ेगा। पर कुछ ऐसा हो जाता कि वह साफ बच निकलता और फिर मजे में रहता...।

जैसे कि मगरिब (पश्चिम) की नमाज के लिए मामाजी मस्जिद जाने लगते तो फखरु से भी कहते ''अबे, चल मस्जिद।''

मगरिब और सुबह की नमाज वह मस्जिद में पढ़ते थे। पहले घर में अजान देते--फिर मस्जिद में जा कर नमाज पढ़ते। फखरु घर के दफ्तर वाले कमरे की ओर इशारा करता और बड़ी मासूम सी सूरत बना कर चुपके से कहता, ''अजी, बड़ा मोटा मुवक्किल है बालिशटर साहब, जो मैं तुम्हारे साथ चला जाऊं, तो वह मछली की तरह खेल जावेगा। तुम पढ़ आओ नमाज, जित्ते मैं उसे बातें में उलझाए हूं।''

अब उसके आगे मामाजी क्या कहते!

जब मगरिब की नमाज पढ़ कर वह लौटते, तो फखरु को मुवक्किल से गपशप करते

पाते।

कभी-कभी सुबह को वह फखरु को आवाज देते, "अबे आ... मस्जिद जा रहा हूं।"

वह चाय की छोटी सी पतीली मांजता हुआ, चौकी पर से बड़े उत्मीनान से उत्तर देता, "अजी तुम चलो, फाखरी दादी को रात कंपकंपी हुई थी, उनके लिए दो पत्ती चाय गरम कर के अभी आऊं हूं, फटाफट। तुम चलो, मीर साहब!"

फाखरी दादी बड़े जलाल वाली सैयदानी थीं और घर में सब से अधिक सीधी-सादी किस्म की बुजुर्ग; पिचान्नवे वर्ष की तो उनकी उमर थी, इसलिए उनको सबके हालात मालूम थे। हर एक की मां की मेहर और हर एक के बुजुर्गों की खराबी या अच्छाई उन्हें मालूम थी। उन्हें गुस्सा चढ़ता था, तो वह सात पीढ़ियों को बुरा-भला कह छोड़ती थीं। स्पष्ट है, उनकी चाय में कौन अड़चन लगा कर, अपनी सात पुश्तों की बुराई सुनता! मामाजी बड़बड़ाते, पैर पटकते चले जाते।

जाड़ों में अकसर सब लोग रात को खाने के बाद, बैरिस्टर मामाजी के कमरे में जमा हो जाते, क्योंकि वहां सब से बड़ी अंगीठी सुलगती थी--फखरु भी वहीं होता... कभी-कभी वैरिस्टर मामा उससे बहस करते।

"अबे, मैं कहूं, आखिर तू अल्लाह के घर जाने से क्यों कन्नी काटे है?"

फखरु बड़े भोलेपन से, हैरान होकर जवाब देता, "अजी लो, अल्लाह के घर जाने से कौन बंदा कन्नी काट सके है! अभी उस दिन न गया था रोजादारों के इफ्तार (रोजा खोलने) के लिए खाना लेके? वो बड़ा देगचा घुंघुनी का, जल्लो आपा ने हवाले कर दिया कि ले जा मस्जिद। विन्नों (उन्होंने) तो कहा भी कि फगना को ले ले पकड़वाने को, पर मैंने अकेले ही सिर पर उठा कर मिनटों में पहुंचा दिया कि इफ्तार हैगी, सबाब (धर्म-कर्म) होयेगा... भला पंद्रह सेर से क्या कम रही होगी घुंघुनी... क्यों, जल्लो आपा?"

"अय न डंडी की तुली, पूरे अठारह सेर की!" जल्लो आपा ने गवाही दी।

"अबे वह तो ठीक है, पर तू नमाज पढ़ने क्यों नहीं जाता? दुआ मांगने से क्यों घबराता है?" बैरिस्टर मामा ने स्पष्ट रूप से प्रश्न किया।

"अजी, वाह मीर साहिब, इत्ते बड़े बालिश्टर होकर, यही न्याव करो हो! अजी दुआ न मागूं हूं, तो क्या अल्लाह मियां ने यूंही सिरसी से मुरादाबाद तक पहुंचा दिया? अजी मेरे बराबर तो कोई दुआ न मांगता होगा... इत्ति-इत्ति दुआ मांगी, तब तो जाके अल्लाह मियां ने यह चार हर्फ पेट में डाले कि अब अमीर हमजा की दास्तान पढ़ सकूं हूं।"

बैरिस्टर मामाजी दुखी हो जाते, पर विवाद किए जाते... आखिर वह बैरिस्टर थे! यह सिरसी का लंगोटी-धारी उनको जिरह में क्या हरा सकता था?

कहते, "तू कोठरी में बैठ के ढेरों दुआ मांगे है, तो फिर क्या! जमात में नमाज का

हुक्म है न!"

फखरु जरा झेंपके उत्तर देता, "अजी, बात गे है कि सब के सामने किसी से कुछ मांगते जरा शरम आवे है... और दुआ तो अल्लाह मियां हर एक की सुन लेवे हैं, मीर साहब ... क्या कोठरी की नहीं सुनते? और मौलवी साहब तो उस दिन कै रिये थे कि रुसूल अल्लाह कभी अपने हुजरे में नमाज पढ़ें थे और कभी मस्जिद में और हजरत युसफ़ ने तो कैदखाने में दुआ मांगी थी और...।"

मामा जी लज्जित होके बोले, "और-और के बच्चे, क्या बकता चला जावे है, अल्लाह बख्शे, तेरी और नबियों की बराबरी है?"

फखरु ने कान को हाथ लगाया, "तौबा है, तौबा है, अजी मैं गे थोड़ा ही कै रिया हूं, मैं तो गे कै रिया हूं कि गुनाहगार बंदों को तो वही करना चाहिए, जो आप करें थे, जभी तो नजात होवेगी, जभी तो आप सिफारिश करेंगे...।" उसने अपनी उंगलियां आंखों को लगा कर चूमीं... श्रद्धा से उसकी आंखें गीली हो गई थीं।

बैरिस्टर मामा ने तंग आकर हुक्का मंगवाया और गुड़गुड़ाने लगे।

निश्चय ही फखरु के दिल पर खुदा ने छाप लगा दी थी!

फिर एक दिन घर में बड़ा हंगामा हुआ। बात यह हुई कि फखरु के पास एक जोड़ा जूतों का कहीं से आ गया... जूते नहीं, बूट... एकदम बढ़िया वाले, चमाचम करते, ऐसे कि उसमें मुंह देख लो। उसकी छह छोटी-छोटी आंखों में काले रंग के ही रेशमी फीते पड़े हुए थे, जिनके सिरों पर काले बटन जुड़े हुए थे और बटन में से सिरे की ओर, फीते का बिलकुल छोटा सा, बिलकुल जरा सा रेशमी फुंदा ऊपर को मुंह उठाये था जैसे कोई प्रेमिका अपने कोमल-कोमल कली से होंठों को सिकोड़ कर सीटी बजा रही हो।

और फिर अकेला जूता भी नहीं, साथ में पालिश की एक डिबिया, और एक ब्रुश भी। सब बच्चों को अपार चाव था। बारी-बारी से जूता उठा कर देखते, कोई पालिश की डिबिया को जमीन पर गोल-गोल चक्करों में नचाता, कोई ब्रुश के बालों पर हाथ फेरता, कोई फीते के फुंदे को उंगली से छूता। नूरी आपा ने तो यहां तक सुझाव दिया कि जूते का कोई नाम भी रखा जाए।

बैरिस्टर मामा का भी मूड उस समय अच्छा था, हंसके बोले, "हां, हां, जरूर रखो... खुदाबख्श रखो इस जूते का नाम।"

सब हंसने लगे, मगर फखरु गंभीरता से बोले, "अजी, गे तो ठीक कहो हो मीर साहिब, मैंने बहुतेरी दुआयें मांगी थीं कि अल्लाह मियां, तुमने सब कुछ दिया, बस अब एक बूट और दिलवा दो, कहीं से। मीर साहिब, वह जो औरत भगाने वाला मुवक्किल आया था अजी, वही, जिसने अझारी वाली तमीजन की लौंडिया भगाई थी और तुमने विसे साफ छुड़ा

लिया था, तो वह विन ने मुझसे कया, भाई, जब मैं आऊं तो तू मेरी बड़ी खातिर करे था, अब मैं बाइज्जत बरी होके घर जा रिया हूं तो बता, क्या लेवेगा? सो चुटकी बजाते में, छप्पर फाड़के अल्लाह मियां ने दिलवा दिया गे बूट... अच्छा है न, मीर साहिब?" उसने बड़े प्यार से जूते को देखा।

"ऐ हां! बहुत अच्छा है!" बैरिस्टर मामा बोले, "अब, आज तो चल मस्जिद। शुक्राना तो अदा कर।"

फखरु चुप हो गया। झुकके उसने जूते उठाए। बड़ी सावधानी से डब्बे में रखे, ब्रुश जूतों की आड़ में फिट किया, फिर डिबिया एक कोने में बिठाई, ढक्कन बंद करके उसे एक सुतली से बांधा। डिब्बा बगल में दबाया और खिसक लिया।

शाम को मगरिब की नमाज के समय बैरिस्टर मामा मस्जिद में प्रविष्ट हो रहे थे कि उन्हें फखरु की परछाईं गली के नुक्कड़ पर दिखाई दी... नये जूते पहने, नयी कमीज का पल्लू उड़ाता, नये पायजामे में पांयचे फटकारता, पान चबाता, एक मित्र के हाथ में हाथ दिए, वह गली में मुड़ने ही वाला था कि बैरिस्टर मामा ने ललकारा, "फखरु... अरे ओ, फखरु... यहां आ!"

फखरु फंस चुका था। उसका मित्र और वह दोनों आए, "चल, वुजू कर।" मामा ने हुक्म दिया।

फखरु कसमसा के बोला, "अजी, पान खा रिया हूं, मीर साहब... और फिर गे भी तो बात है कि...।"

"कि पान ससुराल वालों ने खिलाया है, थूक न सके है, बेचारा।" उसके मित्र ने टुकड़ा जोड़ा।

मामा हंसने लगे, "ससुराल? कैसी ससुराल...? अबे यह चुपके ही चुपके!"

फखरु खामोश रहा – पर उसका मित्र बोला, "अजी, कोई ऐसी-वैसी बात न है, शरीफ हैंगे वे लोग भी। अपनी जात-बरादरी है बालिस्टर साहब, सिरसी के ही। लड़की भी कुबुलसूरत हैगी, नमाज पढ़े, कलाम पाक खतम कर चुकी है। उस दुखिया का घर भी, मियां के मरने से उजड़ चुका है, सो बस जावेगा।"

"अच्छा, अच्छा, चलो वुजू करो दोनों आदमी... चलो!" मामा ने असल बात छेड़ दी।

फखरु ने बेबसी से अपने मित्र की ओर देखा, मित्र ने उसकी ओर। दोनों मिट्टी का लोटा उठाके वुजू करने लगे।

मगरिब की नमाज के बाद मौलवी साहब रोज उपदेश करते थे। आज भी किया। उसमें काफीर देर लगी। कुछ लोग उठ-उठके चले गए। फखरु और उसके मित्र ने भी कई बार पहलू बदला पर बैरिस्टर मामा ने उनको ऐसे घूरा कि वे फिर ठिठक कर बैठ

गए।

आखिर उपदेश खतम हुआ। लोग बाहर निकले और फखरु को एक ही क्षण बाद पता चल गया कि उसका नया जूता गायब है।

उसके मित्र की फटीचर सी फिट्टियां उसी प्रकार सुरक्षित पड़ी थीं। सब लोगों में परेशानी की एक लहर दौड़ गई। बैरिस्टर मामा भौंचक्के रह गए। उन पर एक-दो मिनट के लिए तो बिलकुल सकता सा छा गया। फिर फखरु को समझाते हुए बोले, "चल, जाने दे... होगा। मैं तुझे दूसरा ले दूंगा, उस से भी अच्छा...।"

"समझ ले, जिस अल्लाह ने दिया था उसी ने ले लिया।" फखरु पर अभी तक सकता छाया हुआ था। पर यह सुन कर वह बिगड़ गया। भन्ना के बोला, "अजी, गे तो मैं कभी न मानने का हूं कि अल्लाह ने लिया।... उसने तो मुझे इत्ति दुआयें मांगने पर दिया था, फिर ले क्यों लेवेगा और उसे क्या जरूरत है बूट-जूते की... ख्वाहमख्वाह को अल्लाह को इलजाम देते हो, बालिश्टर साहब! लिया तो है किसी नमाजी ने।"

अब बैरिस्टर मामा क्या कहते! यह तो जाहिर ही था कि किसी नजामी ने लिया है।

खिसिया कर बोले, "न जाने कौन था शैतान की औलाद! अजी, मस्जिद में नमाज के बहाने आवे हैं, आदमियों के जूते चुराने। अभी पुलिस में रिपोर्ट करके बंधवाऊं हूं।"

पुलिस में रिपोर्ट हुई। बैरिस्टर मामा ने इनाम का ऐलान किया। दूसरे दिन अपने उपदेश में बड़े मौलवी साहिब ने भी खूब फटकार की। मोहल्ले में एक-एक से कहा-सुना गया, पर बूट न मिलने थे, न मिले।

चौथे दिन एक अजीब बात हुई। मगरिब की नमाज के वक्त फखरु मस्जिद में पहुंचा। सब को यह मालूम था कि उसका जूता चोरी हो चुका है। लोग उसे देख कर हैरान हुए, पर बोला कोई नहीं! जब नमाज खतम हुई और मौलवी साहब नसीहत देने के लिए 'मिंबर' की ओर बड़े, तो फखरु उनके और मिंबर के बीच में खड़ा हो गया और बोला, "अजी मौलवी साहिब, जरा मैं कुछ कहना चाहूं हूं।" मौलवी साहिब को उससे हमदर्दी थी। फौरन एक तरफ हो हो गए।

फखरु लोगों को संबोधित होकर बोला, "भले आदमियो, परसों यहां मस्जिद से मेरा जूता चोरी हो गया--नमाजियों के सिवा तो कोई यहां आता नहीं है। सो किसी नमाजी ने ही चुराया होवेगा--खैर, पर मैंने यह सोचा कि जिस मस्जिद में जूता गया, वहां ही पालिश की डिबिया और ये ब्रुश भी चली जावे, सो मैं लेता आया हूं और आप नमाजियों को बख्श दूं, मैं तो अब कभी मस्जिद में आने का न हूं और जिंदगी भर नमाज को न पढ़ने का हूं, पर अल्लाह से दुआ जरूर मांगूंगा कि एक बार दिया था सो दूसरी बार भी देवे--और उसकी मेहर से कुछ दूर न है। वह फिर देवेगा--जरूर देवेगा।"

इस भाषण के बाद उसने कुरते की एक जेब से पालिश की डिबिया और दूसरी से ब्रुश निकाला और मस्जिद के एक कोने में उछाल दिया--फिर बाहर निकल कर, अपने पुराने स्लीपर पहने और चल दिया।

जब मेरी उम्र कोई सात-आठ साल की थी तो फखरु काफी बूढ़े हो चुके थे। ड्योढ़ी में बैठे खांसा करते थे! पोतों, पड़पोतों वाले थे, मगर हर बार जब हम लोग अपने ननिहाल जाते, तो मैं एक-एक से यह किस्सा सुनती। इस घटना के बाद, वह न कभी मस्जिद में गए, न कभी उन्होंने नमाज पढ़ी...।

आदत के अनुसार नमाज का जिक्र सुन कर वह कुछ नहीं कहते थे। कभी-कभी मुस्कुरा देते थे। लेकिन अगर कोई यह कह देता कि, "अल्लाह की मर्जी यूं ही थी, खुदा का करना यूं ही था," तब वह बेहद बिगड़ते, बेहद गुस्से होते। "अजी वाह, खूब कहो। अल्लाह का करना था। अजी वह तो देवे है, उसे लेके क्या करना है? ले तो है इंसान, छीने तो है बंदा! और नमाजी बंदे की तो जब नीयत बदले है तो ऐसी बदले है कि जिस की कुछ ठीक न है! समझे है कि नमाज पढ़ूं हूं, तो सात खून मुझ को माफ हो जावेंगे। जाने है कि अल्लाह कुछ कहने को आने से रहा, गवाही देने से रहा। अपनी सारी की-कराई, अगली-पिछली गोड़ी समेटी और अल्लाह के सिर थोप दी। अपने हाथ झाड़के अलग हो गए... और ख्वाहमख्वाह अल्लाह को इलजाम... क्या इंसाफ करो हो... वाह जी वाह!"

भाभी

सुहेल अज़ीमाबादी

जब रकिया भाभी याद आती है तो मेरा सिर अपने आप ही आदर से झुक जाता है और ऐसे अनुभव होता है कि उनका व्यक्तित्व एक प्रकाश-पुंज है। उनकी याद के साथ, मुझे वह शमा याद आ जाती है जो कलीसा की ऊंची बलिवेदी पर जलती और पिघलती रहती है और जब पादरी पूजा समाप्त होते ही बलिवेदी से उतर जाता है तो वह भी मौन भाषा में खुदाबंद यीशु मसीह का संदेश सुनाती रहती है, जो दूसरों के अपराध क्षमा करवाने के लिए सूली पर चढ़ाया गया, मगर जो अब तक जीवित है और प्रलय तक जीवित रहेगा और सबको मुक्ति दिलाएगा।

रकिया भाभी का व्यक्तित्व मुझे ऐसी ही शमा नजर आता है जो जलती और पिघलती रहती है, लेकिन शमा रोशनी फैलाती और जुबान से कुछ कहे बिना हर समय एक संदेश सुनाती रहती है। ऐसा संदेश जो अमर है और जो सारे संसार को उज्ज्वल करने वाला है।

भाभी जान ने सवेरे आवाज दी।

"खैर तो है, शहजादे! घोड़े बेच कर सोए हो! चाय ठंडी हो रही है।"

आवाज सुन कर मैं उठ बैठा। वह मुस्कुरा दीं और बोलीं, "यानी बात यह है कि ठंडी चाय मुझसे नहीं पी जाती और बच्चों को स्कूल भी भेजना है।"

"भाभी, यही तो मुसीबत है आपके साथ। सुबह हुई और उठा कर बिठा दिया। हम लोगों को भी आप विद्यार्थी ही समझती हैं।"

भाभी बोलीं, "तो आज तुम कौन से बूढ़े हो चुके हो! भई, उठो, जल्दी करो।"

भाभी ने जोर से हाथ पकड़ कर बिस्तर से खींच लिया। मैं जमीन पर खड़ा हो गया। वह हंसने लगीं।

मैं बोला, "शुक्र है, मैं आपका स्टूडेंट नहीं रहा।"

"बातें न बनाओ। चाय ठंडी हो रही है, बच्चे बैठे हैं।"

"लेकिन मुझे नींद आ रही है। रात भर नहीं सो सका।" मैंने विरोध करते हुए कहा।

"चाय पीने के बाद दूसरी किस्त सो लेना," भाभी बोलीं।

मैं 'किस्त' शब्द सुन कर हंस पड़ा।

वह बोलीं, "शायर होकर दाद नहीं देते। क्या लफ्ज मैंने इस्तेमाल किया है! अगर अवध के नवाब बाकी होते, तो इसी एक लफ्ज के इस्तेमाल पर एक जागीर तो बख्श देते। चलो भई, तुम जरा जल्दी करो, इतना ही सही।"

और भाभी खाने के कमरे में चली गईं। जब थोड़ी देर बाद मैं पहुंचा, तो बच्चे चाय खतम कर रहे थे। नन्हीं रेहाना बोली, "चचा जान, हम लोग चाय खतम कर चुके। अब हमारी जूठी चाय पीजिए।"

स्कूल की बस ने हार्न बजाया। बच्चियां तालियां बजाती बाहर चल दीं। भाभीजी ने चाय प्याली में उंडेल कर मेरी ओर बढ़ाई और बोलीं, "अगर तुम नौजवान इतनी देर तक सोते रहोगे तो क्या करोगे?"

"शेर कहूंगा, और क्या करूंगा!"

भाभी अर्थपूर्ण अंदाज में मुस्कुराईं। मैं झेंप गया। उनकी मुस्कुराहट में बड़ी नरमी और मिठास थी और बहुत दूर तक इशारा। वह आते हुए बोलीं—"तुम्हारे भाई साहब ठीक चार बजे उठ बैठते थे और चाय पीकर काम शुरू कर देते थे। शुरू में तो मुझे भी बड़ा अटपटा सा लगता था, लेकिन आज सुबह उठने की आदत काम आ रही है।"

मैंने पलट कर देखा। भाभी जान की मेज पर नन्हें भाई की खूबसूरत सी रंगीन तस्वीर रखी हुई थी। वह मुस्कुरा रहे थे। इस तस्वीर के पास भाभी और बच्चों की तस्वीरें थीं। अब शृंगार-मेज नाम की ही थी। उस पर बच्चों की पुस्तकों का ढेर था और शायद एक कंघी के अलावा शृंगार की कोई अन्य वस्तु नहीं थी। भाभी उदास हो गईं और बोलीं, "न जाने, तुम्हारे भाई जान किस हाल में हैं! देखो, उनके मुकदमे का क्या होता है? हजार मील की दूरी पर उनके कोई काम भी नहीं आ सकता। कुछ ही दिनों में उनके मुकदमे का फैसला होने वाला है।"

भाभी, जो सदैव फूल की तरह खिली रहने और बुलबुल की तरह चहकते रहने की आदी थीं, बिलकुल उदास हो गईं। कमरे में चुप्पी छा गई। थोड़ी देर में किसी की पदचाप सुनाई दी। फिर आवाज आई।

"मैं आ सकती हूं?"

"आ जाओ...।"

भाभी ने कहा और एक लड़की ने कमरे में प्रवेश किया। भाभी ने देखते ही कहा, "आओ, शम्मी, चाय पियो। मैं आज शाम को तुम्हारे घर जाने वाली थी। बुन दिया तुमने स्वैटर?"

"वही ले कर आयी हूं। ऊन बच गई थी, तो मैंने टोपी और मौजे भी बुन दिए।"

"बहुत अच्छा किया तुमने... लो, चाय पियो।"

और उन्होंने चाय की प्याली शम्मी के आगे बढ़ा दी। शम्मी मेरी उपस्थिति में कुछ शरमा रही थी। बोली--"मैं चाय पी चुकी हूं।"

"फिर भी पी लो। शरमाती क्यों हो! यह हैं प्रसिद्ध शायर अखतर। तुम्हारे बड़े भाई।"

मैं नाश्ता खत्म कर चुका था। उठ खड़ा हुआ।

"मैं भी जरा शहर हो आऊं।"

"जाओ--मैं भी जरा अस्पताल से हो आऊं। चलो शम्मी, तुम भी साथ।"

मैंने कमरे की खिड़की से भाभी को बंगले के अहाते से बाहर जाते देखा। उनके हाथ में दूध की वह बोतल थी जो देर से मेज पर रखी थी। यह तो मुझे दो दिन बाद पता चला कि भाभी के एक पुराने मुलाजिम की बेटी अस्पताल में है। दो महीने पहले उसके पति का देहांत हो गया है और उसके बच्चा हुआ है। और कोई देखने वाला नहीं। भाभी स्वयं ही दो फर्लांग दोनों वक्त पैदल जाती और दूध पहुंचाती हैं और स्वैटर और मौजे उसी बच्चे के लिए बनवाए थे, क्योंकि सर्दी का मौसम शुरू होने वाला था। और शम्मी उनके कालेज की गरीब विद्यार्थिन थी जो सिर्फ उनकी सहायता के सहारे पढ़ रही थी।

भाभी से यह मेरी दूसरी मुलाकात थी। यूं पत्र-व्यवहार था। परंतु तीन दिन साथ रह कर पता चला कि वह इंसान नहीं, मशीन थीं। सुबह उठ कर काम शुरू कर देती थीं। उनका जमाना बदल चुका था। कभी चार-पांच नौकर-नौकरानियां थीं। अब उनके पास केवल एक नौकर था जो बाजार से सौदा लाता और खाना भी पकाता था। रुपये-पैसे की तंगी थी। पहले हजार रुपये अपने शौक पर खर्च कर दिया करती थीं। अब चार सौ रुपये मासिक पर लड़कियों के एक कालेज में लैक्चरर थीं और पचास रुपये एक लड़की को पढ़ाने के मिलते थे। ले-देकर यही उनकी आय थी और खर्च अपनी जगह पर था, बल्कि अधिक ही था। अपना और बच्चों का खर्च होता तो किसी प्रकार पूरा हो जाता। लेकिन खर्च बढ़ गया था। बच्चों और अपनी आवश्यकताओं के अलावा एक स्थायी रकम उन्हें हर महीने मजदूरों और विद्यार्थियों की सभाओं को देनी पड़ती थी। सम्मेलनों और जलसों में शामिल होने के लिए सफर में रेल का भाड़ा अदा करना पड़ता था। दो गरीब लड़कियां सिर्फ उनकी मदद से पढ़ रही थीं।

भाई जान की शादी जब रकिया भाभी से हुई थी तो हम लोगों का विचार था कि शादी सफल नहीं हो सकती। एक ओर नन्हें भाई थे जिनको ऐसी राजनीति का शौक था जो उन्हें बार-बार जेल भिजवाया करती थी। दूसरी ओर भाभी थीं जो नाजों की पाली थीं और ऐसे वातावरण में बढ़ कर जवान हुई थीं, जिसमें 'स्व' ही सब कुछ होता है। कुछ

लोगों का खयाल था कि भाई जान भी राजनीति के चक्कर से निकल कर बैरिस्टरी करेंगे। अपनी आलीशान कोठी में शान की जिंदगी गुजारेंगे या फिर आराम-कुर्सी वाली राजनीति चलेगी और किताबों की बातें दोहराई जाएंगी। लेकिन सब का खयाल गलत निकला। भाई जान ने शीघ्र ही रकिया भाभी को अपने रंग में रंग दिया और वह कदम-ब-कदम उनके साथ चलने लगीं। शादी के तीन महीने बाद ही नन्हें भाई गिरफ्तार हो गए और उन्हें दो साल की सजा हो गई। भाभी ने अपने लिए रास्ता तलाश कर लिया। बी.ए. वह पहले ही कर चुकी थीं। शीघ्र ही तैयारी कर के एम.ए. कर लिया और एक कालेज में चैक्चरर हो गईं और इकलौती बच्ची की देखभाल में लग गईं।

दो वर्ष बाद जब नन्हें भाई जेल से छूट कर आए तो फिर अपनी गतिविधियों में लग गए और भाभी काम करती रहीं। दो बच्चे हुए, उन्हें पालती रहीं। अब नन्हें भाई तीन साल से बंद थे और उन पर मुकदमा चल रहा था, तो भाभी बेशुमार जिम्मेदारियों और गम का बोझ उठाए फिरती थीं। लेकिन उनका चेहरा कभी मैला नहीं होता था। वह अपने गम को खुशी समझने लगी हैं और दुख में सुख का पहलू निकाल लेती हैं।

वह सुबह-सवेरे उठतीं। बच्चों को नहलातीं। उनके कपड़े बदलतीं। खुद नहा-धोकर तैयार हो जातीं। बच्चों को खिला-पिला कर सात बजे स्कूल भेज देतीं। फिर मिलने वालों का सिलसिला शुरू हो जाता। भांति-भांति के लोग उनसे मिलने आते और तरह-तरह की फरमाइशें करते। कोई उनसे नौकरी के लिए सिफारिश करने को कहता, कोई किसी काम के लिए। सब लोग उन्हें बड़े आदमी की बीवी और बहू समझते थे। कोई यह नहीं समझता था कि उनका संबंध अब बड़े लोगों से सिर्फ छोटे लोगों के कारण से ही रह गया है। वह बड़े लोगों के पास अब सिर्फ सिफारिशें लेकर जाती हैं। वरना अब उनसे दूर का भी वास्ता नहीं रह गया है। भाभी कालेज जातीं और वहां हर लड़की के मामलों में दिलचस्पी लिया करतीं। कालेज से वापस आकर कई पत्र प्रतिदिन लिखतीं और उन्हें डाक में डलवातीं। आम तौर से ये पत्र नये लिखने वालों के नाम होते जो उन्हें पत्र लिखा करते थे। भाभी ने केवल मनोरंजन और समय काटने के लिए ही लिखना आरंभ किया था। मगर वह बहुत अच्छा लिखने लगी थीं। नये लेखक उनसे परामर्श मांगते और वह बड़ी मेहनत के साथ उनके पत्रों के उत्तर दिया करतीं, इस प्रकार कि नये लिखने वाले न तो गलतफहमियों का शिकार होकर बहक सकें और न ही उनका दिल टूटे। फिर शाम को वह एक जगह पढ़ाने चली जाया करती थीं।

यानी सुबह जगने के बाद से सोते समय तक काम! आदमी काहे को, मशीन मालूम होती थीं। उनके पत्र लिखने के शौक से तंग आकर मैंने कहा--"भाभी, आपने क्या इल्लत पाल रखी है? कालेज में तो सिर खपाती ही हैं, घर पर भी कालेज बना रखा है।"

भाभी बड़े गौरवमय अंदाज में मुस्कराईं और बोलीं, "अखतर, इन नये लिखने वालों को कैसे भूल सकती हूं? ये तो हमारे भविष्य की आशा हैं। अगर मैं इन पौधों पर रोज छिड़काव नहीं कर सकती, उनकी सेवा नहीं कर सकती कि उनमें फूल लगें और सारा बाग महक उठे, तो कम-से-कम जो कुछ कर सकती हूं, वह तो करना ही चाहिए।"

इस उत्तर के बाद कुछ और बोलने की गुंजाइश ही नहीं थी। मैं चुप हो रहा।

दूसरे दिन संध्या के समय वही लड़की, शम्मी उनके पास आई। वह बहुत उदास थी। वह कुछ कहना चाहती थी, मगर कुछ बोल नहीं रही थी। बार-बार उसके होंठ कांप कर रह जाते थे और ऐसा मालूम होता था कि अब वह रो देगी। भाभी ने उसे बिठाया और बातें कीं। फिर आने का कारण पूछा तो वह कुछ न बोली। भाभी जितने अनुरोध से उससे पूछतीं, मालूम होता था कि उसके होंठ उतने ही जोर से आपस में चिपकते जाते थे। आखिर वह कुछ न बोली। भाभी ने उसे उठाया और सोने के कमरे में ले गईं, दरवाजा अंदर से बंद किया और पूछा, "क्या बात है?"

लेकिन शम्मी कुछ बताने के बदले रोने लगी। भाभी के चुप कराने पर भी रोती गई और बड़ी देर के बाद भाभी के डांटने पर उसने बताया कि दूसरे ही दिन उसके भाई को एम.ए. की फीस भरनी है और रुपये का कोई बंदोबस्त नहीं हो सका है। वह इस बात पर शर्मिंदा है कि भाभी उसके कालेज का खर्च देती हैं और अब वह भाई की परीक्षा की फीस मांगे। लेकिन दूसरा कोई ऐसा हमदर्द भी नहीं था जिसके सामने जाकर अपने दिल का बोझ हल्का करती। वह केवल अपने दिल का बोझ हल्का करने उनके पास आई थी।

भाभी ने बड़े प्यार से उसके गाल पर एक चपत लगाई और बोलीं, "पगली, इसमें रोने की क्या बात है! शरमाने की क्या बात है? हम लोग इसी तरह तो एक-दूसरे से कह कर अपना दुख-दर्द हल्का करते हैं।"

इतना कह कर उन्होंने अलमारी खोली और सोने की दो छोटी-छोटी चूड़ियां शम्मी के हाथ में देकर बोलीं, "जाओ, इन्हें बेच कर फीस जमा कर दो!"

शम्मी शायद गिर जाती। लेकिन भाभी ने उसे संभाल लिया और उसका माथा चूम कर बोलीं, "सदा ही ऐसा जमाना नहीं रहेगा। दिन बदलेंगे। जाओ, जल्दी चली जाओ। फिर अंधेरा हो जाएगा।"

शम्मी चूड़ियां लेकर चली गई। ये चूड़ियां वे थीं जो दो दिन पहले भाभी ने नन्हीं रेहाना के लिए बड़ी मुस्किल से पैसे बचा कर बनवाई थीं और रेहाना ने उन्हें केवल एक बार पहना था।

चूड़ियां देकर भाभी प्रसन्न थीं जैसे उनके दिल पर से पहाड़ जैसा कोई बोझ उतर

गया था।

मैं चार दिनों से उनके पास था। एक जरूरी मामले के संबंध में उनसे मशविरा करने गया था, लेकिन उनकी व्यस्तता और उलझनें देख कर बातें करने का अवसर न मिला और न ही हिम्मत हो सकी। मैंने सोच लिया था कि उनसे बगैर मशविरा किए और मदद मांगे चला जाऊंगा, हालांकि मैं भली भांति समझता था कि सिर्फ वही एक ऐसी थीं जो इस सिलसिले में मेरी मदद कर सकती थीं। लेकिन मैंने फैसला कर लिया था कि उनसे इस मसले पर कोई बात नहीं करूंगा।

भाभी ने खुद ही कहा, "तुम चार दिनों से आए हुए हो, लेकिन कोई बात तक नहीं की।"

मैंने कहा, "मैं सिर्फ सैर करने और आप से मिलने के लिए आ गया था।" वह बोलीं, "तुम्हारी शादी का क्या हुआ? सुना है, तुम में और तुम्हारे घर वालों में शादी के मसले पर सख्त मतभेद हो गया है।"

"जी हां—शादी का अर्थ है कि या तो मैं अम्मी की पसंद के अनुसार एक मूर्ख लड़की से शादी कर लूं या फिर चुप बैठा रहूं।"

"और वह जमीला—तुम जमीला से शादी करना चाहते थे न?" भाभी बोलीं।

मैंने कहा, "अब भी चाहता हूं, लेकिन अम्मी ने कह दिया है कि जमीला इस घर में बहू बन कर नहीं आ सकती।"

"यह तो बड़ी ज्यादती है," भाभी बोलीं।

मैंने कहा, "है तो—लेकिन क्या किया जाए? बहुत से अत्याचार सहन करने पड़ते हैं।"

"फिर क्या सोचा?" भाभी ने पूछा।

मैंने अपने शब्दों पर जोर देकर कहा, "शादी तो जमीला ही से करूंगा और घर छोड़ दूंगा।"

"तो बिस्मिल्लाह! ब्याह करके आ जाओ। यहां मेरे साथ रहेगी। मैं भी अकेली हूं।"

"उफ!" भाभी की यह बात सुन कर मेरा सिर चकरा गया। यह स्त्री हैं या हौसले और हिम्मत का स्तंभ! अपने लिए हर रोज एक नया बोझ बढ़ाए जाती हैं। खुद अपनी आवश्यकताओं और जिम्मेदारियां क्या कम हैं! मगर हिम्मत है और हिम्मत के सहारे पति की दूरी और नजरबंदी का गम हंस-हंस कर भुलाए जाती हैं। मैंने जरा सोच कर उत्तर दिया, "मैं भी यही सोच रहा था। लेकिन अभी देर होगी। जमीला अभी बीमार है।"

जमीला बीमार नहीं थी, बिलकुल अच्छी थी। मगर मैं यह न कहता तो वह जिद्द पर उतर आतीं। हालांकि मैंने यह निर्णय किया था कि भाभी से मशविरा करने के बाद शादी करूंगा और उसे उनके पास छोड़ कर नौकरी की तलाश में निकलूंगा।

भाभी जमीला की बीमारी का समाचार सुन कर अफसोस करने लगीं और बोलीं, "सचमुच, जमीला बड़ी प्यारी लड़की है।"

मैं बाहर चला गया और तय कर लिया कि रात की गाड़ी से वापस चला जाऊंगा।

चार बजे वापस आया तो देखा, भाभी बहुत उदास बैठी हैं। उनके हाथ में तार था जिसे हाथ में लिए बस देखती जा रही थीं। उनके चेहरे का गोरा रंग सांवला पड़ गया था। मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गया।

"तार कैसा है, भाभी?"

"अखतर!" जैसे वह चीख पड़ीं। तार मेरे हाथ में दे दिया और मेज पर सिर रख कर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगीं। नन्हें भाई को चार साल की सजा हो गई थी। मैंने कुछ देर के बाद बड़ी मुश्किल से कहा, "भाभी, सब्र कीजिए। अभी तो इम्तिहानों की मंजिल से और भी गुजरना होगा।"

और भाभी को जैसे शांति मिल गई।

"ठीक कहते हो। अगर मैं परेशान हुई तो बच्चे और भी परेशान होंगे।"

वह उठीं और मुंह-हाथ धोने चली गईं। जब वापस आईं तो मालूम होता था कि एक लहर थी जो आई और गुजर गई... लेकिन हम लोग जितनी देर तक चाय पीते रहे, भाभी की नजर बार-बार शृंगार-मेज पर रखी भाई जान की तस्वीर को निहारती रही। उसी समय उन्होंने बताया कि उनके पासपोर्ट की अर्जी नामंजूर हो गई है और उसी रात उनका दिल्ली जाना जरूरी हो गया है।

उसी रात भाभी दिल्ली चली गईं और मैं भी वापस रवाना हो गया। रात के सन्नाटे में रेल गुजरती जा रही थी और मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अंधेरी रात में भाभी मुझे रोशनी दिखा रही हैं। मेरे दिल में नये इरादे, नये हौसले पैदा हो रहे थे, नयी आशाएं और नयी उमंगें जाग रही थीं।

मनोरंजन

सालेह आबिद हुसैन

शाम का समय था। असमय की बारिश ने मौसम सुहावना कर दिया था। आकाश पर वादलों के टुकड़े एक-दूसरे के पीछे भाग रहे थे, जिन के बीच-बीच में गहरे नीले आसमान की झलक बड़ी आकर्षक थी। सूरज की गोल थाली धीरे-धीरे पश्चिम के क्षितिज की ओर सरक रही थी और उसके चारों ओर इंद्रधनुष के सुदंर रंग बिखरे हुए थे। पके खेतों की सुनहरी बालियां हवा से हिलोरें ले रही थीं। घास का धानी रंग कुछ और निखर आया था। कहीं-कहीं खड़े पानी के जोहड़ के अंदर कमल के नन्हें-नन्हें फूल मुस्कुरा रहे थे। सड़क के दोनों ओर कच्चे रास्ते की मिट्टी की सोंधी-सोंधी सुगंध वातावरण में फैली हई थी। आकाश की ऊंचाइयों पर पक्षी परवाज में मगन थे। कभी-कभी उनकी प्रसन्नता से भरपूर किलकारियां कानों में गूंज उठती थीं।

वह दौड़ती हुई मोटर की खिड़की में से, यह सब कुछ मगन होकर देख रहा था। उस वक्त वह एक क्लर्क न था... उसके अंदर का कलाकर हठात् बाहर निकल आया था और ये आकर्षक दृश्य उसे मंत्र-मुग्ध किए हुए थे। उस समय वह अपनी सब चिंताएं भूला हुआ था। अस्पताल में पड़ा छोटा भाई, जिसे देख कर उसका दिल कांप उठा था! जवान तंदुरुस्त लड़का हड्डियों का ढांचा सा रह गया था... मगर खैर जान तो बच गई। उस वक्त वह कितना बेचैन था! मगर अब जरा देर को वह भी दिमाग से निकल चुका था... बच्चे की स्कूल की तीन महीने की फीस का बोझ, जो कुचले दे रहा था, वह भी तो कहीं गिर गया था... उसका प्यारा-प्यारा नौ साल का बबलू जब बिसूर कर कहता, "पापा स्कूल की फीस कब देगें...?" तो वह कांप जाता! कितना खुश हुआ था वह, उसे अंग्रेजी स्कूल में दाखिल करवाके—कितनी खुशी और गौरव महसूस हुआ था। उसका बच्चा एक अच्छे स्कूल में शिक्षा प्राप्त करेगा। उसकी मानसिक और बौद्धिक क्षमताएं उभर कर सामने आएंगी। अपने पिता की भांति नहीं (जिसे उसने अब्बा की जगह पापा कहना शुरू कर दिया था) कि कसबे के सरकारी स्कूल में पढ़ा, न अंग्रेजी अच्छी हुई, न शिक्षा का स्तर ऊंचा हो सका—कालेज भी तो कमबख्त ऐसा था जिसका शिक्षा का माध्यम मातृभाषा थी। उसने बचपन से ऊंचे

स्कूलों, अच्छे स्तर के कालेज में शिक्षा पाई होती तो उसकी इंगलिश अच्छी होती, कहीं बाहर जाकर डिग्री लाता तो आज वह क्या होता? देश उसकी कद्र करता, उसके स्थान को पहचानता। उस बड़े कलाकार को, जीवन कुछ देता... वह जीवन को कुछ दे सकता! और अब! वह क्या है? एक मामूली क्लर्क... जो अपने भीतर के कलाकार को अपनी मातृभाषा में कुछ शेर कह कर, चंद कहानियां लिख कर बहला लेता है। देसी जुबान के दस साधारण लिखने वाले को लोग नजर उठा कर क्यों देखें! भला कहीं इस तरह कद्र हो सकती है? उसके कुछ दोस्त और साथी उस पर तरस खाते, "काश! तुम इंगलिश में लिखते, कम से कम अनुवाद ही कर सकते, अपनी चीजों का इंगलिश में।"... तरस की भावना उसके जिस्म में कांटों की तरह चुभती... मगर वह तो था ही हमेशा से कम बोलने वाला और कम मिलने-जुलने वाला... दब्बू कहा जाता है जिसे। सच है, मातृभाषा और गरीब रिश्तेदार—दोनों एक ही नाव में सवार होते। हीन भावना के ऐसे दौरे उसे अकसर पड़ा करते थे। शायद इसीलिए बबलू को उस महंगे स्कूल में दाखिल कराने के लिए उसने एड़ी-चोटी का जोर लगा दिया था। और बात-बेबात में दोस्तों और साथियों के सामने, उसी के स्कूल का जिक्र ले बैठता था। मगर अब... इस महंगे स्कूल की फीस, किताबें, कापियां, यूनीफार्म और रोज-रोज की मांगों ने उसका कचूमर निकाल दिया था। बीवी के सब जेवर बिक चुके थे। उसकी किताबों की नौबत आ गई थी... मगर अब क्या होगा? ट्यूशन मिलने की आशा थी। मगर आकांक्षाओं और वास्तविकताओं में जो अंतर है, वह उससे छिपा न था। मगर उम्मीद ढाढ़स बंधाती, किसी मुशायरे में बुलाया... किताब की रायल्टी, लेखों का पारिश्रमिक... किसी पुस्तक पर पुरस्कार... क्या हुआ, संसार में चमत्कार भी हुआ करते हैं।

मगर इस समय दौड़ती मोटर के बराबर भागते, इन दृश्यों और इस सुहावनी फजा ने उसे और सब कुछ भुला दिया था। कल्पना की वादी की सैर और प्रकृति के दृश्यों का सौंदर्य—यही दो स्वर्ग थे जो उसे साहस, उमंग, आशा और जीवन की डोर को थामने की शक्ति देते थे।

खेतों की मेड़ों पर मोरों के झुंड 'पीहू-पीहू' कर रहे थे। कहीं बीच खेत में एक नर मोर मस्ती में यूं नृत्य कर रहा था कि सिवा एक रंग-बिरंगे पंखे के कुछ और नजर नहीं आता था। तीतरों की चहकार से 'वाह तेरी कुदरत' की गौरवमय आवाज उठ रही थी और पशु एक अजीब शान से कतार-दर-कतार अपने-अपने ठिकानों की ओर, झूमते-झामते जा रहे थे और उनके गले में पड़ी घंटियों से एक दर्द-भरा संगीत निकल रहा था।

"रोको...रोको... जल्दी, जल्दी!" गाड़ी एक झटके से रुकी, तो वह लुढ़क कर सेठ साहब की गोद में जा गिरा। घबरा कर अलग हुआ, तो वह मुस्कुरा रहे थे। जान में जान

आई। उनका एक साधारण नौकर उनकी तोंद से आ लगा! उफ! कल जब वह अपने काम के सिलसिले में रवाना हो रहे थे, तो उन्होंने खुद ही कहा था, "चलो भई, तुम्हें भी सैर करा लाएं।" वह उस पर जाने क्यों मेहरबान थे! अकसर उससे गजलें सुना करते और उनका यह अहसान तो वह किसी तरह नहीं भूल सकता था कि उन्होंने चाहे उसे दो दिन की छुट्टी नहीं दी थी, किंतु वह रास्ते में आधा घंटा उसके भाई के गांव के निकट ठहर गए थे—लड़कों ने सैर की। सेठजी ने डाक-बंगले में आराम किया और उसने जाकर अपने भाई को देख लिया और अब वे वापिस जा रहे थे। आगे सेठजी के दोनों बेटे बैठे हुए थे जिनके बहुत से शौक थे, जिन में से एक शौक शिकार खेलना भी था। दो भरी हुई बंदूकें साथ थीं। क्या पता कहां शिकार मिल जाए?

और वह रास्ते भर इन भरी बंदूकों से परेशान रहा था। अगर किसी झटके से बंदूक चल गई तो? कौन-कौन उसकी भेंट चढ़ेगा? एक बार उसने झिझकते हुए कहा भी, "साहब, ये बंदूकें भरी हुई हैं?" सेठ साहब उसकी बुजदिली पर हंस पड़े। "जान बड़ी प्यारी है क्या?" और वह यह भी न कह सका कि यदि वह जख्मी हो गया तो इलाज न करा सकेगा और अगर मर गया तो जवान पत्नी और दो बच्चे दुनिया में बेसहारा रह जाएंगे।

पट खोल कर सेठ के दोनों लड़के बंदूकें छिपाए, भागते हुए सामने के खेत में घुस गए। कुछ क्षण बाद 'ठाएं-ठाएं' की दो आवाजें आईं...। बहुत से पक्षी डर कर आकाश की ऊंचाइयों में उड़ गए। एक तीतर तीर की तरह तेजी से गिर कर सड़क के किनारे एक नाले के निकट गिर पड़ा । उधर से लड़के दौड़े, इधर से पठान ड्राईवर भागा और कुछ मिनटों बाद हांफते हुए शिकारी, जिन के चेहरे जोश और प्रसन्नता से लाल-सुर्ख हो रहे थे, हाथ में कुछ लटकाए मोटर की ओर आ रहे थे।

"तीतर...तीतर, दो तीतर... पिताजी, देखिए... कितने तगड़े, कैसे सुंदर हैं!" वे सामने खड़े उन तीतरों को नचा रहे थे, जो कुछ ही क्षण पहले जिंदगी और खुशी से भरपूर 'वाह तेरी कुदरत' का राग अलाप रहे थे...।

उसके सारे शरीर में एक शीत लहर सी दौड़ गयी और उसन घबरा कर दोनों हाथों से मुंह छिपा लिया। "उफ!" यह इंसान! आह, यह उसका मनोरंजन!

कभी बेजुबान, और मासूम जानवरों को शिकार करके उनको जीवन से वंचित कर देता है... मनोरंजन के नाम पर!

कभी अपने ही साथियों...अपने ही भाईयों का खून बहाता है, हक, न्याय और आजादी की हिमायत के नाम पर! मोटर में बैठने वाले उसकी बुजदिली पर कहकहे लगा रहे थे। "अजी क्या लौंडियों की तरह टसुवे बहा रहे हो!" सेठ साहब ने मुस्कुरा कर कहा था। मगर उसकी आंखें भर आई थीं और वह जड़ हुआ बैठा था। वातावरण का सुहानापन,

आकाश का सौंदर्य, धरती की खूबसूरती गायब हो चुकी थी और मनुष्य की निर्दयता और भूख नंगी होकर उसके सामने नाच रहे थे! "रोको...रोको...रोको!"

फिर गाड़ी रुकी। फिर शिकारी भागे। फिर शरारे चमके, फिर आवाजें गूंजीं। फिर जीवन से भरपूर कई जानें आदमी के मनोरंजन की भेंट चढ़ गईं।

साहबजादे एक ओर दौड़े कि मुर्दा पक्षियों को उठाएं। ड्राईवर दूसरी दिशा में भागा, जहां उसने परिंदे को जख्मी हालत में देखा था।

वह कार से उतर कर खलिहान के पास जा खड़ा हुआ, जहां कुछ ग्रामीण किसान खड़े इन शिकारियों पर अपना-अपना मत प्रकट रहे थे। और फिर उसने देखा, एक नन्हा-सा जख्मी तीतर रेंगता हुआ आया और भूसे के ढेर के नीचे चला गया। एक अधेड़ किसान ने कुछ घबरा कर उसकी ओर देखा और दो-तीन 'पूले' उसके ऊपर रख दिए। वह सिर उठाए उन सहमे हुए पक्षियों को उड़ते हुए देख रहा था, जो सभ्य इंसान के इस प्रिय हथियार से डर कर ऊंचे, और ऊंचे... और ऊंचे उड़े चले जा रहे थे, जहां वे इन लोगों से सुरक्षित रह सकें जो अपने को इंसान कहते हैं।

इतने में तीनों शिकारी यहां आ पहुंचे। उनके हाथों में दो मुर्दा पक्षी लटक रहे थे और वे तीसरे की तलाश में लगे हुए थे जो उनको खाने के लिए नहीं, अपने जोश और शौक की पूर्ति तथा मनोरंजन के लिए तलाश कर रहे थे।

वे बिगड़ रहे थे, बड़बड़ा रहे थे, धमकियां दे रहे थे, लालच दे रहे थे। "कहां गया हमारा शिकार? यहीं कहीं है! तुम लोगों ने उसे छिपा दिया है। ढूंढों, हम तुम्हें पांच रुपये देंगे।"

दो-एक युवक जख्मी तीतर को तलाश करने लगे। पांच रुपये का लालच इन गरीबों के लिए मामूली न था।

और वह अधेड़ किसान उस पूले के पास बैठा देखने में तो बहुत शांत नजर आ रहा था, परंतु उसकी पुतलियां बेकरारी से ऊपर-नीचे हो रही थीं और चेहरे का रंग उड़ गया था।

फिर वे तीनों दूसरी ओर दौड़ गए। तीतरों का एक और हसीन जोड़ा दूर किसी खेत में चहचहा रहा था। वह वहीं खड़ा रहा, "बाबा!"

"हां, बेटे!"

"तुम इसकी मरहम-पट्टी करोगे न?"

"किस की?"

"जख्मी तीतर की, बाबा!"

उसने आश्चर्य से देखा... तो मोटर में बैठने वाले शिकारियों में इंसान भी मिल

जाते हैं!

बूढ़े ने पूले के अंदर हाथ डाल कर एक सहमी हुई, नन्हीं सी जान को निकाला और सीने से लगा लिया!

"हां, बेटे... मैं इसका इलाज करूंगा, अच्छा हो जाएगा।"

"तुम महान हो, बाबा!" उसकी आंखें जाने क्यों भर आईं।

"क्या कहा, बाबू?"

"कुछ नहीं... तुम इंसान हो, सचमुच इंसान!"

उसने झुक कर बूढ़े के खुरदरे हाथ को जिस में जख्मी पक्षी तड़प रहा था, आंखों से लगा लिया!

"अरे, आओ न भई...वहां क्या कर रहे हो?" सेठ साहब ने पुकारा। वह धीरे-धीरे मोटर की ओर चल दिया।

खुशी के मौसम

अली बाक़र

किसी मिसिज एम. बैनर्जी ने कलकत्ता से अलबर्ट मार्टन को लिखा था कि वह एक सप्ताह के लिए आक्सफोर्ड आ रही हैं, क्या उन्हें होटल का ऐसा कमरा मिल सकता है जिसकी खिड़कियां पार्क की ओर खुलती हों? अलवर्ट ने ऐसे कमरे का प्रबंध कर दिया था। उसका छोटा सा सुंदर होटल, उस बड़े पार्क के किनारे पर था जहां विश्वविद्यालय के विज्ञान-विभाग थे।

अलबर्ट का संबंध स्वयं इस प्राचीन विश्वविद्यालय से कभी नहीं रहा था। मगर उसे यह शहर पसंद था। इसकी पुरानी और तंग सड़कों पर दिन-रात दिखाई देने वाले युवक-युवतियां थे, जो काले गाऊन पहने ऊंची-ऊंची आवाज में बातें करते, इधर-उधर घूमते रहते। अलबर्ट को भारतीय विद्यार्थी सब से अधिक अच्छे लगते। शालीन, समझदार, सभ्य और फिर उनका अंग्रेजी बोलने का विशेष अंदाज... अभी कुछ वर्ष पहले भारत के एक छोटे से राज्य का राजकुमार, अलबर्ट के होटल के सामने पार्क में क्रिकेट खेला करता था। वह आक्सफोर्ड टीम का कप्तान था। कभी-कभी उसके साथ एक खूबसूरत, कोमल सी भारतीय युवती हुआ करती थी, जो संभवतः फिल्म अभिनेत्री थी। जब वह हंसती, तो उसके गालों में छोटे-छोटे सुंदर से गड्ढे पड़ जाते थे। अलबर्ट को ऐसे समय अपनी मानुषी की बहुत याद आती।

मानुषी से बिछुड़े कितना अरसा हो गया था! वह उन दिनों विश्वविद्यालय में पढ़ती थी और अलबर्ट शहर के एक बड़े होटल का मैनेजर था। वह पार्क में घूमने जा रहा था, जब पहली बार उसने मानुषी को देखा। मानुषी ने हरी साड़ी पहनी हुई थी और उसके लंबे, काले, खुले हुए बाल हवा में लहरा रहे थे। अजायबघर के सामने फुटपाथ पर वह अलबर्ट से दो-चार कदम आगे चल रही थी। मानुषी की चाल से अलबर्ट को लगा कि वह बहुत खुश थी। एक ऐसी आंतरिक खुशी, जिसका बयान शब्दों का मुहताज नहीं होता। "तुम बहुत खुश हो क्या?" अलबर्ट ने आगे बढ़ कर उस गेहुंए रंग की युवती से कह ही दिया। यदि वह इतनी प्रसन्न नजर न आती तो शायद अलबर्ट उसे इस प्रकार संबोधित

न करता। युवती ने अपनी गति बनाए रखी और मुड़ कर अलबर्ट को देखा। उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें चमक रही थीं। उसे चेहरे से खुशी फूट रही थी। वह मुस्कुरा नहीं रही थी, मगर लग रहा था जैसे कि वह मुस्कुरा रही है। अलबर्ट की बात का उत्तर देते हुए वह मुस्कुराई और उसके गालों में छोटे-छोटे गड्ढे बन गए। "हां, आज मैं बहुत खुश हूं, बहुत ही ज्यादा खुश। मगर तुम्हें कैसे पता चला? तुमने तो मेरा चेहरा भी नहीं देखा था!"

"तुम्हारी चाल से... ऐसा लग रहा था जैसे तुम अभी नाचने लगोगी, हवा में उड़ने लगोगी। आशा है कि तुमने इस प्रकार बात आरंभ करने का बुरा नहीं माना होगा।" अलबर्ट स्वयं बहुत शर्मीला था। वह नहीं चाहता था कि उसकी भावना को गलत समझा जाए।

"नहीं, मैंने बुरा नहीं माना। सच, बिलकुल बुरा नहीं माना। खुशी पर सब इंसानों का अधिकार होना चाहिए। खुशी बड़ा प्यारा उपहार है जो हम एक-दूसरे को दे सकते हैं। खुशी को सब में बांटना चाहिए। हर तरफ बिखेरना चाहिए। इसीलिए मैं पार्क में जा रही हूं। वहां के पेड़-पौधे, वहां के फूल और पत्ते सब मेरे मित्र है।" उन छोटे-छोटे गड्ढों के बीच मुस्कुराहट खेलती रही। अलबर्ट को अनुभव हुआ कि उस युवती के माथे पर बिंदिया मुस्कुरा रही थी।

"लेकिन आखिर इतनी खुशी किस बात की हो सकती है!" अलबर्ट को उस भारतीय युवती की बातें अच्छी लग रही थीं। उसकी आवाज में एक अजीब मिठास थी।

"तो तुम अंग्रेज हो और इतना भी नहीं जानते! आज भारत स्वतंत्र हुआ है। एक देश की स्वतंत्रता एक व्यक्ति की स्वतंत्रता से किसी प्रकार कम नहीं होती।" वह फिर मुस्कुरा रही थी। उसके बाल एक अनोखी आजादी से हवा में झूल रहे थे। अलबर्ट को बड़ी लज्जा महसूस हुई कि अंग्रेज होते हुए उसे यह नहीं मालूम था कि उस दिन भारत स्वतंत्र हो रहा था।

उस दिन से अलबर्ट और उस हंसती हुई हिंदुस्तानी युवती की दोस्ती आरंभ हुई जो मुस्कुराते हुए बड़ी समझदारी की बातें कह जाती थी। उसका नाम मानुषी था। वह बंगाल की रहने वाली थी और आक्सफोर्ड, बी.ए. करने आई थी। एक वर्ष से कम समय बाकी रह गया था।

आक्सफोर्ड छोटा सा शहर है। बार-बार लोगों से भेंट हो जाती है। अलबर्ट तो विशेष रूप से मानुषी से मिलना चाहता था। वह किसी दुकान से निकलते हुए, लायब्रेरी से आते हुए, कालेज जाते हुए मिल जाती। मगर उन दोनों की मुलाकात अधिकतर पार्क में होती। अक्तूबर में जब पतझड़ शुरू हुआ तो मानुषी अलबर्ट को पार्क के वृक्षों पर सोने की भांति तपते हुए रंगों का सौंदर्य दिखाती। नवंबर में जब मौसम ने एक और करवट ली तो सारा पार्क कभी-कभी कोहरे से भर जाता। मानुषी को वह दूधिया धुआं बड़ा प्यारा लगता।

क्रिसमस के दिनों में सारा पार्क जब सफेद वर्फ की नरम परतों में छिप गया तो अलबर्ट और मानुषी बर्फ से ढके किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर दूर गिरजों में बजती हुई घंटियों की आवाजें सुनते रहते। मानुषी से मिलने के बाद अलबर्ट ने हर मौसम में एक नया सौंदर्य पाया। हजार बार अलबर्ट ने चाहा कि मानुषी से कह दे कि वह उससे अथाह प्रेम करता है। मगर मानुषी उसे कभी मुहब्बत जताने न देती। जून के अंत में परीक्षा के बाद, वह भारत लौट रही थी। आक्सफोर्ड के पुराने स्टेशन के प्लेटफार्म पर खड़ा वह मानुषी को विदा कर रहा था। मानुषी डिब्बे की खिड़की से झांक रही थी। आज भी उसने वही साड़ी पहन रखी थी जिसमें पहली बार अलबर्ट ने उसे देखा था। "मानुषी...!" अलबर्ट ने अपनी नजरें मानुषी के चेहरे से दूर हटाते हुए कहा, "मैं तुमसे अब तक यह न कह सका ...।"

"बहुत सी बातें बिना कहे समझ में आ जाती हैं," मानुषी ने अपने लंबे बालों को पीछे झटकते हुए कहा। आज भी उसके माथे पर बिंदिया मुस्कुरा रही थी। "अलबर्ट ...मेरे मित्र...! प्यार और लगाव किसी सिगरेट या साबुन की तरह तो नहीं कि उनके लिए बड़े-बड़े रंगीन पोस्टर बनाए जाएं। तुमने आज तक कहीं विज्ञापन देखा है कि गुलाब की सुगंध बहुत अच्छी होती है!"

"तुम अब चली जाओगी तो शायद कभी न मिलो।" अलबर्ट मानुषी के पूरबी दर्शन का कोई जवाब न ढूंढ सका था। वह जुदाई के विचार से बेहद उदास था।

"भला यह हो सकता है अलबर्ट, कि तुम पार्क जाओ और मुझे न याद न करो? जब हल्की-हल्की धूप में लिखे हुए फूलों को देखो, जब रात की शबनमी चादर में वृक्षों को लिपटा हुआ देखो, जब कोहरे में पार्क को छिपा हुआ देखो, जब बर्फ के उड़ते हुए गोलों को शाखों पर उलझा देखो, तो समझ लेना कि मैं तुम्हारे करीब हूं। तुम से बातें कर रही हूं।"

रेलगाड़ी धीरे-धीरे सरकने लगी और अलबर्ट को अचानक महसूस हुआ कि अब मानुषी को विदा करने की जरूरत नहीं है। मानुषी भारत नहीं लौट रही थी। वह तो वहीं आक्सफोर्ड में उसके निकट रहेगी। गिरजे की घंटियों में उसकी आवाज घुल जाएगी। सूरज की रोशनी में मानुषी के चेहरे की चमक निखर जाएगी। रात के अंधेरे में उसके बालों के पेच और कुंडल मिल जाएंगे। प्रेम सचमुच मनुष्य को अमर सुंदरता में ढाल देता है।

शहर की सड़कों और गलियों में, नदी के किनारे पार्क की विशाल हरियाली में अलबर्ट अकेला होता, परंतु उसे अकेलेपन का अहसास न होने पाता।

इतने वर्षों बाद कलकत्ता से आने वाले पत्र को पढ़ते हुए अलबर्ट को अनुभव हुआ जैसे कि मिसिज एम. बैनर्जी उसकी मानुषी ही है। अलबर्ट ने सोचा, मानुषी की शादी हो

गई होगी। उसके बच्चे भी होंगे। अलबर्ट ने बड़े चाव से ऐसे कमरे में मिसिज बैनर्जी के ठहरने का प्रबंध किया जिसकी खिड़कियां पार्क की ओर खुलती थीं। मिसिज बैनर्जी के आक्सफोर्ड पहुंचने में केवल एक दिन रह गया था। उसके नाम आया हुआ एक पत्र भी पड़ा था। अलबर्ट की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। उसने रात गए मिसिज बैनर्जी के नाम लिखा खत खोल कर पढ़ ही लिया। वह पत्र मिसिज बैनर्जी को उसके पति ने लिखा था। संबोधन से लेकर अंत तक एक-एक शब्द मुहब्बत में डूबा हुआ था। जिंदगी में पहली बार अलबर्ट को ईर्ष्या का भावना का तीक्ष्ण अहसास हुआ। मानुषी को उसका पति कितना चाहता था! पत्र पढ़ने पर अलबर्ट को पता चला कि मानुषी अब भी उतनी ही सुंदर है। उसके बालों, उसकी आंखों, उसकी मुस्कुराहट का उल्लेख उसके पति ने कुछ इस अंदाज से किया था जैसा स्वयं अलबर्ट सोचता था।

जिस सुबह मिसिज बैनर्जी आने वाली थी, अलबर्ट ने फूलों से सारा होटल भर दिया था। आज उसकी मानुपी फिर मिलने वाली थी। वह उसके साथ पार्क में घूमने जाएगा। मानुषी अभी तक पार्क को नहीं भूली थी। ग्यारह बजे के करीब एक टैक्सी होटल के सामने आ कर रुकी जिसकी खिड़की से वह केवल हरे रंग की साड़ी का पल्लू देख सका। अलबर्ट का दिल जैसे चलते-चलते थम सा गया। भावनाओं के वेग से अलबर्ट की नीली आंखों में आंसू उमड़ आए। वह मुड़ कर रूमाल से आंखे पोंछने लगा।

''क्षमा कीजिए... मेरा नाम मिसिज बैनर्जी है, मिसिज एम. बैनर्जी... आप के होटल में मेरे लिए एक कमरा रिजर्व है।''

भारतीय लहजे में कोई उससे मुखातिब था। अलबर्ट ने घूम कर मिसिज बैनर्जी की ओर देखा। वह मानुषी नहीं थी। उसका कद मानुषी से छोटा था। आंखें बहुत छोटी थीं। रंग में वह कशिश न थी। शरीर खासा बेडौल था। अलबर्ट ने कमरे की चाबी मिसिज बैनर्जी की ओर बढ़ा दी और कहा, ''आपका कमरा पहली मंजिल पर है। वहां से लगभग सारा पार्क नजर आता है। आप के नाम एक खत भी आया हुआ रखा है।''

"मेरे पति का होगा...! भगवान जाने इतने दिन मेरे बिना उनका गुजारा कैसे होगा!" मिसिज बैनर्जी की आवाज में मानुषी जैसी मिठास न थी। वह जब सीढ़ियां चढ़ती हुई ऊपर जा रही थी, तो अलबर्ट सोच रहा था कि आखिर वह क्या चीज है जो एक स्त्री को उसके पति की नजर में मानुषी की तरह सुंदर बना देती है!

पहिया

ग़यास अहमद गद्दी

तेरह वर्ष की आयु में विवाहित लच्छो ने जब देखा कि उसका पति हर रात उसकी बजाय दुलारी से पांव दबवाता है और आधी रात को उसे नीचे फर्श पर धकेल कर लैंप बुझा देता है, अंधेरे में सुबह तक दुलारी उसके पांव दबाती रहती है, तो एक दिन वह धीरे से दरवाजा खोल कर बाहर निकल जाती है और फिर लौट कर पति का मुंह नहीं देखती।

"फिर क्या होता है, लच्छो...?"

"लच्छो नहीं, लच्छो रानी कहो...." उसने बीच में ही टोकते हुए पहले अपने नाम की ओर ध्यान दिलाया।

"अच्छा, लच्छो रानी, फिर तुमने क्या बताया था?" फिर लच्छो रानी को उल्फत इक्के वाला मिल गया था जिसने यात्री-गाड़ी के एक खाली डिब्बे में एक गठरी के साथ उसे भी गठरी बनी, नींद में बेखबर पाया था। उसने लच्छो रानी को जगाया और पूछा कि कहां जाओगी, तो लच्छो ने नींद और सफर की थकावट से टूटे हुए जिस्म को सीधा करते हुए आधी नींद में ही कहा, "घर।"

फिर उल्फत इक्के वाले ने आगे कुछ प्रश्न करना इसलिए उचित न समझा कि उस स्थिति में उसे सही उत्तर की बिलकुल आशा न थी और इक्के में बिठा कर अपनी झोंपड़ी में एक भारी गठरी की तरह टूटी हुई, झूला बनी चारपाई पर पटक दिया, तो वह चौंकी, "अरे, मुझे कहां ले आए हो?"

"घर," उल्फत ने उसी सादगी से कहा और चूल्हे के पास पहुंच कर आग जलाने लगा।

उसके बाद लच्छो ने और कुछ नहीं पूछा। लच्छो को एक घर चाहिए था और उसकी संक्षिप्त सी जिंदगी में ....उसके परिवार की पिछली शताब्दियों की पारंपरिक कल्पना भी यही थी। एक चारदीवारी हो जहां कोई टूटी, झूलाबनी चारपाई हो, न हो, एक चूल्हा जरूर हो और बाद अगर किसी चीज की जरूरत थी तो बस, उसके अंदर घर वाला भी हो। बिना घरवाले के घर की कल्पना अधूरी होती है।

उल्फत की बीवी कोई साल भर पहले अल्लाह को प्यारी हो गई थी। उल्फत का घर बिन घरनी के, भूतों का डेरा लग रहा था। ऐसी स्थिति में सहसा आकाश से उतरी नेमत से लाभान्वित न होना, नेमत का निरादर करना है।

लच्छो रानी अकसर मुझसे विवाहित जीवन के संबंध में एक बहुत पुरानी घिसी-पिटी वास्तविकता के निकट उपमा प्रस्तुत किया करती है। यानी, जिंदगी एक गाड़ी है तथा स्त्री पुरुष उसके दो पहिये... इसलिए दोनो पहियों का समान और समांतर होना अत्यंत आवश्यक है वरना कदम-कदम पर धक्के हैं, ठोकरें हैं।

यद्यपि कुछ ही महीनों के बाद लच्छी रानी को विश्वास हो गया कि यह जो जिंदगी की गाड़ी समय की सड़क पर उछलती-कूदती, दौड़ती फांदती, धक्के-हिचकोले खाती जा रही है, तो इसका कारण यह नहीं है कि सड़क ही खराब और ऊबड़-खाबड़ है, बल्कि पहिये ही कुछ ठीक नहीं हैं, छोटे-बड़े हैं और आपस में मेल नहीं खाते।

लच्छो रानी के कथनानुसार कुछ ही महीनों बाद वह हर रोज उसकी पिटाई करता। वो पिटाई करता, वो पिटाई करता कि सचमुच उसे अपनी नानी याद आने लगती। मुंह-अंधेरे वह इक्का लेकर घर से निकल जाता और रात गए जब वापस आता तो शराब के नशे में धुत। पहले खाने को मांस-रोटी मांगता। जब मांस खा चुकता और रोटी फेंक चुकता, तो लच्छो रानी की ओर यूं देखता गोया दिन भर का ऋण चुकाने का वक्त आ गया हो। फिर जब थक जाता तो टूटी हुई चारपाई पर यूं पड़ जाता जैसे सारे फर्ज पूरे हो गए हों। उधर आराम से इस आस में पिटने वाली लच्छो रानी ने कि बाद में आम पतियों की तरह प्यार भी करेंगे, देखते-देखते जब यह देखा कि कुएं का पानी एक दम से तारा (पहुंच से परे) हो गया है तो सोचते-सोचते वह एक दिन इस निष्कर्ष पर पहुंची कि इन तिलों में तेल नहीं रहा!

ऊबड़-खाबड़ सड़क पर चलते-चलते उल्फत मियां के इक्के का अंजर-पिंजर ढीला हो गया है और अब तो डर है कि किसी दिन सवारियों को लिए-दिए धड़ाम से किसी खड्ड में न जा गिरे।

लच्छो रानी ने बताया कि "गद्दी जी, बस, उसी दिन से मैंने यह जाना कि यह चारपाई पर गहरी निद्रा में सोया हुआ उल्फत इक्केवाला, जिसके साथ मैंने अपने भाग्य की डोरी जोड़ी थी, वह निरा मांस का लोथड़ा है, मांस का लोथड़ा।"

"फिर तुमने क्या किया, लच्छो रानी?"

"फिर मैं क्या करती, थूक दिया उसके मुंह पर और चली आई इस शहर में...।"

जिस शहर में उल्फत मियां इक्का हांकता था, वहीं उसका एक मित्र रहता था, सद्दू। सद्दू अकसर उल्फत के साथ उसके घर आया करता था, विशेषकर रात के समय जब

वह शराब के नशे में चूर होता। वह इक्के से उतार कर सहारा देते हुए उसे चारपाई पर लिटाता। घोड़ी को खोलता। इक्के को छज्जे के नीचे रखता। घोड़ी को सानी-पानी देता। फिर घंटा, दो घंटे घोड़ी की इतने प्रेम से मालिश करता, गोया घोड़ी उल्फत की नहीं, उसकी अपनी है।

स्वामित्व की हद यह थी कि धीरे-धीरे उसने लच्छो रानी को भी अपनी संपत्ति समझना शुरू कर दिया, जिस तरह वह घोड़ी को सानी लगाता, गाड़ी को छज्जे में रखता, उसी प्रकार चाहता था कि लच्छो रानी की भी देख-रेख शुरू कर दे। बल्कि एक दिन जब लच्छो तीसरे पहर के समय छोटे से धुंधले दर्पण की सहायता से माथे पर बिंदिया लगा रही थी, उसने बताया कि बिंदिया ठीक जगह पर नहीं लग रही है, तो लच्छो रानी ने कहा, "तू मुंह क्या देखता है! ले, लगा दे।"

सद्दू आगे बढ़ कर बिंदिया लगाने लगा, तो सहसा उसके हाथ कांपने लगे, और लच्छो रानी ने अनुभव किया कि बिंदिया सद्दू ने सिर्फ माथे पर ही नहीं, सारे गाल पर लगाई है।

"यह क्या कर रहे हो सद्दू?"

"कुछ नहीं रानी, बिंदिया..." सद्दू का स्वर गले में ही टूटने लगा और वह मस्ती की एक अजीब सी स्थिति में उसकी कमर के गिर्द अपने हाथ फेरने लगा।

लच्छो बोली, "मैंने महसूस किया, जैसे कोई गेहुंआ सांप मेरी कमर के गिर्द लिपट गया है। थोड़ी देर के लिए मैं डरी। फिर पल भर में पता नहीं कहां से इतनी शक्ति आ गई कि मैंने सद्दू को ऐसा धक्का दिया कि वह चकरा कर धरती पर जा गिरा। तब मैं फिर लपकी और चांदी के कड़े वाले हाथ से वह पीटा, वह पीटा कि उसके होश ठिकाने आ गए।"

लच्छो रानी ने कहा, "गद्दी जी! यहां तक तो ठीक था, मैं चाहे उसे पीट रही थी और वह पिट रहा था, मगर मुझे एक डर भी था। अकेला घर है और सद्दू फिर भी मर्द जात है। पर जब देखा कि उसने मेरे पांव पकड़ लिए, धिधियाके मुझ से क्षमा मांगने लगा तो मेरे हाथ रुक गए। अब कोई ऐसों को क्या मारे! उस समय मुझे बड़ी घृणा हुई और मैंने उसके मुंह पर थूक भी दिया।"

फिर यूं हुआ कि लच्छो रानी ने जिस सद्दू के मुंह पर थूका था, उस समय जब उसे उल्फत मियां के कंगलेपन का अहसास हुआ और सारी दुनिया अंधेरी दिखाई देने लगी तो ज्योति-स्तंभ बन कर जो चीज उसके सामने आई, वह सद्दू ही था।

वह उस रात के पिछले पहर, जब चारों ओर सन्नाटा था, बिना खटके घोड़ी के छज्जे के निकट आई जहां लीद के पास एक मैले टाट पर दीन-दुनिया से बेखबर वह सो रहा

था, उसने आहिस्ता से सद्दू के कंधे पर हाथ रखा और धीरे से जगाया। सद्दू हड़बड़ा के उठ बैठा और उसके पांव पकड़ कर गिड़गड़ाने लगा।

"नहीं, नहीं लच्छो, अब तो मुझे माफ कर दे। बहुत हो गया। अब तो बख्श दे।"

लच्छो रानी को यूं लगा कि फिर उसके मुंह पर थूक दे। मगर अंधेरे कुएं में यही एक रस्सी थी जिसे थाम कर वह बाहर आ सकती थी।

"तो गद्दी जी, चार साल मेरे साथ रहते हुए भी वह मेरा पति न रह सका। उससे मुझे बच्चा भी हुआ यानी मेरी जिंदगी के पेड़ पर फल भी लगा, मगर मैंने बराबर यही समझा कि सद्दू मेरा मर्द नहीं, मेरी जोरू है, मेरी बीवी, और मैं उसका मर्द हूं जो दिन भर पान की दुकान में कत्थे-चूने का तमाशा लगा कर पैसा बनाती हूं। बाजार से सौदा-सामान लाती हूं। अपने और सद्दू के लिए कपड़े खरीद कर लाती हूं और वह बेचारा सारा दिन सुशील स्त्रियों की तरह भोजन बनाता है, कपड़े धोता है, मसाला पीसता है और किसी-किसी दिन जब मेरा जिस्म बहुत टूटता है तो वह मालिश भी करता है।"

यहां पहुंच कर लच्छो रानी शरमा जाती और पल्लू से मुंह ढक कर हंसने लगती।

मैं कहता, "सारी कहानी में लच्छो रानी, यूं तो तुम हर जगह अपने औरतपने का पता देती आई हो, मगर प्रकट रूप में यहीं औरत दिखाई देती हो; अपने देश की औरत।"

"क्या अपने देस में स्त्रियां मेरे जैसी नहीं होती हैं, क्या उनकी दो टांगें, दो हाथ, नाक, आंखें.... नहीं होतीं....?"

"होती तो हैं, मगर कोई स्त्री तुम्हारी तरह अपने पति का पति नहीं होती और अपने पति से बदन नहीं दबवाती है।"

"तो मैं क्या करूं? वह निक्खटू है ही ऐसा।"

फिर मैं अचानक एक अलग प्रश्न कर बैठता हूं, "जो भी हो, पर तुम उसके साथ खुश तो हो?"

लच्छो रानी इस प्रश्न को सुन कर कुछ देर के लिए चुप रहती है। फिर लंबी सांस लेकर मेरी ओर अजीब नजरों से देखती है। "पता नहीं जी, पर ऐसा लगता है, जैसे कुछ और चाहिए।"

बस, यही वह जगह है जहां मेरी कलम रुक जाती है और मैं अपने आप से यूं उलझ जाता हूं जैसे जंगल में खो गया होऊं। लच्छो रानी की गृहस्थी बड़े मजे में चली जा रही है। सड़क भी समतल है और दोनों पहिये भी छोटे-बड़े नहीं। सिर्फ इतनी सी कसर रह गई है कि संभवतः दाईं ओर बायां पहिया लग गया है और बाईं ओर दायां। मगर इससे क्या फर्क पड़ता है? देखने को तो इस स्थान पर पहुंच कर कहानी पूरी हो जाती है, यानी

राजा और रानी मजे से रहने लगे, किस्सा खतम और पैसा हजम....।

चाहे यहां तक सोचने के बाद, देखने को तो मैं कहानी को अंत तक पहुंचा देता हूं। मगर मुझे ऐसा महसूस होता है कि कल्पना की इस उड़ान में, मुझसे कहीं भूल अवश्य हुई है। कुछ छूट रहा है, कोई कमी पड़ रही है। गोया इस गहन जिंदगी में कोई मोड़ आना चाहिए, कोई घटना, कोई हादसा... कोई...।

इसलिए मैं लच्छो रानी पान वाली की कहानी नहीं लिख पाता। मेरी कलम को, मेरी आत्मा को लच्छो रानी की जिंदगी से संबंधित किसी विचित्र घटना की प्रतीक्षा है। यह घटना कब घटेगी, किन स्थितियों में घटेगी, फिर उससे लच्छो की, समान रूप से चलने वाली जिंदगी पर और उसके पश्चात मेरी कहानी पर क्या प्रतिक्रिया होगी, कैसे होगी!

मैं कुछ सप्ताह के लिए कार्यालय के काम से बाहर चला गया। काम अधिक होने के कारण और नये लोगों के झमेले में लच्छो रानी और उसके जीवन की कहानी तो क्या, मैं अपने आप को भी भूल सा गया। कुछ सप्ताह बाहर बिताने के बाद, जब मैं वापस लौटा, तो रात मुझे मलेरिया बुखार ने अपनी चपेट मे ले लिया। अकेले घर में बहुत जोर का बुखार और दर्द होने के कारण सारी रात और सारा दिन मैंने आत्म-विस्मृति की हालत में व्यतीत कर दिया। शाम होते-होते बुखार जरा कम हुआ तो सिरहाने लच्छो रानी को पंखा झलते हुए पाया।

"मैंने सुबह-सवेरे ताला खुला देखा तो मालूम हुआ कि तुम आ गए हो... जरा दिन चढ़ ले तो तुम खुद आओगे, सिगरेट पीने। बाट देखते-देखते दोपहर होने को आई। बंद दरवाजा खुला ही नहीं, तो मेरे मन में संदेह हुआ। देखा तो सचमुच मुर्दा से पड़े हो।"

मैंने उठना चाहा तो उसने कंधों पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं, नहीं, उठो नहीं। डाक्टर ने आराम करने को कहा है।"

"डाक्टर कैसे आया?" मैंने गर्दन घुमा कर उसके चेहरे की ओर देखने की कोशिश की, "क्या तुम लाईं?"

"नहीं जी, इधर गुजर रहा था, तो मैंने कहा अंदर चल कर देख लो।" लच्छो रानी ने यूं कहा, जैसे अपने को परदे के पीछे रखना चाहती हो।

दस दिन तक लच्छो रानी ने मेरी बड़ी सेवा की। सारा-सारा दिन पंखा झलती। ठंडे पानी की पट्टियां रखती, दूध और साबुदाना बना कर देती और इन सब से बड़ा काम यह करती कि अकेलेपन और अजनबीपन के अहसास को दूर-दूर तक फटकने न देती, बल्कि रातों को जब कभी मेरी नींद टूटती तो महसूस होता कि जैसे लच्छो रानी अभी-अभी यहां से उठ कर गई है या बाहर दरवाजे पर बैठी ऊंघ रही है।

"यह तुम क्या करती हो, लच्छो? तुम्हारी दुकान और खराब होती होगी और सद्दू

की कमर काम से दोहरी हो जाती होगी।''

''सद्दू को मैंने मार भगाया।'' लच्छो रानी ने बड़े संतोष से कहा जैसे कोई बात ही न हुई हो।

रब खैर करे! मैंने महसूस किया जैसे लच्छो रानी की गृहस्थी की गाड़ी धड़ाम से खड्ड में गिर पड़ी हो। मैंने पलट कर फिर उसकी ओर देखा। उसके चेहरे पर पहले की तरह ही संतोष था।

''यह कैसे हुआ?''

''हुआ, तुम अच्छे हो जाओ तो बताऊंगी।''

लच्छो रानी के स्वर की स्थिरता से मैं भी संतुष्ट हो गया। मुझे हंसी आ गई। मैंने मुस्कुराते हुए कहा, ''पांव नहीं दबाए होंगे बेचारे ने।''

''नहीं, यह बात नहीं। उस मुए के भाग्य ही में पाव दाबने लिखे थे। मर्द नाम की उसमें कोई चीज न थी। मेरी दुकान में पान खाने वह पठान आता था न, बड़ी-बड़ी मूंछों वाला।''

लच्छो रानी की दुकान में बड़ी-बड़ी मूंछों वाला पठान पान खाने के अलावा कुछ और उम्मीद में भी आता था। लच्छो रानी महसूस भी करती थी मगर इतना भी नहीं सोचती—जवान आदमी है, दिल्लगी कर लेता है।

मगर एक रोज शाम के झुटपुटे में जब दुकान में और कोई ग्राहक न था और लच्छो रानी गोवर-मिट्टी से सामने वाना फर्श लीप रही थी, पठान ने उसका हाथ पकड़ लिया। बातों-बातों में नौबत यहां तक पहुंच जाएगी, इसकी लच्छों को आशंका न थी। वह जरा संभली और जोर से एक झटका मार कर पठान के हाथ से अपना हाथ छुड़ा लिया। उसने पास पड़ा हुआ झाड़ू उठाया और डपट कर बोली, ''खबरदार जो आगे बढ़ा!''

मगर पठान ताव में था। उसने लपक कर फिर कलाई पकड़ ली और लगा झकझोरने। लच्छो रानी उसको परे हटाने में लगी थी, मगर सद्दू रास्ता चलने वालों की तरह सिर्फ बीच-बचाव की कोशिश में जुटा हुआ था।

लच्छो रानी ने बताया, ''गद्दी जी, तब मैंने गाली दे दी और ललकारा—पास पड़ी हुई लोहे की छड़ से दे एक...मगर यह सुन कर तो उसके हाथ-पांव फूलने लगे। कांपते हाथों में उसने उठाई तो सही, मगर उसी वक्त पठान ने उसे एक लात मारी और वह दूर जा गिरा।

''फिर 'अरे बाप रे बाप!' कहता हुआ वह झोंपड़ी में घुस गया, जैसे लच्छो का उससे कोई वास्ता हीं नहीं था। वह तो भाग्य से राह चलने वालों ने पठान को मार भगाया वरना पता नहीं, उस दिन क्या प्रलय गुजरती।''

प्रलय तो उस दिन गुजरी जिस दिन लच्छो मेरे बर्तन मांज रही थी और मैं सहन में कुर्सी पर बैठा कहानी लिख रहा था। लच्छो ने राख-भरे हाथ की पुश्त से माथे पर आई हुई बालों की लट को ऊपर करते हुए कहा, "यह घर भी कितना सूना-सूना लगता है, तुम शादी कर लो।"

"शादी तो मेरी हो चुकी, लच्छो, तुम जानती हो।"

"पर बेगम यहां रहतीं तो नहीं, क्या फायदा उस शादी का?"

मैंने कागज से नजर उठा कर देखा, वह जैसे मेरे हालात से काफी प्रभावित थी।

"अब देखो न, तुम इतने बीमार पड़े। कोई देखने-सुनने वाला न था। अगर तुम्हें कुछ हो जाता तो?"

"कुछ नहीं होने का! हम कहानी लिखने वाले बड़े बेहया होते हैं। फिर तुम जो थीं! कितना खयाल रखा है तुमने! तुम न होतीं तो शायद मैं अब तक मर-खप गया होता।"

उसने पलट कर कहा, "खुदा न करे....। तुम जुग-जुग जियो....!"

उसके पलट कर देखने में, उसके स्वर में, शब्दों में कोई रहस्य था, कोई राज था। यह साधारण मानवीय भावना से कुछ ऊपर की चीज थी। मगर मैं न समझ सका। हवा का एक तेज़ झोंका मुझे छूके गुजर गया। झकझोर न सका।

तीसरे दिन वह मेरे यहां आई और मेरी पुस्तकें सजाते हुए बोली, "जानते हो जी, लोग क्या बातें बनाते हैं... कहते हैं....कहते हैं..." वह रुक गई।

"क्या कहते हैं लोग?" मैं कहानी के शिखर-बिंदु पर पहुंच चुका था।

"कुछ नहीं जी, तुम नहीं समझोगे।"

"अच्छा," मैंने बेखयाली में कहा और कहानियों की दुनिया में खो गया।

फिर एक रोज संध्या के समय, जब दीये जल चुके थे और रिमझिम बारिश के कारण फजा सुहावनी हो रही थी, लच्छो रानी एक अत्यंत सुंदर साड़ी में सजी, चेहरे पर पाउडर लगाए, मस्त चाल चल कर मेरे सामने आ खड़ी हुई।

"क्या बात है, आज बहुत खुश नजर जा रही हो?"

"मैंने फैसला कर लिया है।"

"क्या फैसला कर लिया है?" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए कहा। आज लच्छो रानी मुझे अजनबी सी दिखाई दे रही थी।

"कुछ नहीं," उसने हड़बड़ा कर अपने आप को संभाला। "मैंने यह सोचा है कि आज से मैं आप के यहीं सोया भी करूं। दिन भर तो एक तरह से रहती ही हूं।"

"मगर यह कैसे हो सकता है, लच्छो रानी...?"

"क्यों, काहे नहीं हो सकता? मैं तुम्हारा खाना बना सकती हूं। झाड़ू दे सकती हूं।

बर्तन मांज सकती हूं। बिस्तर तक तो लगा सकती हूं तो फिर यह कैसे नहीं हो सकता?"

लच्छो का तर्क मेरी समझ से ऊपर था। फिर मैंने पलट कर उसके चेहरे की ओर देखा, तो उसका निश्चयात्मक रूप देख कर और भी दंग रह गया।

"मगर... मगर...।"

"मगर क्या ?" वह मेरी बौखलाहट का तमाशा, मुस्कुरा-मुस्कुरा कर देख रही थी। "नहीं भाई, मैं तो अब यहां से टलने वाली नहीं। कल सुबह तक सारा जरूरी सामान ले आऊंगी।"

"लेकिन कल मैं महीने भर के लिए बाहर जा रहा हूं...।"

"कोई बात नहीं!" वह मेरी बात बीच में काटते हुए बड़े संतोष से बोली, "तब तो यहां मेरा रहना और भी जरूरी है। आखिर घर की देख-भाल कौन करेगा तुम्हारे पीछे? जानते हो, आजकल कितनी चोरियां हो रही हैं?"

उचित यही समझा कि इस समय चुप रहूं। मैंने एक संदूक में जरूरी सामान रखा और चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"अरे, अभी से, जाओगे तो कल ही न?"

"नहीं, मुझे आज ही जाना पड़ेगा।" मैंने जेब से ताली निकाल कर उसके सामने फेंकते हुए कहा, "महीना भर बाद आऊंगा।"

इसके बाद मैं उस रात तो एक मित्र के पास ठहरा। दूसरे ही दिन शहर की दूसरी ओर, लगभग तीन मील के फासले पर, एक मकान किराये पर ले कर टिक गया।

बहुत दिन हो गए, संभवतः छह महीने बीत गए। लच्छो रानी अभी तक मेरे दिमाग पर कान-खजूरे की तरह कब्जा जमाए हुए थी। एक रोज मैं बजाज की दूकान के करीब से गुजर रहा था। एक खुली हुई फिटन से किसी ने आवाज दीं। पलट कर देखा जो फिटन में बुर्का पहने एक औरत बैठी हुई थी। मैं इधर-उधर देखने लगा, "मैं हूं गद्दी जी, लच्छो रानी..."

"लच्छो रानी!" एकाएक मेरा दिल धक् से रह गया। मुझे महसूस हुआ जैसे मेरी अपनी जिंदगी की गाड़ी खड्ड में गिर पड़ी हो। लच्छो ने नकाब उलट दी और खिलखिला कर हंसते हुए बोली, "डरो मत जी, मैंने शादी कर ली।"

"शादी कर ली, लच्छो!" मैंने कुछ शरम, कुछ तसल्ली और प्रसन्नता से कहा।

उसके चेहरे पर बड़ा गहरा मेकअप था। सुर्खी, पाऊडर, होठों पर गहरी लाल लिपस्टिक। उसके जिस्म से खुशबू फूट रही थी और खुशी से उसकी आंखें उबल रही थीं।

"खुश तो हो, लच्छो रानी?"

"बहुत," वह जैसे मेरे प्रश्न की प्रतीक्षा में थी। "मेरा पति मर्द है, बुजदिल नहीं; डरपोक

नहीं, इत्ती बड़ी छाती है उसकी, गद्दी जी, भगोड़ा नहीं!''

मुझे मालूम था, इन सारे तीरों का निशाना मैं ही था। मैंने बेहयाई से हंसते हुए कहा, ''हम कहानियां लिखने वाले बड़े बुजदिल, बड़े कमजोर होते हैं। लच्छो, तुम्हारी गाड़ी का पहिया तो...?''

''कहा न, बहुत मजबूत है...।'' उसने छूटते ही कहा और नकाब चेहरे पर उलट ली। ''वह आ रहे हैं, तुम जाओ।''

मैं गाड़ी से अलग हट गया। एक बजाज की दुकान से कपड़े का पैकिट लिए हुए लंबा-तगड़ा सुर्ख पठान झूमता-झामता फिटन की ओर आ रहा था।

रज्जो बाजी

काज़ी अब्दुस्सत्तार

सीतापुर में तहसील सिधौली अपनी झीलों और शिकारियों के लिए प्रसिद्ध थी। अब झीलों में धान बोया जाता है। बंदूकें बेच कर चक्कियां लगाई गई हैं। और लाइसेंस पर मिले कारतूस 'ब्लैक' कर के शेरवानियां बनाई जाती हैं। यहां छोटे-छोटे कस्बों का जजीरा सा फैला हुआ था, जिनमें शेख बसे हुए थे, जो गौरवशाली अतीत की याद में, नामों के आगे 'खां' लगाते थे और हर प्रकार के शिकार के लिए गुंडे, कुत्ते और शिकरे पालते थे। उनमें सारंगपुर के बड़े भैया, रक्खू चाचा और छोटे भैया, पाचू चाचा बहुत प्रसिद्ध थे। मैंने रक्खू चाचा का बुढ़ापा देखा है। उनकी सफेद भवों के नीचे सुरमई आंखों से चिंगारियां और कड़कती आवाज से लपटें निकलती थीं। रज्जो बाजी उसी रक्खू चाचा की इकलौती बेटी थीं। मैंने लड़कपन में रज्जो बाजी के हुस्न और दहेज की कहानियां सुनी थीं, जिसे उनकी दो संपन्न माताएं जोड़-जोड़ कर मर गई थीं। शादी-ब्याह की महफिलों में मीरासनें इतने लगाव से उनका जिक्र करतीं कि टेढ़े-नीचे लोग भी उसकी ड्योढ़ी पर मंडराने लगते। जब रज्जो बाजी की मां मर गई और रक्खू चाचा पर फालिज गिरा तो उन्होंने मजबूर होकर, एक रिश्ता स्वीकार कर लिया। पर रज्जो बाजी पर मंगनी वाले दिन प्रेतात्माएं आ गईं और रज्जो बाजी की ड्योढ़ी से रिश्तों के 'काग' सदा के लिए उड़ गए। जब रक्खू चाचा की मृत्यु हो गई तो पाचू चाचा उनके साथ सारे भारत की दरगाहों में फिरते रहे, परंतु प्रेतात्माओं को न जाना था, न गईं। फिर रज्जो बाजी की उम्र ऐसा पैमाना बन गई, जिसके पास पहुंचने के डर से सूखी हुई कुंवारियां कांप उठतीं। जब भी रज्जो बाजी की बात चलती, मेरे वजूद में एक टूटा हुआ कांटा चुभने लगता और मैं अपनी यादों के कारवां को किसी झूठ-मूठ की व्यस्तता के मरुस्थल में धकेल देता। इन्हीं दिनों रज्जो बाजी का रजिस्टरी लिफाफा मिला तो मैं ऐसा परेशान हुआ कि खत फाड़ दिया। लिखा था कि मैं हज करने जा रही हूं और मैं तत्काल सारंगपुर पहुंच जाऊं, लेकिन इस तरह जैसे कि मैं उनसे नहीं पाचू चाचा से मिलने आया हूं और यह भी लिखा था कि मैं पत्र पढ़ कर उसी समय जला

दूं। मैंने रज्जो बाजी की एक आज्ञा फौरन पूरी कर दी। खत के शोलों के उस पार, एक दिन चमक रहा था। पंद्रह वर्ष पूर्व का एक दिन, जब मैं बी. ए. में पढ़ता था और मोहर्रम के लिए घर आया हुआ था।

मोहर्रम की कोई तिथि थी और सारंगपुर का सिपाही सामाचार लाया था कि दूसरे दिन मेरख स्टेशन पर शाम की गाड़ी से सवारियां उतरेंगी। हमारी बस्ती के मोहर्रम सारे जिले में प्रसिद्ध थे और यह प्रसिद्ध मोहर्रम हमारे घर से संबंधित थे और दूर-दूर से सगे-संबंधी मोहर्रम देखने आया करते थे। और हमारा घर शादी वाले घरों की तरह चहकने लगता था। इस समाचार ने मेरे वजूद में अनेक दीये जला दिये। मैं रज्जो बाजी को, जिनकी कहानियों से मेरी कल्पना आबाद थी, पहली बार देखने वाला था। ईद की चांद-रात की भांति वह रात बड़ी मुश्किल से गुजरी और सुबह होते ही मैं प्रबंध आदि में व्यस्त हो गया। छोटे-छोटे 'अद्धे' जिन्हें 'फिरक' और 'लहड़ू' भी कहते हैं, संवारे गए। बैल साबुन से नहलाए गए। उन्हीं नयी अंधेरियां, संगोटियां और हमेलें पहनाई गईं। जड़ाऊ झोले और परदे निकाले गए। घोड़े के अयाल तराशे गए। काठी पर पालिश की गई और काली इतलस का फट्टा बांधा गया, जो उनके जिस्म पर फूट निकला। साथ जाने वाले आदमियों में अपनी नयी कमीजें बांट दीं और जेब-खर्च से धोतियां खरीद दीं और दोपहर ही से कलफ लगी बिरजिस पर लंबे बूट पहन कर तैयार हो गया और दो बजते-बजते सवार हो गया, जब कि छह मील का रास्ता मेरे घोड़े के लिए चालीस मिनट से किसी तरह ज्यादा न था। स्टेशन-मास्टर को, जो हमारे उपहारों के बोझ-तले दबा रहता था, सूचना दी कि हमारे खास मेहमान आने वाले हैं और मुसाफिरखाने के पूरे कमरे पर कब्जा जमा लिया। गाड़ी समय पर आई, लेकिन ऐसी खुशी हुई, जैसे कई दिन की प्रतीक्षा के बाद आई हो। फर्स्ट क्लास के दरवाजे पर सारंगपुर का मोनोग्राम लगाए, एक बूढ़ा सिपाही खड़ा था। डिब्बे से मुसाफिरखाने तक कनातें लगा दी गईं। आगे-आगे बुआजी थीं। एक रिश्ते से रक्खू चाचा हमारे चाचा थे और दूसरे रिश्ते से उनकी बीवी हमारी बुआ थीं। उनके पीछे रज्जो बाजी और उनके पीछे स्त्रियां थरमस और पानदान और छोटे-छोटे संदूक उठाए आ रही थीं। चाय का प्रबंध था, लेकिन बुआजी ने तेजी से बलायें लेकर इंकार कर दिया और फौरन उस अद्धे पर सवार हो गईं, जो ताबूत की तरह परदों से ढका हुआ था। रज्जो बाजी भी उसमें डूब गईं, जिनके हाथ काले बुर्के में शोलों की तरह तड़प रहे थे। दूसरे अद्धों में स्त्रियों को सामान के साथ चढ़ा दिया गया। खटना देस के काले बैलों पर मेरा छोटा सा अद्धा उड़ रहा था और मैं, बुआ के अद्धे के पहलू में छल-बल दिखाते हुए घोड़े पर भाग रहा था। मैं, जो कभी हवाई बंदूक हाथ में लेकर न चला था, आज बारह बोर की बंदूक, इस उम्मीद में लादे हुए था कि अगर उड़ता हुआ मोर गिरा लिया, तो रज्जो बाजी जरूर प्रभावित हो जाएंगी। कच्ची सड़क के

दोनों ओर फैले हुए धुंधलके जंगल पर मेरी नजरें मंडरा रही थीं और मैं दुआ मांग रहा था कि किसी झाड़ी से कोई मोर उठे और मैं शिकार कर लूं कि बुआजी का अद्धा रुक गया। मैं घोड़ा पुचकार कर पास पहुंचा। आज से ज्यादा कभी इस जानवर के नखरे भले न लगे थे!

"मेरा तो इस ताबूत में दम घुटा जा रहा है।"

रज्जो बाजी की आवाज थी, जाड़ों की सुबह की तरह साफ और चमकदार!

"तो आप मेरे अद्धे पर आ जाइए।"

"मगर इस पर परदा कहां है?"

"मैं अभी बंधवाता हूं।"

परदा बंध रहा था कि बुआजी ने हुक्म दिया, "किसी बूढ़े आदमी से कहो कि इनका अद्धा हांके और किसी औरत को बिठा दो।"

"अद्धा तो मैं खुद हांकूंगा।"

"अरे तू—अद्धा हांकेगा!"

उन्होंने छोटा सा कहकहा लगाया और मैं घोड़े से फांद पड़ा। साथ ही किसी सिपाही ने मेरी पुष्टि की—"ऐसा-वैसा हांकत हैं भैया, बैलन की जान निकाल लेत हैं।"

चादरों और साफों का परदा बांध दिया गया। रज्जो बाजी सवार हुईं और बोलीं, "इस पर इतनी जगह कहां हैं कि बुआजी भी धांस ली जाएं!"

इस से पहले कि बुआ अपने अद्धे से उतरें, मैंने बैल जुड़वा दिए और पैंठ लेकर जूआ पर बैठ गया ओर आगे बढ़ने का इशारा किया। बुआजी ने कुछ कहा, लेकिन पांच जोड़ी बैलों के घने घुंघरुओं की झनकार में उनकी बात डूब गई। जब होश-हवास कुछ ठीक हुए और दिमाग ने कुछ सोचना स्वीकार किया, तो जैसे रज्जो बाजी ने अपने आप से कहा—"अम्मी के अद्धे की सारी धूल हमें ही फांकना है!"

मैंने तुरंत लीक बदल ली। आदमी ने रासें खींच कर मुझे निकल जाने दिया। जालिम बैलों को दोबारा लीक पर लाने कि लिए मैंने एक के पैंठ और दूसरे के ठोकर मार दी और मेरी आर उनकी रान में चुभ गई। वह तड़फा और काबू से निकल गया और अचानक रज्जो बाजी के हाथ मेरी कमर के गिर्द आ गए और मेरा बायां कंधा उनके चेहरे के स्पर्श से सुलग रहा था और अंगों में फुलझड़ियां छूट रही थीं।

"रोको!"

उन्होंने पहली बार मुझे हुक्म दिया। मैंने सीने तक रासें खींच लीं। बैल दुलकी चलने लगे। मैंने झांक कर देखा। सांप की तरह रेंगती हुई सड़क पर दूर तक वृक्षों के संतरी खड़े थे और सिपाही मेरे घोड़े पर सवार साये की भांति मेरे पीछे लगा था। रज्जो बाजी

ने बुर्के का ऊपरी हिस्सा उतार दिया और वह सुर्ख बाल जिन पर उनकी सुंदरता की प्रसिद्धि निर्भर थी, चेहरे के गिर्द पड़े दहक रहे थे और वह एक ओर का परदा उठा कर जंगल की बहार देख रही थीं। उनके हाथों की कातिल गिरफ्त ने एक बार फिर मेरे चुटकी ली और मैंने बैलों को छेड़ दिया। और एक बार फिर उनके सफेद, नरम रेशमी हाथ मेरी कमर को नसीब हो गए। लेकिन अब वह मुझे डांट रही थीं और मैं बैलों को फटकार रहा था और उनका सिर मेरी पीठ पर रखा था और मैं उड़ती हुई रेशमी लपटों को देख सकता था। फिर वह बाग नजर आने लगे जिनके साये से आबादी शुरू हो जाती है। मेरे घर का इतना लंबा रास्ता कभी इतनी जल्दी खत्म नहीं हुआ, न इतना आकर्षक मालूम हुआ। मैंने अद्धा रोका, परदा बराबर किया। सिपाही को जूआ पर बिठा कर खुद घोड़े पर सवार हुआ। बस्ती में बैल हांकते हुए प्रविष्ट होना शोभा नहीं देता था। रज्जो बाजी मुझे देख रही थीं और मुस्कुरा रही थीं। जब वह उतर कर ड्योढ़ी में प्रविष्ट हुईं तो मैंने उन्हें पहली बार सिर से पांवों तक देखा और उनकी सुंदरता के सामने मीरासनो की सारी कहानियां सच्ची प्रतीत हुईं। वह मुझ से कुछ दिन बड़ी थीं, परंतु जब उन्होंने पीठ पर सिर रखा और ठनक कर कहा कि घर पहुंच कर अपनी भाभी और मेरी अम्मा से मरम्मत कराएंगी, तो वह मुझे बहुत छोटी सी मालूम हुईं, जैसे मैंने उनकी गुड़ियां नोंच कर फेंक दी हो और वह मुझे धमकियां दे रही हों।

मैं मोहर्रम में सारा-सारा दिन और आधी-आधी रात बाहर बिताया करता था। इस साल बाहर जाने का नाम न लेता था और बहाने ढूंढ़-ढूढ़ कर अंदर मंडराया करता था। नौवीं की रात साल भर में एकमात्र रात होती थी, जब हमारे घर की बीबियां बस्ती में जियारत को निकलती थीं। पूरी व्यवस्था की जाती कि वे पहचानी न जाएं। बुर्के की बजाय वे मोटी-मोटी चादरें ओढ़ कर निकलती थीं। लेकिन दूर चलते सिपाहियों को देख कर लोग जान जाते थे और औरतें तक रास्ता छोड़ देती थीं। जब रात ढलने लगी और सब लोग सूती चादरें ओढ़ कर, यानी भेस बदल कर जाने को तैयार हुए, तो पता चला कि रज्जो बाजी सो गई हैं। किसी ने जगाया तो मालूम हुआ कि सिर में दर्द है और मैं उठ कर बाहर चला आया। जब बीबियों के पीछे चलते हुए सिपाहियों की लाठियां और लालटेनें फाटक से निकलने वाली सड़क पर खो गईं, तब मैं अंदर आया। वह दालान में काली कामदानी के दोपट्टे का पल्लू सिर पर डाले सो रही थीं। एक औरत पंखा झल रही थी और दूसरी उनकी पांयती पड़े खटोले पर बैठी ऊंघ रही थी। मैंने उनकी सफेद कलाई पर मीठी सी चुटकी ली। उन्होंने मुंह खोल दिया।

"चलिए, आपको ताजिये दिखा लाऊं।"

वह उठ कर बैठ गईं। मैंने उनका हाथ पकड़ लिया, जिसे उन्होंने औरतों को देख

कर, जल्दी से छुड़ा लिया और खड़ी हो गईं।

"मेरे सिर में दर्द हो रहा है।"

"जियारत की बरकत से ठीक हो जाएगा।" मैंने बड़ी भावुकता से कहा। उन्होंने कपड़ों पर नजर डाली।

"अगर इनसे खराब कपड़े आप के पास हों तो पहन लीजिए।" और मैंने उनके पलंग से चिकन की चादर उठा कर, उनके कंधों पर डाल दी।

अपने ताजिये के पास बैठी हुई भीड़ से कुछ पासी चुने। उनको बंदूक और टार्च लेने का निर्देश दिया और रज्जो बाजी को लिए हुए सड़क पर आ गया। मुझे बीबियों के रास्ते मालूम थे, जो मोहर्रम के जुलूस की भांति निर्धारित थे और मैं विरोधी दिशा में चल रहा था। कटा हुआ चांद, तिहाई आकाश पर चमक रहा था और हम बस्ती के बाहर निकल आए थे और मैं खुद अपनी योजना से कांप रहा था। फिर वह ताल आ गया, जिसके पास टीले पर मंदिर खड़ा था और सामने इमलियों के दायरे में लखौरी ईंटों का कुआं था। मैंने अपने रूमाल से पक्की मुंडेर साफ की। नवयुवक पासियों को हुक्म दिया कि वे मंदिर के अंदर जाकर बैठ जाएं। अब नजर की सीमा-रेखा तक चमकते पानी और आबादी की धुंधली रेखाओं के अलावा कुछ न था। हमारे चारों ओर इमली के वृक्षों की धनी छाया पहरा दे रही थी। मैंने अपना गला साफ किया। उनके पास बैठ कर पहली बार उनको संबोधित किया—

"यह कुआं देख रही हैं आप?" मुझे खुद अपनी आवाज भयानक प्रतीत हुई।

"यह जिन्नों का कुआं है।"

उन्होंने शरबती आंखों को कानों तक खोल दिया और मेरी ओर जरा सा सरक आईं।

"इसमें जिन्न रहते हैं।" वह मेरे और निकट आ गईं। उनका घुटना मेरे जिस्म से छूने लगा। मैं भाटों की तरह भावहीन स्वर में कह रहा था—"ये जिन्न मेरे एक दादा के शिष्य थे। जब दादा मियां इस कुएं में डूब कर मर गए, तो जिन्नों ने यहां अपना बसेरा कर लिया।" उन्होंने मेरे मुंह पर हाथ रख दिया। चादर उनके कंधों से ढलक गई। घुटी-घुटी आवाज में बड़ी संवेदना से बोलीं, "चलो.... यहां से भाग चलो।"

उनका सिर मेरे कंधे पर लुढ़क आया और मैंने सुर्ख बालों की रेशमी लपटों में अपने हाथ जला लिए, जिनके दाग आज भी त्वचा के नीचे सुरक्षित हैं।

"मोहर्रम की इस रात के अंतिम भाग में जो व्यक्ति इस कुएं से अपने दिल की एक मुराद मांगता है, वह पूरी होती है।"

वह मुझे मजबूजी से पकड़े हुए थीं और मैं उस संसार में था जिसकी प्रथम बार, मेरी चेतना ने खोज की थी।

"आप थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए। मैं एक दुआ मांग लूं... आज के बाद फिर कभी उस कुएं से कोई दुआ न मांगूंगा।"

वह तड़प कर उठीं और मुझे लगभग घसीटती हुई चलीं। जब पासी खड़े हो गए, तब वह मुझ से अलग हुईं। सड़क पर आकर मचल गईं कि घर जाऊंगी, पर मैं उनको बहलाता हुआ इमामबाड़े की ओर चल दिया। यह इमामबाड़ा नवाब नकी की उस बहन ने बनवाया था, जो वाजिदशाह की महल थी। आज भी उसकी संतान मौजूद है, जो इमामबाड़े वालियों के नाम से जानी जाती है। यह इमारत उन्हीं के अधीन है। यहां पावन करबला से लाई हुई जरीह (पावन ताबूत) रखी है। स्त्रियां अपने बालों की एक लट बांध कर मुराद मांगती हैं। जब मुराद पूरी हो जाती है, तो अपनी लट खोल कर ले जाती हैं। एक पासी ने दौड़ कर इमामबाड़ा पुरुषों से खाली करा दिया। फाटक में स्त्रियों की भीड़ लगी थी। बस्ती के इतिहास में यह पहली बार हुआ था कि मेरे घर का कोई सदस्य किसी स्त्री के साथ मोहर्रम देखने निकला हो, दर्शन करने निकला हो। दालान के पास आकर एक अल्हड़ सी लड़की मेरे जूते खोलने आई। मैंने रज्जो बाजी की ओर इशारा कर दिया। वह उनके सैंडल खोलने लगी। जब मैं हाल में प्रविष्ट होने लगा, जिसमें सोने का पानी-चढ़ी जरीह रखी है, तो वह लड़की भागती हुई आई और बोली, "बिटिया साहब कह रही हैं कि आप बाहर ही रहें।" और मैं बाहर ही खड़ा रहा। जब मैं उनके साथ इमामबाड़े से निकल रहा था तो अनगिनत पुरुष मुझे कनखियों से घूर रहे थे। औरतें घूंघट से झांक रही थीं। और मेरे अंगों की कमान खिंची हुई थी कि एक औरत ने दूसरी औरत से पूछा, "कौन है?"

"बड़े भैया की दुल्हिन हैं।"

और मैं लड़खड़ा गया। रज्जो बाजी के सिर से चादर का झोंपा ढलक गया। जब सड़क उजाड़ हो गई, तो मैंने देखा रज्जो बाजी का चेहरा लंबी-चौड़ी मुस्कुराहट से प्रज्ज्वलित है। मैं उनके बिलकुल निकट हो गया।

"आप बहुत खुश हैं?"

"ऊं...हां...न मांगते देर, न मिलते देर।"

और मैं इस वाक्य के अर्थ सोचता रहा।

हमारे भाग्य में ऐसी रात न लिखी थी, जो उनकी निकटता से महक सकती। एक-आध बार उनकी सूरत देखने को मिली थी, तो इस तरह जैसे कोई चांद देख ले। और जब मैं सारंगपुर की ड्योढ़ी पर इक्के से उतरा, तो देर तक किसी आदमी की तलाश में खड़ा रहा। दिन-दहाड़े वहां ऐसा सन्नाटा था, जैसे इस शानदार लेकिन जर्जर भवन में आदमियों के बजाय आत्माएं रहती हों। मैं दोहरी ड्योढ़ी के भीतर दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया और

आवाज दी।

"मैं अंदर आ जाऊं?"

"आप कौन हैं?" एक बूढ़ी फटी आवाज ने पूछा।

"मैं चतरहट्टा का अज्जन हूं।"

"अरे...आइए.. भैया, आ जाइए।"

भारी पक्के सहन पर मेरे जूते गूंज रहे थे। बारह दरों के दोहरे दालान की स्पेनी मेहराबों के पीछे लंबे-लंबे कमरों के ऊंचे-ऊंचे दरवाजे खुले थे और दूसरी ओर की इमारत नजर आ रही थी। कमरे में कदम रखते ही मैं चौंक पड़ा, जैसे डर गया था। दूर तक फैले सफेद चौके पर सफेद कपड़े पहने रज्जो बाजी खड़ी थीं। चुना हुआ सफेद दोपट्टा उनके कंधों पर पड़ा था और भूरे-सफेद बाल उनकी पीठ पर ढेर थे। वह गर्दन घुमाए मुझे देख रही थीं। उतरी संध्या की धुंधली रोशनी में उनके पीले चेहरे पर पड़े काले बल साफ नजर आ रहे थे। वह कानों में बेले के फूल और हाथों में केवल गजरे पहने थीं। मैं उनकी नजर की वीरानी से कांप उठा। हम हम-दूसरे को देख रहे थे। देखते रहे। सदियां बीत गईं। किसी में न पलक झपकने की शक्ति थी, न जुबान खोलने का साहस। फिर जैसे वह अपनी आवाज का सहारा लेकर तख्त पर ढह गईं।

"तुम ऐसे हो गए... अज्जन?"

"बैठ जाओ।"

मैं चौके के कोने पर टिक गया।

"मुझे इस तरह क्या देख रहे हो? मुझ पर जो बीती, वह अगर पत्थरों पर बीतती, तो चूर-चूर हो जाते। लेकिन तुम को क्या हो गया? कैसे दुबले-पतले, काले से हो गए हो! नौकर हो न... अच्छी-भली तनख्वाह पाते हो। जाहिदा जैसी बीवी है। फूल से बच्चे हैं। न कर्ज है, न मुकदमेबाजी। तुम बोलते क्यों नहीं? क्या चुप का रोजा रख लिया?"

मैंने दिल में सोचा, जिन्नों का साया है इन पर!

"आप ने पंद्रह वर्ष के बाद रोजा तोड़ने को कहा भी तो उस समय, जब कि जुबान जायका भूल चुकी है और पेट स्वीकार करने की क्षमता खो चुका।"

उन्होंने मुझे इस तरह देखा, जैसे मेरे सिर पर सींग निकल आए हों। वह बूढ़ी औरत मेरे सूटकेस के नीचे कुचली हुई आ रही थी। फिर पाचू चाचा आ गए। दुबले-पतले, गम के मारे से पाचू चाचा, जिनके शिकार की एक जमाने में धूम थी।

रात का खाना खाकर देर तक बातें होती रहीं। जब रज्जो बाजी उठ गईं, तो चाची जी ने धीरे से कान में कहा, "आज नौचंदी जुमेरात है। बिटिया पर जिन्न का साया है। वह आने वाले हैं। तुम्हारा बिस्तर अपनी तरफ लगवाया था, लेकिन बिटिया ने

उठवा लिया। अगर डर लगे, तो आवाज दे देना या चले आना। बीच का दरवाजा खुला रहता है।''

जुमेरात का नाम सुन कर मेरे रोंगटे खड़े हो गए, मगर खामोश रहा। उनके हाथ से गिलौरियां लेकर मुंह में दबाईं और खड़ा हो गया। चाची अपने सबसे छोटे बच्चे को थपकती रहीं। पाचू चाचा मुझे छोड़ने आए। दालान में दो बिस्तर लगे थे। उनके बीच एक खटोला पड़ा था, जिस पर रज्जो बाजी की बुआ ढेर थीं। पाचू चाचा मुझे सहन में छोड़ कर लालटेन लिए हुए चले गए। एक काला झबरा सा कुत्ता एक ओर से निकला और मुझे सूंघता हुआ चला गया। फिर एक दरवाजे से रज्जो बाजी निकलीं और सारे दालान में मुश्क की खुश्बू फैल गई। उनके कपड़े नये और फूल ताजा थे। वह बहुत व्यस्त मालूम हो रही थीं। बत्तखों के झुंड आकाश पर शोर मचाते गुजर रहे थे। सहन में अक्तूबर की चांदनी का फर्श था। बरसाती में पुरानी कुर्सियों पर बैठे हम ठंडी सफेद, गाढ़ी काफी पी रहे थे और बातचीत के लिए शब्द पकड़ने की कोशिश कर रहे थे।

''यह जिन्नों का क्या किस्सा है, रज्जो बाजी?''

मुझे अपनी आवाज पर हैरानी हुई। मैंने यह गोली किस तरह दाग दी थी! उन्होंने प्याली रख दी। मुस्कुराईं। वह मुस्कुराहट उम्र भर के गमों से अधिक की मारी थी।

''मैंने तुम्हें इसीलिए बुलाया है।''

''काश, आप ने इस से पहले बुला लिया होता!''

''ब्याह की तरह बेहयाई की भी एक उमर होती है, अज्जन... दस साल पहले क्या यह मुमकिन था कि तुम इस तरह खुले-खजाने आधी रात को मुझ से बातें कर रहे होते? आज तुम घर-बार वाले हो। मैं खूसट हो गई हूं और चाचीजी की रसोई मेरी जायदाद से चल रही है—खैर, छोड़ो इन बातों को। मैं हज करने जा रही हूं और हज करने वाले, हर उस व्यक्ति से क्षमा मांगते हैं जिसके साथ उन्होंने कोई ज्यादती की हो। तुमको मालूम है, मुझे पर जिन्न कब आए? आज से दस साल पहले। और तुम्हें पता है, तुम्हारी शादी को कितने साल हुए? दस साल! तुम्हें इन दोनों बातों में कोई संबंध नहीं दिखता? तुमने चतरहट्टा के सफर में क्या किया? तुम मोहर्रम की नौवीं को मुझे कहां-कहां घसीटते फिरे? तुम उस भयानक कुएं से मेरे सामने क्या मांगना चाहते थे? तुमने अब्बासी अलम को चूम कर मुझे कनखियों से देखते हुए किसे पाने की इच्छा की थी? जाओ, अपने इमामबाड़े की जरीह को ध्यान से देखो। मेरे बालों की भूरी लट आज भी बंधी नजर आएगी, अगर वह खिचड़ी न हो गई हो! क्या मैंने इमाम हुसैन से सिर्फ एक अदद शौहर मांगने के लिए यह जतन किए थे?

''सारंगपुर की नावटों और मीरासनों से पूछो कि वह रिश्ते लाते-लाते थक गईं, लेकिन

मैं इंकार करते न थकी। क्या तुम मुझ से यह चाहते थे कि मैं सारंगपुर से सत्तू बांध कर चलूं और चतरहट्टा की ड्योढ़ी पर धूनी रमा कर बैठ जाऊं और जब तुम बाहर निकलो तो अपना पल्लू फैला कर कहूं कि हुजूर मुझे अपने निकाह में कबूल कर लें कि जिंदगी सार्थक हो जाए। तुमने रक्खू मियां की बेटी से वह बात चाही, जो रक्खू मियां की वेश्याओं से भी मुमकिन न थी।"

"लेकिन, रज्जो बाजी...!"

"मुझे पर जिन्न नहीं आते हैं, अज्जन मियां! मैं जिन्नों को खुद बुलाती हूं। अगर जिन्न न आते, तो कोई दूल्हा आ चुका होता और तब अगर जिन्नों का कुआं, अब्बासी अलम और जरीह मुबारक—तीनों मेरे दामन को एक मुराद से भर देने की ख्वाहिश करते तो मैं क्या करती? किस मुंह से क्या कहती? इसलिए मैंने यह खेल खेला था। उसी तरह जिस तरह चतरहट्टा में तुम मुझ से खेल रहे थे। न उसमें तुम्हारे लिए कोई हकीकत थी और न इसमें रज्जो के लिए सच्चाई है। यह हज मैं अपने बाप के लिए करने जा रही हूं, जो मेरे बोझ से कुचल कर मर गए। जिन्होंने मरते वक्त भी अपने परलोक के लिए नहीं, मेरी दुनिया के लिए दुआ मांगी। इसलिए मैंने तुम्हें माफ किया। तुम अगर जाहिदा को मुझ पर, सौत बना कर ले आते, तो भी माफ कर देती।"

वह बांस के वृक्ष की भांति कांप रही थीं। उनका चेहरा दोनों हाथों से छिपा हुआ था। दोरंगी शाल कंधों से ढलक गई थी। भूरे बालों में बराबर से पिरोये हुए चांदी के तार जगमगा रहे थे और मुझे महसूस हो रहा था, जैसे जिंदगी व्यर्थ चली गई। जैसे मेरी बीवी ने मुझे सूचना दी हो कि मेरे बच्चे, मेरे बच्चे नहीं हैं!

कारमन

कुर्रतुल-एन हैदर

रात के ग्यारह बजे टैक्सी शहर की खामोश सड़कों पर से गुजरती एक पुराने किस्म के फाटक के सामने जाकर रुकी। ड्राइवर ने दरवाजा खोल कर बड़ी बेरुखी के साथ मेरा सूटकेस उतार कर फुटपाथ पर रखा और पैसों के लिए हाथ फैलाए तो मुझे जरा अजीब सा लगा।

"यही जगह है?" मैंने जरा संदेह से पूछा।

"जी हां।" उसने सहजता से उत्तर दिया। मैं नीचे उतरी। टैक्सी गली के अंधेरे में विलीन हो गई और मैं सुनसान फुटपाथ पर खड़ी रह गई। मैंने फाटक खोलने की कोशिश की, मगर वह अंदर से बंद था। तब मैंने बड़े दरवाजे में जो खिड़की थी, उसे खटखटाया। कुछ देर बाद खिड़की खुली। मैंने चोरों की तरह अंदर झांका। अंदर नीम-अंधेरा आंगन था, जिसके एक कोने में दो लड़कियां रात के कपड़े पहने धीरे-धीरे बातें कर रही थीं। आंगन के सिरे पर एक छोटी सी टूटी-फूटी इमारत खड़ी थी। मुझे क्षण भर के लिए घसियारी मंडी, लखनऊ का स्कूल स्मरण हो आया, जहां से मैंने बनारस विश्वविद्यालय का मैट्रिक पास किया था। मैंने पलट कर गली की तरफ देखा, जहां पूर्णतः अंधेरा छाया हुआ था। फर्ज कीजिए—मैंने अपने आप से कहा कि यह जगह अफीमचियों, दलालों और तस्करों का अड्डा निकली तो..? मैं एक अजनबी देश के, अजनबी शहर में रात के ग्यारह बजे एक गुमनाम इमारत का दरवाजा खटखटा रही थी जो घसियारी मंडी के स्कूल से मिलती-जुलती थी।

एक लड़की खिड़की की ओर आई।

"गुड ईवनिंग ! यह वाई. डब्ल्यू. सी.ए. है न?" मैंने जरा नम्रता से मुस्कुरा कर पूछा। "मैंने तार दिलवाया था कि मेरे लिए एक कमरा रिजर्व कर दिया जाए।" मगर कितनी बोर, खस्ताहाल वाई.डब्ल्यू.सी.ए. है यह ! मैंने दिल में सोचा।

"हमें आपका तार नहीं मिला और अफसोस है कि सारे कमरे घिरे हुए हैं।"

अब दूसरी लड़की आगे बढ़ी—"यह गर्ल्स होस्टल है। यहां आम तौर से मुसाफिरों

को नहीं ठहराया जाता।" उसने कहा।

मैं सहसा बेहद घबरा गई। अब क्या होगा? मैं इस समय यहां से कहां जाऊंगी? दूसरी लड़की मेरी परेशानी देख कर शालीनता से मुस्कुराई।

"कोई बात नहीं। घबराओ मत, अंदर आ जाओ। लो, इधर से कूद आओ।"

"मगर कमरा तो खाली नहीं है," मैंने संकोच से कहा, "मेरे लिए जगह कहां होगी?"

"हां, हां, कोई बात नहीं। हम जगह बना देंगे। अब इस समय, आधी रात को तुम कहां जा सकती हो?" उसी लड़की ने उत्तर दिया। मैं सूटकेस उठा कर खिड़की से अंदर आंगन में कूद गई। लड़की ने सूटकेस मुझ से ले लिया। इमारत की ओर जाते हुए मैंने जल्दी-जल्दी कहा, "बस, आज की रात मुझे ठहर जाने दो। कल सुबह मैं अपने दोस्तों को फोन कर दूंगी। मैं यहां तीन-चार लोगों को जानती हूं। तुम्हें बिलकुल कष्ट नहीं होगा।"

"चिंता मत करो," उसने कहा। पहली लड़की 'गुडनाइट' कह कर गायब हो गई।

हम सीढ़ियां चढ़ कर बरामदे में पहुंचे। बरामदे के एक कोने में लकड़ी की दीवारें बना कर, एक कमरा सा बना दिया गया था। लड़की लाल फूलों वाला मोटा परदा उठा कर अंदर प्रविष्ट हुई। मैं उसके पीछे-पीछे गई। "यहां मैं रहती हूं। तुम भी यहीं सो जाओ।" उसने सूटकेस एक कुर्सी पर रख दिया और अलमारी में से साफ तौलिया और नया साबुन निकालने लगी। एक कोने में छोटे से पलंग पर मच्छरदानी लगी थी। बराबर में शृंगार-मेज रखी थी और किताबों की अलमारी—जैसे कमरे सारे संसार में लड़कियों के होस्टलों में होते हैं। लड़की ने फौरन दूसरी अलमारी में से चादर और कंबल निकाल कर फर्श के घिसे हुए बदरंग कालीन पर बिस्तर बिछा दिया और पलंग पर नई चादर बिछा कर मच्छरदानी के परदे गिरा दिए।

"लो, तुम्हारा बिस्तर तैयार है।"

मुझे बेहद लज्जा आई "सुनो, मैं फर्श पर सो जाऊंगी।"

"बिलकुल नहीं। इतने मच्छर काटेंगे कि हालत खराब हो जाएगी। हम लोग तो इन मच्छरों के आदी हैं। कपड़े बदल लो।" इतना कह कर वह बड़े आराम से फर्श पर बैठ गई। "मेरा नाम कारमन है। मैं एक दफ्तर में काम करती हूं और शाम को यूनिवर्सिटी में रिसर्च करती हूं। कैमिस्ट्री मेरा विषय है। मैं वाई.डब्ल्यू.सी.ए. की सोशल सेक्रेट्री भी हूं। अब तुम अपने बारे में बताओ।"

मैंने बताया।

"अब सो जाओ।" मुझे ऊंघते देख कर उसने कहा। फिर उसने दोनों घुटने टेक कर और झुक कर दुआ मांगी और फर्श पर लेट कर सो गई। सुबह-सवेरे इमारत जागी। लड़कियां सिरों पर तौलिये लपेटे और हाऊस-कोट पहने गुसलखानों से निकल रही थीं। बरामदे में

से गर्म कहवे की खुशबू आ रही थी। दो-तीन लड़कियां बरामदे में टहलते हुए दांतों पर ब्रुश कर रही थीं।

"चलो, तुम्हें गुसलखाना दिखा दूं।" कारमन ने मुझ से कहा और हाल से गुजर कर, एक गलियारे में ले गई, जिसके सिरे पर एक टूटी-फूटी कोठरी थी, जिसमें सिर्फ एक नल लगा था और दीवार पर एक खूंटी गड़ी थी। उसका फर्श उखड़ा हुआ था और दीवारों पर सीलन थी। रोशनदान के उधर से किसी लड़की के गाने की आवाज आ रही थी। उस गुसलखाने के अंदर खड़े होकर मैंने सोचा, 'कैसी अजीब बात है—एक लंबे समय से यह गुसलखाना इस देश के, इस शहर में, इस इमारत में अपनी जगह पर मौजूद है और मेरे वजूद से बिलकुल बेखबर—और आज मैं इसमें मौजूद हूं'—कैसा मूर्खता का विचार था!

जब मैं नहा कर बाहर निकली तो नीम-अंधेरे हाल में एक छोटी सी मेज पर मेरे लिए नाश्ता लग चुका था। कई लड़कियां जमा हो गई थीं। कारमन ने उन सब से मेरा परिचय कराया। शीघ्र ही हम सब पुराने दोस्तों की तरह कहकहे लगा रहे थे—"अब मैं जरा अपने जानने वालों को फोन कर दूं।" चाय खत्म करने के बाद मैंने कहा।

कारमन शरारत से मुस्कुराई। "हां, अब तुम अपने बड़े-बड़े विख्यात और विशेष दोस्तों को फोन कर दो और उनके वहां चली जाओ। तुम्हारी परवाह कौन करता है—क्यों रोजा?...हम इसकी परवाह करते हैं?"

"बिलकुल नहीं।" कोरस हुआ।

लड़कियां मेज पर से उठीं। "हम लोग अपने-अपने काम पर जा रहे हैं। शाम को तुमसे मुलाकात होगी।" मैगलदीलीना ने कहा।

"शाम को...?" ऐमीलिया ने कहा, "शाम को यह किसी कंट्री क्लब में बैठी होगी।"

कारमन के दफ्तर जाने के बाद, मैंने बरामदे में जाकर फोन करने शुरू किए।

सेना के मेडिकल चीफ, मेजर-जनरल कैमोगिल्डास जो युद्ध के जमाने में मेरे मामा के साथी रह चुके थे। मिसिज अंतोनिया कोस्टेलो—एक करोड़पति व्यापारी की बीवी, जो यहां की प्रसिद्ध सामाजिक नेता थीं और जिनसे मैं किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मिली थी।

अनफांसो वलेरा—उस देश का विख्यात उपन्यासकार और पत्रकार जो एक बार कराची आया था—"हैलो...हैलो—अरे तुम कब आईं? हमें खबर क्यों नहीं दी? कहां ठहरी हो...? वहां...गुड गाड...वह कोई ठहरने की जगह है ! हम तत्काल तुम्हें लेने आ रहे हैं।" उन सबने बारी-बारी मुझसे यही शब्द दोहराए।

सब से अंत में, मैंने डान गारसिया डील प्रेडोस को फोन किया। यह पश्चिम यूरोप के एक देश में, अपने देश के राजदूत रह चुके थे और वहीं उनसे और उनकी बीवी से

मेरी अच्छी-खासी दोस्ती हो गई थी। उनकी सेक्रेट्री ने बताया कि वे लोग आजकल पहाड़ पर गए हुए हैं। उसने मेरी काल उनके पहाड़ी महल में स्थानांतरित कर दी।

थोड़ी देर बाद मिसिज कोस्टेलो अपनी मर्सीडीज में मुझे लेने आ गईं। कारमन के कमरे में आकर उन्होंने चारों ओर देखा और मेरा सूटकेस उठा लिया। मुझे धक्का सा लगा। "मैं इन लोगों को छोड़ कर नहीं जाऊंगी। मैं कारमन, ऐमीलिया, बर्नारडा, वरोजा और मैगलदीलीना के साथ रहना चाहती हूं।"

"सामान अभी रहने दीजिए। शाम को देखा जाएगा।" मैंने जरा झेंप कर मिसिज कोस्टेलो से कहा।

"मगर तुम्हें इस जगह पर बेहद कष्ट होगा।" वह बराबर दोहराती रहीं। रात को जब मैं वापस आई, तो कारमन और ऐमीलिया फाटक की खिड़की में ठुंसी मेरा इंतजार कर रही थीं। "आज हमने तुम्हारे कमरे का प्रबंध कर दिया है," कारमन ने कहा। मैं खुश हुई कि अब उसे फर्श पर नहीं सोना पड़ेगा।

हाल की दूसरी तरफ एक और सीले हुए कमरे में दो पलंग बिछे थे। एक पर मेरे लिए बिस्तर लगा था। दूसरे पर मिसिज सोरियल बैठी सिगरेट पी रही थीं। वह अड़तीस-उनतालीस साल की रही होंगी। उनकी आंखों में एक अजीब प्रकार की उदासी थी। यूलीनेजियन नस्ल की किस शाख से उनका संबंध था, उनकी शक्ल से मालूम न हो सकता था। पलंग पर लेट कर उन्होंने तत्काल अपनी जिंदगी की कहानी शुरू कर दी। "मैं 'गाम' से आयी हूं," उन्होंने कहा। "गाम कहां है?" मैंने कहा।

"प्रशांत महासागर में एक टापू है। उस पर अमरीकी अधिकार है। वह इतना छोटा टापू है कि दुनिया के नक्शे पर उसके नाम के नीचे केवल एक बिंदु लगा हुआ है। मैं अमरीकी नागरिक हूं।" उन्होंने जरा गौरव से कहा। 'गाम'—मैंने दिल में दोहराया। कमाल है ! दुनिया में कितनी जगहें हैं। और उनमें बिलकुल हमारे जैसे लोग बसते हैं।

"मेरी एक लड़की एक वायलिन बजाने वाले के साथ भाग गई है। मैं उसे पकड़ने आई हूं। वह सिर्फ सत्रह साल की है। मगर हद से ज्यादा जिद्दी है—ये आजकल की लड़कियां!" फिर वह एकाएकी उठ कर बैठ गईं—"मुझे कैंसर हो गया था।"

"ओह...!" मेरे मुंह से निकला।

"मुझे सीने का कैंसर हो गया था," उन्होंने बड़े दुख से कहा, "वरना तीन वर्ष पहले...मैं भी...मैं भी और सब की तरह नार्मल थी।"

उनकी आवाज में अपार पीड़ा थी—"देखो..." उन्होंने अपने नाईट-गाऊन की कालर सामने से हटा दी—मैंने कांप कर आंखें बंद कर लीं। एक स्त्री से उसके जिस्म की सुंदरता सदा के लिए छिन जाए, कितने दुख की बात थी !

थोड़ी देर बाद मिसिज सोरियल सिगरेट बुझा कर सो गईं। खिड़की की सलाखों में से चांद अंदर झांक रहा था। नजदीक के कमरे से मैगलदीलीना के गाने की आवाज आनी बंद हो गई। सहसा मेरा जी चाहा कि फूट-फूट कर रो दूं।

अगला सप्ताह फैशनेबल पत्र-पत्रिकाओं की भाषा में सामाजिक और सांस्कृतिक व्यस्तता की आंधी की तरह 'कला' और 'कलचर' के मामलों में बीता। दिन मिसिज कोस्टेलो और उनके मित्रगणों के खुले, हसीन मकानों में और शामें शहर के जगमगाते मनोरंजन-स्थलों में व्यतीत हुईं। हर प्रकार के लोग...बुद्धिजीवी...पत्रकार...लेखक...राजनीतिक नेता मिसिज कोस्टेलो के घर आते और उनसे वाद-विवाद करते रहते। और मैं अंग्रेजी मुहावरे के शब्दों में अपने आपको गोया बेहद 'एंज्वाय' कर रही थी। मैं रात को वाई.डब्ल्यू. वापस आती और हाल की चौकोर मेज के इर्द-गिर्द बैठ कर पांचों लड़कियां बड़ी उत्सुकता से मुझसे दिन भर की घटनाएं सुनतीं। "कमाल है...!" रोजा कहती, "हम इसी शहर के रहने वाले हैं, मगर हमें मालूम नहीं कि यहां ऐसी अलिफ-लैला की सी फजाएं भी हैं।"

"ये बेहद अमीर लोग जो होते हैं न, ये इतने रुपये का क्या करते हैं?" ऐमीलिया पूछती।

ऐमीलिया एक स्कूल में पढ़ाती थी। रोजा एक दफ्तर में स्टैनोग्राफर थी। गलदीलीना और बर्नारडा एक संगीत कालेज में प्यानो और वायलिन की उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। ये सब मध्यम और निम्न वर्ग की लड़कियां थीं।

रविवार की सुबह कारमन मैस में जाने की तैयारी में व्यस्त थी। कोई चीज निकालने के लिए मैंने अलमारी खोली, तो उसके झटके से, ऊपर से एक ऊनी खरगोश नीचे गिर पड़ा। मैं उसे वापस रखने के लिए ऊपर को उछली तो अलमारी की छत पर बहुत सारे खिलौने रखे नजर आए।

"ये मेरे बच्चे के खिलौने हैं," कारमन ने शृंगार-मेज के सामने बाल बनाते हुए बड़ी सहजता से कहा।

"तुम्हारे बच्चे के....!" मैं भौंचक्की रह गई और मैंने बड़े दुख से उसे देखा। कारमन अविवाहित मां थी।

दर्पण में मेरी प्रतिक्रिया देख कर, वह मेरी ओर मुड़ी। उसका चेहरा लाल हो गया और उसने कहा—"तुम गलत समझीं।" फिर वह खिलखिला कर हंसी और उसने अलमारी की निचली दराज में से एक हल्के नीले रंग की चमकीली 'बेबी बुक' निकाली। "देखो, यह मेरे बच्चे की वर्षगांठ की किताब है। जब वह एक साल का होगा तो यह करेगा। जब वह दो वर्ष का हो जाएगा तो यह करेगा। यहां उसकी तस्वीरें चिपकाऊंगी...।" वह बड़े आराम से आलती-पालती मार कर पलंग पर बैठ गई और उस पुस्तक में से खूबसूरत

अमेरीकन बच्चों की रंगीन तस्वीरों को कतरनें निकाल कर बिस्तर पर फैला दीं। "देखो, मेरी नाक कितनी चपटी है और निक्क तो मुझ से भी गया-गुजरा है। तो हम दोनों के बच्चों की नाक का सोचो, क्या हश्र होगा? मैं उसके जन्म से महीनों पहले यह तस्वीर देखा करूंगी, ताकि उस बेचारे की नाक पर कुछ प्रभाव न पड़े।"

"तुम दीवानी हो, अच्छी-खासी ! और यह निक्क कौन बुजुर्ग हैं?"

उसका रंग एकदम सफेद पड़ गया..."अभी उसका जिक्र न करो। उसके नाम पर मुझे लगता है कि मेरा दिल टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

मगर इसके बाद वह बराबर निक्क का जिक्र करती रही। "मैं इतनी कुरूप हूं, मगर निक्क कहता है—कारमन...कारमन, मुझे तुम्हारे दिल से, तुम्हारे दिमाग से, तुम्हारी आत्मा से प्रेम है। निक्क ने इतनी दुनिया देखी है। इतनी सुंदर लड़कियों से उसकी दोस्ती रही है, मगर उसे मेरी कुरूपता का जरा भी अहसास नहीं है।"

गिरजाघर से वापसी पर खाड़ी के किनारे-किनारे सड़क पर चलते हुए, वाई.डब्ल्यू. के शोकाकुल हाल में कपड़ों पर प्रेस करते हुए कारमन ने मुझे अपनी और निक्क की दास्तान सुनाई। निक्क डाक्टर था और हार्ट-सर्जरी के उच्च प्रशिक्षण के लिए बाहर गया हुआ था और उसे पागलों की तरह चाहता था।

रात को मैं मिसिज सोरियल के कमरे से कारमन के कमरे में वापस आ चुकी थी, क्योंकि मिसिज सोरियल अपनी लड़की को पकड़ लाने में सफल हो गई थीं और लड़की अब उनके साथ ठहरी हुई थी। सोने से पहले मैं मच्छरदानी ठीक कर रही थी और कारमन फर्श पर आसन जमाए बैठी थी।

"निक्क..." उसने कहना शुरू किया।

"आजकल कहां है?" मैंने पूछा।

"मालूम नहीं।"

"तुम उसे पत्र क्यों नहीं लिखतीं?"

"नहीं।"

"क्यों?" मैंने हैरानी से सवाल किया।

"तुम खुदा पर यकीन रखती हो?" उसने पूछा।

"यह तो बहुत लंबी-चौड़ी समस्या है," मैंने जुम्हाई लेकर उत्तर दिया। "मगर यह बताओ, तुम उसे पत्र क्यों नहीं लिखतीं?"

"पहले मेरे सवाल का जवाब दो। तुम खुदा पर यकीन रखती हो?"

"हां," मैंने बहस को संक्षिप्त करने के लिए कहा।

"अच्छा, तो तुम अपने खुदा को खत लिखती हो?"

इमारत की रोशनियां बुझ गईं। रात की हवा में आंगन के वृक्ष सरसरा रहे थे। कमरे के दरवाजे पर पड़ा हुआ लाल फूलों वाला परदा हवा के झोंकों से फड़फड़ाए जा रहा था। मैंने उठ कर उसे एक ओर सरका दिया।

"बहुत खूबसूरत परदा है," मैंने पलंग की ओर लौटते हुए कहा। कारमन फर्श पर करवट बदल कर आंखें बंद किए लेटी थी। मेरी बात पर वह उठ कर बैठ गई और उसने आहिस्ता-आहिस्ता कहना शुरू किया—"मैं और निक्क पहाड़ी इलाके में कई सौ मील के ड्राईव के लिए गए थे...सुन रही हो?"

"हां...हां...सुनाओ !"

"रास्ते में निक्क ने कहा कि चलो डान रेमों से मिलते चलें। डान रेमों निक्क के पिता के दोस्त और कैबिनेट में मंत्री थे और उन्होंने हाल ही में अपने जिले के पहाड़ी स्थान पर नयी कोठी बनवाई थी। जब हम लोग उनकी कोठी के निकट पहुंचे, तो सामने से सफेद फ्राक पहने बहुत सी छोटी-छोटी बच्चियां एक स्कूल से निकल कर आती दिखाई दीं। मुझे वह दृश्य एक सपने की तरह याद है।

"फिर हम अंदर गए और मिसिज रेमों के इंतजार में उनके शानदार ड्राइंग-रूम में बैठ गए। मंत्रीजी घर पर मौजूद नहीं थे। ड्राइंग-रूम और स्टडी-रूम के निकट जो दीवार थी, उसमें शीशे की एक चौकोर डिब्बे जैसी खिड़की में प्लास्टिक की एक बहुत बड़ी गुड़िया सजी थी, जो कमरे की सुंदर सजावट के मुकाबले में बहुत भद्दी मालूम हो रही थी। हम दोनों इस बेतुकेपन पर चुपके से मुस्कुराये। फिर मिसिज रेमों आईं। उन्होंने हमें नींबू की चाय पिलाई और सारा घर दिखलाया। उनके गुसलखाने काली टाईलों के थे और मेहमानखाने के सुंदर दीवान-बेड लाल फूलदार और टेपेस्टरी के झालरों वाले गिलाफ से ढके हुए थे। इन पलंगों को देख कर निक्क ने चुपके से मुझसे कहा था, 'बेतुकेपन की चरम सीमा' और मैंने अपने मन में कहा था—कोई बात नहीं ! मैं तो अपने घर के लिए ऐसे ही पलंग खरीदूंगी और इसी रंग के गिलाफ बनाऊंगी। इसके बाद...मैं जब भी घरेलू साज-सामान की दुकान से गुजरती, तो उस कपड़े को देख कर मेरे कदम ठिठक जाते—फिर मैंने तनख्वाह बचा-बचा कर उसी कीमती कपड़े का परदा खरीद लिया।

"जब मैं एक विशेष चीनी रेस्टोरेंट के आगे से गुजरती हूं..." वह उसी स्वर में कहती रही, "और शीशे की खिड़की के करीब रखी हुई मेज और उस पर जलता हुआ हरा लैंप नजर आता है तो मेरा दिल डूब सा जाता है। वहीं मैंने एक शाम को निक्क के साथ खाना खाया था।"

मुझे नींद आ रही थी और मैं निक्क की उस कथा से ऊब चुकी थी। मैंने मच्छरदानी के परदे गिराते हुए कहा, "एक बात बताओ—तुम्हें इतना प्रेम है अपने निक्क से, तो तुमने

उससे शादी क्यों न कर ली? अब तक क्यों झक मारती रहीं...?"

"मुझे दस वर्ष तक दूर-दराज के एक टापू में अपने दादा के साथ रहना पड़ा।" उसने उदास स्वर में उत्तर दिया, "पहले हम लोग उसी शहर में रहते थे। युद्ध के दिनों में बमबारी से हमारा छोटा सा मकान जल कर राख हो गया और मेरी मां और दोनों भाई मारे गए। सिर्फ मैं और मेरे बाबा बचे। बाबा एक स्कूल में साइंस-टीचर थे। उनको टी.बी. हो गई और मैंने उन्हें सैनेटोरियम में दाखिल करवा दिया जो बहुत दूर स्थित टापू में था...सैनिटोरियम महंगा था। इसलिए कालेज छोड़ते ही मैंने उसी स्वास्थ्य-स्थल के दफ्तर में नौकरी कर ली और आस-पड़ोस के धनवान जमींदारों के घरों में ट्यूशन भी करती रही। मगर बाबा का इलाज और अधिक महंगा होता गया। तब भी बाबा अच्छे न हुए...मैं एक टापू से दूसरे टापू में, नाव में बैठ कर जाती और जमींदारों के महलों में उनके मोटी बुद्धि के बच्चों को पढ़ाते-पढ़ाते थक कर चूर हो जाती। तब भी बाबा अच्छे न हुए। निक्क से मेरी भेंट आज से दस वर्ष पूर्व एक फीस्टा में हुई थी। इस दौरान मैं जब भी राजधानी आती, वह मुझसे मिलता रहता। तीन साल हुए, उसने शादी का अनुरोध किया। परंतु बाबा की हालत इतनी खराब थी कि मैं उनको मरता छोड़ कर यहां न आ सकती थी। उन्हीं दिनों निक्क को बाहर जाना पड़ गया। जब बाबा मर गए तो मैं यहां आ गई। अब मैं यहां सेवारत हूं और अगले वर्ष विश्वविद्यालय में अपना शोधपत्र भी दाखिल कर दूंगी। मैं चाहती हूं कि बाबा के गिरवी रखे खेत भी छूट जाएं। निक्क मेरी मदद करना चाहता था, मगर मैं शादी से पहले एक पैसा नहीं लूंगी। उसके परिवार वाले बड़े बददिमाग और अकड़फूं वाले लोग हैं और एक लड़की के लिए उसकी इज्जत बहुत बड़ी चीज है। इज्जत-आबरू, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास। अगर कभी मुझे यह अहसास हो जाए कि निक्क मुझे तुच्छ समझता है...या मुझे...? सो गईं...गुडनाइट...!"

दूसरे दिन वह सुबह तैयार होकर रोज की तरह सब से पहले नाश्ते की मेज पर इंतजाम के लिए पहुंच चुकी थी। मिलिज सोरियल वापिस जा रही थीं। अपने होने वाले दामाद से उनकी सुलह हो गई थी। वह सवेरे ही से आ पहुंचा था। वह एक बौना सा युवक था और बरामदे के एक कोने में भीगी बिल्ली बना बैठा था। वातावरण पर एक विचित्र सी खुशी छाई हुई थी। लड़कियां बात-बात पर कहकहे लगा रही थीं। मैं भी बहुत प्रसन्न थी और स्वयं को बेहद हल्का-फुल्का महसूस कर रही थी। यह हल्के-फुल्केपन और संपूर्णता का अहसास जिंदगी में बहुत कम आता है और केवल कुछ क्षणों के लिए ही रहता है। मगर वे क्षण बहुत गनीमत हैं।

कारमन जल्दी-जल्दी नाश्ता समाप्त करके दफ्तर चली गई। "आज भी तुम अपने शान-शौकत वाले मित्रों से मिलने न जा रही होतीं, तो तुम्हें 'जीपनी' (एक वाहन) में बिठा

कर शहर के गली-कूचों की सैर कराते।" मैगदीलीना ने मुझसे कहा।

"तुम्हारे लिए एक कैडीलक आई है, भई!" रोजा ने अंदर आकर सूचना दी।

"कैडीलक...अफ्फो...!!" सब के मुंह से एक साथ निकला।

"तुम्हारे लिए ऐसी बढ़िया-बढ़िया मोटरें आती हैं कि हम लोगों की रोब के मारे घिग्घी बंध जाती है।" बर्नारडा ने खुश-दिली से बात आगे बढ़ाई। मैंने लड़कियों को 'खुदा हाफिज' कहा और अपना सफरी बैग कंधे पर लटका कर बाहर आ गई। मैं भूतपूर्व राजूदत डान गारसियाडील प्रेडोस के यहां दो दिन के लिए उसके हिल-स्टेशन जा रही हूं। उनके वर्दीधारी शोफर ने काली कैडीलक का दरवाजा बड़े आदर-सहित बंद किया और कार शहर से निकल कर हरे-भरे पहाड़ों की ओर रवाना हो गई।

पहाड़ की एक चोटी पर डान गारसिया का स्पेनी ढंग का शानदार घर, वृक्षों में छिपा दूर से नजर आ रहा था। वादियों में कोहरा मंडरा रहा था और सफेद तथा कासनी और लाल तथा पीले रंग के पहाड़ी फूल हर ओर खिले हुए थे। कार फाटक से होकर पोर्च में रुक गई। आदिवासी सुशील नौकरानियां बाहर निकलीं। बटलर ने नीचे आकर कार का दरवाजा खोला। हाल के दरवाजे में डान गारसिया और उनकी बीवी डोना मारिया मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका घर सफेद कालीनों और सुनहरे फर्नीचर और अत्यंत कीमती सजावटी सामग्री से सजा हुआ था। और इस तरह के कमरे थे जिनके चित्र 'लाईफ' मैगजीन के रंगीन पृष्ठों पर फर्नीचर या इंटीरियर डैकोरेशन के संबंध में अकसर प्रकाशित किए जाते हैं।

कुछ देर बाद, मैं डोना मारिया के साथ ऊपर की मंजिल पर गई। वहां शीशे वाले बरामदे के एक कोने में, बैंत की एक नाजुक सी टोकरी में छह महीने की बेहद गुलाबी रंग की बच्ची पड़ी गाऊं-गाऊं कर रही थी। वह बच्ची इतनी प्यारी थी कि मैं डोना मारिया की बात अधूरी छोड़ कर सीधी टोकरी के पास चली गई। एक बेहद सुंदर, स्वस्थ, खिली-खिली और कम-उम्र अमेरीकन युवती नजदीक के सोफे से उठ कर मेरी ओर आई और मुस्कुरा कर हाथ आगे बढ़ाया।

"यह मेरी बहू है," डोना मारिया ने कहा।

हम तीनों टोकरी के गिर्द खड़े होकर बच्ची से लाड़-प्यार में लग गए।

दोपहर को लंच की मेज पर अमेरीकन लड़की का पति भी आ गया।

"यह हमारा बेटा होजे है," डान गारसिया ने कहा।

होजे की उम्र लगभग पैंतीस साल होगी। अपनी राष्ट्रीय कढ़ाई की, हल्के नीले रंग की कमीज और सफेद पतलून में वह काफी जंच रहा था। वह अपनी नौजवान बीवी को बेहद चाहता था और बच्ची पर तो आशिक था। अधिकतर उसी की बातें करता रहा।

रात को मैं अपने अत्यंत वैभव-संपन्न बढ़िया सोने के कमरे में गईं, जिसके साज-सामान को हाथ लगाते चिंता होती थी कि कहीं मैला न हो जाए ! उस समय मुझे वाई.डब्ल्यू. के सीले हुए कमरे और मच्छरदानी और मिसिज सोरियल और हाल की मैली, बदरंग कुर्सियां बुरी तरह याद आईं।

दो दिन बाद प्रेडोस परिवार मेरे साथ ही राजधानी वापस लौटा।

अपने माता-पिता को उनके टाऊन-हाऊस में उतारने के बाद होजे ने मुझे मेरे ठिकाने पर पहुंचाने के लिए कैडीलक दोबारा स्टार्ट की। होजे और उसकी बीवी डोर सिर्फ दो सप्ताह पूर्व अमेरिका से लौटे थे। उनका बहुत सारा सामान अभी कस्टम-हाऊस में पड़ा था, जिसे छुड़ाने के लिए उन्हें जाना था।

शहर के सब से बढ़िया होटल के सामने होजे ने कार रोक ली।

"क्या करना है यहां?" मैंने उससे पूछा।

"तुम यहीं ठहरी हो न"?

"नहीं डियर होजे, मैं वाई.डब्ल्यू.सी.ए. में ठहरी हूं।"

"वाई.डब्ल्यू...गुड गाड ! कमाल है ! अच्छा, वहीं चलते हैं, मगर क्या तुम्हें यहां जगह नहीं मिल सकी? तुम्हें चाहिए था कि आते ही डैडी को सूचना देतीं।"

उस समय मुझे सहसा खयाल आया कि मैं प्रत्येक वर्ग और हर प्रकार के लोगों को अपने खुले-खुले से और विनम्र स्वभाव के जरिये कम से कम अपनी सीमा तक मानसिक तौर पर समतल करती चली जाती हूं। मगर होजे और उसके माता-पिता देश के सबसे प्रतिष्ठान दस परिवारों में शामिल थे और यहां के सत्ताधारी वर्ग के महत्वपूर्ण स्तंभ थे और उनको यह समझाना बिलकुल बेकार था कि मुझे वाई.डब्ल्यू. क्यों इतना अच्छा लगा है और मैं वहां ठहरने पर इतनी जिद्द क्यों कर रही हूं।

होजे ने गली के नुक्कड़ पर कार रोक ली, क्योंकि चीनियों की एक कतार ने सारा रास्ता रोक लिया था। मैं जब वाई. डब्ल्यू. के अंदर पहुंची तो सब लोग सो चुके थे। मैं चुपके से जाकर अपनी मच्छरदानी में घुस गई। कारमन रोज की तरह फर्श पर शांति से सो रही थी। उसके सिरहाने सांतो तोमास के चित्र पर गली के लैंप का मद्धिम सा प्रतिबिंब झिलमिला रहा था।

सुबह चार बजे उठ कर, मैं दबे पांव गुसलखाने में गई और धीरे से पानी का नल खोला, मगर पानी की धार इस जोर से निकली कि मैं चौंक उठी। उसी तरह चुपके से कमरे में आकर मैंने सामान बांधा, ताकि आहट से कारमन की आंख न खुल जाए। इतने में मैंने देखा कि वह फर्श से गायब है और कुछ देर बाद उसने आकर कहा, "नाश्ता तैयार है।" वह टैक्सी के लिए फोन भी कर चुकी थी।

"यात्रा कैसी रही?" उसने चाय उंडेलते हुए कहा।

"बहुत अच्छी।"

"ये तुम्हारे दोस्त लोग कौन थे, जहां तुम गई थीं? तुमने बताया ही नहीं।"

मैं बात शुरू करने ही वाली थी कि अचानक मुझे खयाल आया। मैंने जल्दी से कमरे में जाकर सूटकेस खोला। एक नयी बनारसी साड़ी निकाल कर एक पर्ची पर लिखा, 'तुम्हारी शादी के लिए मेरा पेशगी उपहार...।' और साड़ी तथा पर्ची कारमन के तकिये के नीचे रख दी।

"टैक्सी आ गई।" कारमन ने बरामदे में से आवाज दी।

हम दोनों सामान उठा कर बाहर आए। मैं टैक्सी में बैठ गई। इतने में कारमन फाटक की खिड़की में से सिर निकाल कर चिल्लाई—"अरे, तुमने अपना पता तो दिया ही नहीं।" मैंन कागज के एक टुकड़े पर अपना पता घसीट कर उसे थमा दिया। फिर मुझे भी एक बेहद जरूरी बात याद आई।

"हद हो गई, कारमन ! तुम्हारी वाई. डब्ल्यू. ने मुझे अपना बिल नहीं दिया।"

"बको मत।"

"अरे, यह तुम्हारा अपना घर तो नहीं था !"

"तुम मेरी मेहमान थीं।"

"बको मत।"

"तुम खुद मत बको। अब भागो, वरना हवाई जहाज छूट जाएगा और देखो, जब मैं शादी का कार्ड भेजूं, तो तुम को आना पड़ेगा। मैं कोई बहाना नहीं सुनूंगी। जरा सोचो, निक्क तुम से मिल कर कितना खुश होगा!"

मगर हम दोनों को मालूम था कि मेरा दोबारा इतनी दूर आना बहुत मुश्किल है।

"खुदा हाफिज, कारमन !" मैंने कहा।

"खुदा हाफिज !" वह खिड़की में से सिर निकाल कर बहुत देर तक हाथ हिलाती रही। टैक्सी उषा-काल के धुंधलके में एयर-पोर्ट की ओर रवाना हो गई।

हवाई जहाज तैयार खड़ा था। मैं कस्टम-काउंटर पर से लौटी तो पीछे से डान गारसिया की आवाज आई—"निक्क, मैं जरा सिगार खरीद लूं।"

"बहुत अच्छा, डैडी !" यह होजे का स्वर था।

मैं चौंक कर पीछे मुड़ी। होजे मुस्कुराता हुआ मेरी तरफ बढ़ा।

"हम लोग कैसे ठीक समय पर पहुंचे!"

"हौजे...!" मैंने डूबते हुए दिल से पूछा, "तुम्हारा दूसरा नाम क्या है?"

"निक्क...डैडी जब बहुत लाड़ में आते हैं, तो मुझे निक्क कह कर पुकारते हैं। वरना

आम तौर पर मैं होजे ही कहलाता हूं...क्यों...?"

"कुछ नहीं..." मैं उसके साथ लाउंज की ओर चलने लगी।

"तुम...अमरीका क्या करने गए थे?" मैंने धीरे से पूछा।

"हार्ट-सर्जरी में स्पेशेलाईज करने...मैंने तुम्हें बताया तो था। क्यों...?"

"तुम...कभी तुमने...तुमने..।"

"क्यों...? क्या हुआ...? क्या बात है...?"

"कुछ नहीं।" मेरी आवाज डूब गई। लाउड-स्पीकर ने दोहराना शुरू किया, "पैन-अमेरीकन के यात्री...पैन-अमेरीकन के यात्री....!"

"अरे...विदा का समय इतनी जल्दी आ गया?" निक्क ने आश्चर्य से घड़ी देखी। डान गारसिया सिगार खरीद कर प्यार से मुस्कुराते हुए मेरी ओर आए। मैंने दोनों बाप-बेटे का धन्यवाद किया। उन्हें 'खुदा हाफिज' कहा और तेजी से यात्रियों की कतार में जा मिली।

दौड़ते हुए विमान की खिड़की में से मैंने देखा—डान गारसिया और निक्क नीचे रेलिंग पर झुके रूमाल हिला रहे थे। विमान ने धरती से ऊंचा उठना शुरू कर दिया।

यहां से बहुत दूर खतरनाक तूफानों में घिरे हुए यूरोपीय सागर में हरे-भरे टापुओं का एक समूह है, जो फिलीपीन कहलाता है। उसकी जागती-जगमगाती राजधानी मनीला के एक बेरौनक से मोहल्ले की एक टूटी-फूटी इमारत के अंदर, एक बेहद चपटी नाक और फरिश्ते के से मासूम दिल वाली फिलपीनी लड़की रहती है, जो अपने बच्चे के लिए खिलौने जमा कर रही है और अपने 'खुदा' की वापसी की प्रतीक्षा में व्यस्त है, जिस पर उसे पूरा विश्वास है।

कैदी

क़लाम हैदरी

हल्की अंधेरी रात के गहरे सन्नाटे में वह साफ-सुथरा, छोटा सा मकान रहस्यमयी, मगर पक्के विश्वास की भांति खड़ा हुआ अपने अंदर से शंकाओं में डूबी हुई मंद-मंद, टिमटिमाती, लड़खड़ाती और कांपती हुई रोशनियों को बाहर फेंक रहा था, जैसे धुंध में घिरा हुआ सपना और सपने में डूबी हुई रहस्यपूर्ण साजिश और राज-भरी आवाज, जरा से अस्तित्व में आकर हवा में घुल-मिल जाए।

उस लंबे, साफ-सुथरे, छोटे से मकान की तीसरी मंजिल के एक-मात्र कमरे की खिड़की की खूबसूरत, लोहे की सुंदर ग्रिल के झुकावों, कोणों, गोलाइयों से धीमी गति से, गंभीरता में डूबी हुई बेदह हल्की सी हरी झलक मारती रोशनी फूट-फूट कर बह रही थी।

इस तीसरी मंजिल के एक-मात्र कमरे की टीक वुड की आड़ से, तिरछे नक्शों वाली चम-चम करती मच्छरदानी के एक किनारे पर वह अपनी नींद-भरी, अधखुली आंखों से खिड़की के बाहर उस खूबसूरत अंधेरे को निहार रहा था। उस शानदार मच्छरदानी के दूसरे किनारे पर वह अपनी नशीली आंखों से कमरे के अंदर रखे हुए वार्डरोब को देख रही थी, जिसे उसने अपनी देख-रेख में तीखे डिजायन का बनवाया था।

दोनों अलग-अलग दिशा में मुंह किए थे, मगर दोनों की पीठ एक-दूसरे को स्पर्श कर रही थी।

पुरुष सैंडो गंजी पहने हुए था।

और उसकी बीवी सिर्फ एक पारदर्शी ब्रेजियर।

दोनों की आंखों को अब नींद के पहले झोंके ने बंद होने पर मजबूर करना आरंभ कर दिया था। मगर दिमाग अभी बंद नहीं हुए थे। पति ने महसूस किया कि उसकी पीठ का खुला हिस्सा उसकी बीवी की गर्दन के नीचे वाले हिस्से से स्पर्श कर रहा है।

उसकी गर्दन के नीचे वाला पिछला हिस्सा ही तो उसकी कमजोरी बन कर कई बार उसे चुंबन लेने पर उकसा चुका था।

वह जो कालेज की सुंदर लड़कियों में से एक थी, जिस के जिस्म के कोणों, गोलाइयों

और सीधी तनी बनावटों ने तहलका मचा रखा था। शायद उसके सौंदर्य में 'नख से शिख तक सौंदर्य' वाली काव्यात्मक विशेषता न हो, लेकिन यदि यौन-आकर्षण किसी स्त्री की सुंदरता की कसौटी बन सकता है, तो वह अत्यंत सुंदर थी, बेहद उत्तेजक, बेहद भड़काऊ...।

और आज वह कितनी उत्तेजक लग रही थी, किस कदर ! उसके खबर करने पर वह ठीक आठ बजे स्टेशन पहुंच गया था। वह दिल्ली जा रही थी और वहां से लंदन !

बीस मिनट की मुलाकात...आंखें बंद किए, उसने दो बर्थ वाले कूपे की कल्पना की।

आसमानी रंग की, शरीर से चिपट जाने वाली नायलान जारजट की साड़ी में लिपटी हुई वह चार साल पहले से भी अधिक जवान, अधिक कसी हुई, अधिक आकर्षक और उत्तेजक लगी। उसका भाई डिब्बे से उतर कर बुक-स्टाल पर जा चुका था।

"तुम...।"

और अगर ऐसा हो सकता कि वह भी उसके साथ हो लेता, उसकी कमर में बांहें डाले !

वह खिड़की पर हाथ रखे, बाहर देख रही थी। वही गर्दन से नीचे का हिस्सा, ब्लाऊज के घेरे से झांकता हुआ वह हिस्सा...।

वह धीरे से झुका...।

उसके सांसों की गरमी महसूस करते हुए, वह अचानक मुड़ी। सहसा उसका जी चाहा, उसकी कमर में हाथ डाल कर...उसकी पीठ से स्पर्श करती हुई उसकी बीवी की पीठ में हल्की सी हरकत हुई।

मगर उसकी कमर उसकी पकड़ से बाहर थी। कोई प्यारा सा जुर्म था, जो उसे रोक रहा था, उस काम से रोक रहा था, जिसे वह चार साल पहले कई बार कर चुका था।

बस एक चुंबन—गर्म, कांपता हुआ, तपा हुआ।

चार साल..।

क्षणों के इस संसार में...।

उसकी बीवी आंखें बंद किए...अपनी सखी के उस खत के बारे में सोच रही थी, जिसमें उसने खबर दी थी कि सज्जाद की पोस्टिंग यू.एन.ओ. में हो गई है और वह अपनी बीवी के साथ बहुत जल्दी जाने वाला है।

सज्जाद अगर उसका पति होता ! जैसे एक झुनझुनी सी उसके अंग-अंग में दौड़ गई।

यह क्या है...?

डाक्टर की बीवी बन कर, उसने पाया कुछ नहीं, खोया शायद सब कुछ या सज्जाद

की बीवी न बन कर ही उसने सब कुछ खो दिया !

पांच फुट आठ इंच का स्वस्थ और मुस्कुराता हुआ सज्जाद...कालेज के वे एक्सर्शन!

अजंता के अंदर सज्जाद ने बेहद भावुक होकर उसके होंठों को चूम लिया था, तो वह कुछ क्षणों के लिए पत्थर की प्रतिमा बनी वहीं गड़ गई थी।

जनवरी की वह रात, जब वे दोनों सरदी में सिकुड़ते हुए मुशायरे से वापस आ रहे थे, सामने देहरादून, जमीन पर तारे छिटके हुए आकाश की भांति लेटा हुआ था। सज्जाद का हाथ उसकी कमर में था।

काश ! क्षण रुक जाते !

सज्जाद ने उसे अपने निकट खींचते हुए कानों में कहा।

उसका पति सो चुका है— उसने सोचा।

सज्जाद !

...और बंबई के जुहू पर लेटे हुए दोनों ने सागर के किनारे को ढूंढ़ने की कोशिश की, दूसरा किनारा...जो नजर नहीं आ रहा था। लाल थाल सा सूरज पानी में जैसे अब 'छन' से गिरेगा।

"सज्जाद !" उसने बहुत आहिस्ता से पुकारा।

"तुमने कुछ कहा...?" सज्जाद ने ऐसी मासूम और गहरी और डूबती हुई नजरों से देखा, जैसे अब उसके बाद मासूमियत और गहराई की सारी कल्पनाएं मात खा जाएंगी।

इर्द-गिर्द मेला लगा हुआ था, मगर वे दोनों तनहा थे। दोनों अकेले-अकेले...।

वह सज्जाद नहीं था !

वह...वह न थी !

वह मुहब्बत थी, आकर्षण थी, वह प्यास थी, वह खोने की आकांक्षा थी, वह पाने का प्रयास थी। वह सागर क्या था? वह सूरज क्या था?

वह कंपार्टमेंट की खिड़की से जरा सी अड़ी हुई खड़ी थी और चुपचाप देखे जा रही थी और उसके उतार-चढ़ाव और गोलाइयों के सारे रहस्य और राज छन-छन कर बिखर रहे थे। उसे लगा, उसकी आंखों में वही भावुक हलचल है, वही उबाल है, वही प्रबलता है, और सब की तह में धीमी सुलगती हुई आग है...जिसकी कल्पना से ही उसके माथे पर कुछ बूंदें उभर आईं, जैसे सागर से वाष्प उठ रही हो।

"तुम वहां कितने दिनों में एम.आर.सी.जी.ओ. कर लोगी?"

"बताना कठिन है।"

सवाल वह नहीं था जो वह करना चाहता था।

जवाब भी वह नहीं था जो उसे चाहिए था।

"तुमने मुझे क्यों बुलाया था?" यह प्रश्न उसने ऐसे किया, जैसे अपने आने का कारण तलाश कर रहा हो।

या शब्द उसे धोखा दे रहे थे। या वह प्रश्न जो वह करना चाहता था, शब्दों की पकड़ से बाहर था। उसका सवाल शायद शब्दों से शरमा रहा था।

"तुम अच्छे हो?" कितनी ही देर बाद उसने पूछा।

"अच्छा...? हां, अच्छा हूं...मैंने सुना है, तुम शादी कर रही हो?"

उसने उसे सिर से पैरों तक एक ऐसी दृष्टि से देखते हुए पूछा, जिससे असफलताओं का लावा उबल रहा था।

उत्तर...उसने अपनी नजरें अपने पैरों पर गड़ा दीं।

"लंदन में कोई है, तुम्हारा?" काश ! लंदन में उसका कोई न हो !

"पापा इन दिनों वहीं हैं और मेरा चचेरा भाई...।"

आगे सुनने की क्षमता उसमें नहीं थी। उसका जी चाहा कि फूट-फूट कर रोए।

तुम्हारा वहां कोई नहीं, कोई भी नहीं !

मेरा कोई नहीं...

मैं भी नहीं हूं...

उसने अनुभव किया, वह सज्जाद की बांह में बांह डाले न्यूयार्क की चमकदार रोशनियों से गुजरती, मस्त और मंत्र-मुग्ध चली जा रही है, धीरे-धीरे उसके जिस्म की तपिश उसके शरीर में घुसी जा रही है, उसके जिस्म की खुशबू...रुक जाओ, क्षणो, रुक जाओ !

खुशबू, सज्जाद एक खुशबू की तरह आया था, खुशबू का बदन कहां है?

रेलगाड़ी की रफ्तार से कदम मिला कर, कितनी दूर चला जा सकता है?

उसकी बीवी अपने अंदर ही अंदर जरा सी लरजी। वह भी हिला। उसके पैर, उसकी बीवी के कोमल पांवों पर पड़े।

वह मुड़ी। उसने भी पहलू बदला।

दोनों अब अध-खुली आंखों से एक-दूसरे को देख रहे थे। उसने बांह बढ़ा कर उसे अपनी ओर खींचा और भींच लिया।

डार्लिंग...!

डार्लिंग...!

उसके हाथ उसकी गर्दन से नीचे उतरते हुए उसकी पीठ पर ब्रेजियर की हुक से खेलने लगे। आग, क्षण, भावनाएं और...कुछ देर बाद उसका मुंह उसी खिड़की की ओर था और उसका मुंह उसी खूबसूरत वार्डरोब की ओर...वह गहरी-गहरी सांसें लेता हुआ नींद में डूब

गया।

वह नरम-नरम मगर गहरी सांसें लेती हुई सो गई।

तीसरी मंजिल के एक-मात्र कमरे की हरी-हरी रोशनी झिझकते-ठिठकते हुए खिड़की से बाहर आने से असमर्थ कमरे में कैद थी।

एक जख्म और सही

मोहिन्दर नाथ

रात के लगभग साढ़े दस बज चुके थे। आकाश तारों से जगमगा रहा था। यहां से दूर शिवाजी पार्क के निकट सागर की लहरें साहिल से टकरा रही थीं। चांद की चांदनी नारियल के वृक्षों को चूम रही थी और मैं पुस्तक पढ़ने में तल्लीन था। सहसा मुझे हल्की सी पदचाप सुनाई दी। पुस्तक से नजरें हटा कर देखा। एक लड़की जा रही थी। लड़की की पीठ इतनी आकर्षक थी कि उसकी सूरत देखने की इच्छा हुई। इससे पहले कि वह मेरे कमरे से निकल जाती, मैं चिल्लाया—"सुनिए तो !"

लड़की मुड़ी। उसने मेरी ओर देखा।

"आप ने बुलाया?"

"जी हां !"

वह धीरे-धीरे चलती हुई मेरे निकट आई।

"मैंने कहीं देखा है आप को।"

"मैं आपकी बिल्डिंग के दूसरे फ्लोर पर रहती हूं।"

"यह बिल्डिंग मेरी नहीं। क्या काम था?"

"मैं दीदी से मिलने आई थी," लड़की ने मुझे घूरते हुए कहा।

"वह तो मायके गई हैं," मैंने कहा, "क्या चाहिए आप को।"

"थोड़ा सा दही।" उसने छोटा सा चम्मच दिखाते हुए कहा। मैंने चम्मच देखा और फिर मेरी दृष्टि लड़की के सिर से पांवों तक घूम गई।

जो कुछ मैं देख चुका था उसमें गोरे रंग और लंबी नाक के सिवा अधिक वृद्धि न हुई। छोटा सा माथा और छोटी-छोटी सी आंखें, जरा सूझ-भरी।

"आपका नाम जान सकता हूं?"

"वीना।"

"नाम तो सुंदर है। क्या सितार बजाने का शौक है?"

"शौक तो बहुत से हैं, मगर पूरे नहीं होते ! यूं मेरा संगीत से दूर का भी वास्ता नहीं।

आप कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हैं?"

"हिंदी का एक उपन्यास।"

"मुझे पढ़ने के लिए दीजिएगा।"

"मेरे नाम से परिचित हैं या मैं स्वयं अपना परिचय दूं?"

"आपके एक-दो नावल पढ़ चुकी हूं।"

"यानी आप मेरी फैन (प्रशंसक) हैं," मैंने खुश होते हुए कहा।

"कुछ भी समझ लीजिए। मैंने आप को आते-जाते कई बार देखा है। अब चलती हूं। मम्मी ऊपर मेरा इंतजार कर रही होंगी।"

यह कह कर वह शीघ्र ही कमरे से निकल गई।

वास्तव में वीना को खूबसूरत लड़कियों में नहीं गिना जा सकता। इसलिए मैंने अधिक समय उसके जिस्म के कोणों और गोलाइयों पर नहीं लगाया। एक सरसरी सी दृष्टि डाल कर अपने दिल को संतुष्ट कर लिया कि इस लड़की के बारे में अधिक सोचना, समय नष्ट करना है।

एक-दो दिन बीत गए। वीना नहीं आई। वह आ भी जाती तो क्या हो जाता? मेरी आदत है कि मैं रात का खाना खाकर पढ़ता हूं। कभी-कभी खिड़की से बाहर के दृश्य देखता हूं। मेरी खिड़की से जरा दूर नारियल के दो वृक्ष लंबी-लंबी गरदनें उठाए दो दोस्तों की भांति एक-दूसरे को देखते रहते हैं। न आपस में लड़ते हैं, न झगड़ते हैं। इस नीले आकाश के तले, इस जमीन के ऊपर इन दोनों की दोस्ती में कोई अंतर नहीं आया। हां, जब कभी हवा जोर से चलती है तो दोनों दोस्त अपनी बांहें फैला कर एक-दूसरे से लिपट जाते हैं। खुशी से झूमते और गाते हैं। बिलकुल उसी समय मुझे फिर हल्की सी पदचाप सुनाई दी।

"नमस्ते !"

मैंने मुड़ कर देखा। सामने वीना खड़ी थी।

"अरे आप...तशरीफ रखिए।" मैंने घड़ी देखी। रात के साढ़े दस बजे थे।

वह सोफे पर बैठ गई।

"न दीदी घर में है। न दही मेरे पास है। जब से दीदी मायके गई है, मैं होटल में खाना खाता हूं....वरना दही का इंतजाम फौरन कर देता।"

"मैं दही लेने नहीं आई। आज किताब लेने आई हूं।"

"आप के शौक की दाद दूंगा। पूरी बिल्डिंग में आप ही एक लड़की हैं जिसे किताबें पढ़ने का शौक है। ज्यादातर लड़कियां या तो फिल्में देखती हैं या आपस में लड़ कर समय नष्ट करती हैं।"

"धन्यवाद इस प्रशंसा के लिए।"

"मैं थोड़ा बेबाक और निडर हूं। अगर आप बुरा न मानें तो अर्ज कर दूं कि आप के जिस्म का निचला हिस्सा, जिसमें नितंब, रानें और पिंडलियां शामिल हैं, बहुत आकर्षक है।"

वह चुप रही।

"बुरा मान गईं?"

"जी नहीं, थैंक यू फार दी कंप्लीमेंट्स।"

"कौन सी किताब पढ़ना पसंद करेंगी?"

"कोई अपनी किताब दीजिएगा।"

"आपकी उम्र क्या होगी?"

"बस, यही बीस-इक्कीस की होगी।"

"लेकिन आप बीस-इक्कीस साल की मालूम नहीं होतीं।"

"थैंक यू...!" भला इस वक्त थैंक यू कहने की क्या जरूरत थी?

"मैं सैक्स पर ज्यादा लिखता हूं। यही मेरा मन-पसंद विषय है।"

"मुझे आपकी वर्णन-शैली पसंद है। आप खुल कर सारी बातें कह देते हैं।"

मैं 'थैंक यू' कहने ही वाला था, मगर खामोश रहा। शब्दों को बार-बार दोहराना मूर्खता का प्रमाण है। मैंने अलमारी से एक उपन्यास निकाला और वीना के हवाले किया। "पढ़ने के बाद अपनी राय जरूर बताईएगा।"

"जरूर।"

"आप कालेज में पढ़ती हैं?"

"पढ़ती थी। अब पढ़ना छोड़ दिया।"

यह कह कर वीना ने आज्ञा चाही।

इस प्रकार वीना मेरे कमरे में आने लगी। अब तो वह दिन में भी आ जाती। उसे मेरी अच्छी आदत कहिए या बुरी, मैं लोगों की प्रशंसा जरूरत से ज्यादा करता हूं, यानी प्रशंसा करने में तंग-दिली नहीं बरतता। शायद इसीलिए लोग मुझसे शीघ्र ही हिल-मिल जाते हैं और मित्रता का हाथ बढ़ाते हैं। शायद मेरा व्यवहार वीना के साथ इसी प्रकार का था। जब कभी मैं उसके निकट जाता, तो वह फौरन खड़ी हो जाती। उसकी नाक के संवेदनशील नथुने फड़कने लगते। न जाने वह मुझे अपने निकट देख कर घबरा क्यों जाती थी ! मैंने उस घबराहट का कारण नहीं पूछा।

कभी-कभी दिन बीतने लगते हैं, तो यूं ही बीत जाते हैं, बिना किसी घटना के। कोई

आता है, चला जाता है। दिल पर कोई प्रभाव नहीं होता। सूरज चढ़ता है, ढलता है। रात आती है, चांद उभरता है, तारे चमकते हैं। नारियल के वृक्ष आपस में सरगोशियां करते हैं। सीढ़ियों से लोग उतरते हैं, चढ़ते हैं। कोई किसी को गालियां देता है। बच्चों पर लड़ाइयां होती हैं। स्त्रियां बाहर निकल आती हैं। एक-दूसरी को इतनी गंदी गालियां देती हैं कि भली-चंगी औरतों से घृणा हो जाती है। स्त्रियां गालियां बक-बक कर थक जाती हैं, फिर अपने कमरों में चली जाती हैं।

वीना भी इसी तरह आती रही और जाती रही। दर्द की लहर न उभरी, न बढ़ी। न कोई निकट आया, न दूर गया। दिल धड़का जरूर, मगर इसकी गति में तेजी और तीक्ष्णता न आई। बस, एक ही गति से धड़कता रहा, जिस तरह से धड़कना चाहिए यानी केवल जीवित रहने के लिए।

फिर एक दिन वीना दौड़ती हुई मेरे कमरे में आई। "हम यहां से जा रहे हैं।"

"यह बात खुशी की है या दुख की?"

"आप बताइए न!"

"इस बिल्डिंग से बाहर चले जाना ही खुशी की बात है।"

"क्यों?"

"चारों ओर इतनी गंदगी है कि दम घुटने लगता है। खैर, आप कब जा रही हैं?"

"चार महीने बाद। मेरे डैडी ने बोरीवली में एक फ्लैट खरीद लिया है। वह फ्लैट तीन महीने बाद तैयार हो जाएगा। इसके बाद हम यहां से चले जाएंगे—हम ऊपर वाला कमरा खाली कर देंगे। अगर आपका कोई मित्र हमारे वाले कमरे को लेना चाहे, तो ले सकता है।"

"कितना बड़ा कमरा है?"

"आप के कमरे से थोड़ा बड़ा होगा। बालकनी भी है। आप कमरा देख सकते हैं। चलिए न।"

"ऊपर कौन है?"

"कोई भी नहीं।"

"आपकी मम्मी?"

"बाहर गई हैं।"

"डैडी?"

"दफ्तर।"

"आपका भाई?"

"काम पर।"

"तो इस वक्त आप अकेली हैं?"

"जी हां। चलिए ऊपर।"

न जाने मैंने क्या देखा जिसने मुझे ऊपर जाने के लिए मजबूर न किया। इककीस-बाईस वर्ष की जवान लड़की अगर आप से कहे कि 'चलिए ऊपर'...और साथ ही यह कहे कि 'मैं अकेली हूं...। मम्मी, डैडी और भाई सब बाहर गए हुए हैं,' तो आप जरूर लड़की के साथ जाएंगे, लेकिन मैं नहीं गया। आप समझ गए न मेरी बात? लड़की में कुछ होना चाहिए। शायद उसमें सब कुछ था, जो मुझे नजर नहीं आया और जो कुछ मुझे नजर आया, वह न होने के बराबर था।

"पहले यह बताओ, पगड़ी क्या होगी?"

"बस, यही पंद्रह हजार रुपये।"

"तो पहले मैं किसी मित्र से बातचीत कर लूं। फिर सूचना दूंगा।"

वह मुंह लटकाए चली गई और मैं कुर्सी में धंस गया। मैं सोचता ज्यादा हूं, अमल कम करता हूं। सोचने की प्रक्रिया बहुत कठिन और दुख-दायक होती है। दुनिया में सबसे मुश्किल काम सोचना है और जो कुछ मैंने सोचा था, ठीक ही सोचा था।

.....

तीन महीने बीत गए। एक बार फिर वीना आई और कहने लगी, "हम जा रहे हैं। यहां से जाने को मेरा जी नहीं चाहता। क्या करूं ! माता-पिता मजबूर कर रहे हैं। वह जगह बहुत खुली है। मकान साफ-सुथरा है। इस बिल्डिंग की तरह गंदा नहीं। फिर भी....।"

"फिर भी क्या...?"

"जी नहीं लगेगा।"

"क्यों?"

"बचपन की सहेलियां यही रहती हैं—वहां शायद दिल नहीं लगेगा।"

"दिल लगाने की कोशिश कीजिएगा।"

"कोशिश तो करूंगी। मगर यह नामुराद दिल किसी की नहीं सुनता, अपनी ही करता है। मैं फोन करूंगी आपको। आप जवाब तो देंगे न?"

"भला, तुम फोन करो और मैं जवाब न दूं, यह कैसे हो सकता है, वीना?" मैंने बात बढ़ाने की कोशिश की।

"आप फरेब देना खूब जानते हैं।" शायद वीना को जो कुछ कहना था, उसने कह दिया। लेकिन मैं कब चूकने वाला था?

"मैं तुम्हें फरेब नहीं दे रहा हूं। अपने आप को फरेब दे रहा हूं, वीना ! जिंदगी में

जीवित रहने के लिए मैंने एक गुर ढूंढ़ निकाला है जो अत्यंत कारगर है।"

"क्या?"

"जीने के लिए अपने-आप को फरेब दो।"

शायद, वह मेरी बात नहीं समझी।

"अब आज्ञा चाहूंगी।" और वह चली गई।

कहानी यहां भी खत्म हो सकती थी, मगर यहां हुई नहीं। चंद महीने बीत गए। वीना का एक-दो बार फोन आया। एक बार उसने कहा, "मुझे आप से एक जरूरी बात कहनी है।" मैंने कहा, "चली आओ।"

फिर एक दिन वीना आ गई।

"दीदी कहां हैं?"

"दूसरे कमरे में।"

"पहले दीदी से बातचीत कर लूं। फिर आपसे बात करूंगी।" यह कह कर वह दूसरे कमरे में चली गई। आधे घंटे बाद वापस आई।

"आपसे सलाह लेनी है। आप उम्र में बड़े हैं। मुझसे अधिक अनुभवी भी हैं। पंद्रह दिन हुए मेरे भाई की शादी हुई थी। मैं शर्मिंदा हूं कि आप को बुला न सकी। क्षमा चाहती हूं। इस शादी में एक लड़के से मुलाकात हुई। बस 'लव एट फर्स्ट साईट' वाली बात हो गई।"

"यह तो खुशी की बात है। अब शादी कर लो।"

"शादी न हो सकेगी।"

"क्यों?"

"वह पंजाबी है और हम सिंधी।"

"तो क्या हुआ...? पहले यह बताओ, लड़का तुम्हें पसंद है?"

"हां।"

"वह तुम्हें पसंद करता है?"

"बहुत !"

"नौकरी करता है?"

"हां।"

"कहां रहता है?"

"दिल्ली में।"

"तो फिर देर किस बात की है?"

"अब मैं क्या करूं...?"

"पहले तुम उसे खत लिखो।"

"मैं उसे खत नहीं लिखूंगी। पहले वह खत लिखे...।"

"देखो वीना ! इन छोटी-छोटी बातों के लिए अपनी जिंदगी बरबाद न करो। हां, अगर तुम उसके खत की प्रतीक्षा करना चाहती हो, तो कर लो। स्पष्ट है कि वह तुम्हें खत लिखेगा। अपना प्रेम प्रकट करेगा। शादी के लिए कहेगा। तुम्हें पत्र का उत्तर देना चाहिए। अपने प्रेम का इजहार करना। अगर सचमुच तुम उस लड़के को चाहती हो, तो शादी के लिए हां कर देना...।"

"पर शादी कैसे हो सकती है?"

"क्यों नहीं हो सकती?"

"मैं पहले ही कह चुकी हूं कि वह पंजाबी है और मैं सिंधी ! मेरे माता-पिता नहीं मानेंगे।"

"मैं तुम्हारे मां-बाप से बात करूंगा और उन्हें मना लूंगा।"

"खैर, पहले तो यह कीजिएगा कि उनके पत्र आपके पते पर आएंगे और वे पत्र आप मुझे देंगे।"

"तो आप मुझे पोस्ट-बाक्स और पोस्टमैन की पदवी दे रही हैं ! धन्यवाद इस सम्मान का।"

"इतना काम तो मेरे लिए कीजिए।" वीना ने शरमाते हुए कहा।

"किया, हुजूर !"

अब पत्र आने आरंभ हुए। लगभग प्रतिदिन एक पत्र आता। सात दिनों में सात पत्र आए। उन सात दिनों में वीना का कोई फोन न आया। मैं अजीब दुविधा में पड़ गया। निहायत ही बेवफा सी लड़की है। पत्रों पर पत्र आ रहे हैं और वीना को इन पत्रों के बारे में कोई दिलचस्पी नहीं।

अचानक एक दिन वीना का फोन आया। "क्या कोई पत्र आया?"

"अजी, एक पत्र ! पत्रों का एक ढेर जमा है मेरे पास !"

"आप ने पत्र पढ़े?"

"भई वाह ! प्रेम-लीला आप रचा रही हैं और पत्र मैं पढ़ूं ! और मैं तुम्हारे प्रेमी के पत्र कैसे पढ़ सकता हूं? आखिर मर्द हूं। द्वेष, ईर्ष्या और जलन की भावना उभर आई तो?"

"आपको इजाजत है, उनके पत्र पढ़ने की, बल्कि पत्र पढ़ कर मुझे सलाह दीजिएगा।"

"कि प्रेम कैसे किया जाता है?" मैंने कहकहा लगा कर कहा।

"हां, हां...आप तो इस लाइन के मास्टर हैं ! मैं आप के प्रेम की कहानियां काफी

सुन चुकी हूं।"

"बद से बदनाम बुरा !" मैंने हंसते हुए कहा।

"पत्र पढ़ कर बताइयेगा कि उत्तर क्या दूं?"

"यानी लैटर-राईटिंग में भी आपको सबक सिखाना पड़ेगा।"

"न जाने क्या कुछ सीखना पड़ेगा मुझे !" वीना ने हंसते हुए कहा।

"अच्छा, तो इस कयामत का सामना मुझे ही करना पड़ेगा...चलिए मंजूर ! जहां इतने जख्म खाए हैं, एक जख्म और सही !" मैंने छेड़ते हुए कहा।

मैंने पत्रों को पढ़ना शुरू किया। जैसे-जैसे पत्र पढ़ता गया, द्वेष और ईर्ष्या की भावना बढ़ती गई। दिमाग भिनभिनाने लगा। पत्रों में गहराई नहीं थी। यूं लगता था कि एक किशोर, दूसरे किशोर को पत्र लिख रहा है। लिखा था, "डार्लिंग..! मैं तुमसे प्यार करता हूं, बेहद प्यार करता हूं। पहली ही मुलाकात में तुम्हारा हो गया। जब पहली बार मेरी उंगलियों का तुम्हारी उंगलियों से स्पर्श हुआ तो सारा जिस्म झनझना उठा। जब पहली बार तुम्हारे होंठों को चूमा था, तो यूं अनुभव हुआ जैसे गुलाब के फूलों को चूम रहा हूं। जब पहली वार तुमने मेरी गोदी में सिर रखा था तो मैंने उस समय सोचा, शायद सारे संसार का खजाना मुझे मिल गया...!" इसी प्रकार प्रत्येक पत्र में अपने प्यार का उल्लेख था। एक पत्र में लिखा था—"अव तुम्हें क्या बताऊं ! तुम्हारे विना दिल नहीं लगता। जी चाहता है कि पहली फ्लाईट से तुम्हारे पास पहुंच जाऊं और तुमसे बातें करूं ! अब मैंने पक्का निश्चय कर लिया है कि शादी करूंगा तो तुम्हारे साथ, वरना जिंदगी भर अकेला रहूंगा। किसी दूसरी लड़की से शादी नहीं करूंगा। मैंने अपने माता-पिता से बातचीत कर ली है। ये लोग काफी उदारचित्त हैं। पंजाबी और सिंधी में कोई अंतर नहीं मानते। अब तुम अपने पिताजी और माताजी से बात कर लो...और शीघ्र ही उत्तर दो कि इसके संबंध में उनका क्या विचार है? यदि तुम में इतनी हिम्मत नहीं तो मैं तुम्हारे पिताजी को पत्र लिख देता हूं और उनसे आज्ञा मांग लेता हूं। आखिर तुम्हारे पिताजी इंकार क्यों करेंगे? हम दोनों एक-दूसरे से प्यार करते हैं। किसी दूसरे को हमारे रास्ते में रुकावट नहीं बनना चाहिए। मैंने तुम्हें सात खत लिखे और उत्तर में तुम्हारे केवल दो खत आए। डार्लिंग....! प्रतिदिन मुझे पत्र लिखा करो। तुम्हारे पत्र पढ़ कर ही मैं जीवित रह सकूंगा?" एक और पत्र में लिखा था—"डार्लिंग! जब पहली बार तुम्हें देखा था, तो उस समय तुम मुझे दुबली सी मालूम हुई थीं। अब तुम्हारी सेहत कैसी है? अपनी सेहत का खयाल रखो। ज्यादा खाओ। किसी टानिक का प्रयोग करो। जरा मोटी हो जाओ न। मुझे दुबली-पतली लड़कियां अच्छी नहीं लगतीं। अब क्या बताऊं, इस समय क्या चाह रहा हूं, यानी तुम्हें अपनी बांहों में लेने के लिए मन व्याकुल है। बुरा न मानना मेरी बात का। सेहतमंद होना कोई बुरी बात नहीं। अपने दिल का तो

यह हाल है कि दिल को जख्मों में सिए जा रहा हूं। डार्लिंग ! सच बता दूं तुम्हें कि तुम्हारी जैसी इस दुनिया में और कोई नहीं। शीघ्र ही अपने माता-पिता से बात कर लो शादी की। आखिर में यही निवेदन करता हूं कि मैं तुम्हें चाहता हूं। सिर्फ तुम्हें चाहता हूं ! किसी और को नहीं !"

इन पत्रों को पढ़ कर मेरे दिल-दिमाग पर अच्छा प्रभाव न पड़ा। यूं ही द्वेष, ईर्ष्या और जलन की भावना उभर आई। भला मेरा इन पत्रों से क्या संबंध था ! अगर वीना किसी को चाहती है तो कर ले प्रेम ! या वीना को कोई लड़का चाहता है, तो मैं क्या कर सकता हूं? पत्र बहुत बेहूदा थे। सिर्फ प्यार, प्यार, प्यार, और कुछ भी नहीं ! इन्हीं पत्रों के कारण मेरे मस्तिष्क में एक हलचल सी पैदा हुई। एक-दो पत्र और आए। मैंने पढ़े नहीं। काफी दिनों बाद वीना का फोन आया, "मैं आ रही हूं।"

मैंने कहा, "बड़े शौक से !"

जब वह आई, तो वे पत्र मैंने वीना को दे दिए। वह पत्र पढ़ती गई। फिर उसने पत्र फाड़ने शुरू कर दिए। जब सारे पत्र फाड़ चुकी तो कहने लगी, "क्या घटिया प्रेम है !"

"बोलो। इससे अच्छा प्रेम और क्या होगा...?" मैंने कहा।

"अजी, बस प्यार, प्यार, प्यार ! और कुछ नहीं। पत्र का आरंभ डार्लिंग से और अंत तुम्हारा प्रेमी, रंजन !...मैं क्या जवाब दूं? एक-दो पत्र लिख चुकी हूं। एक पत्र घर के पते पर आ गया। अगर पिताजी उसे पढ़ लेते तो मुझे घर से निकाल देते। क्या बेहूदगी है! मैं उन्हें लिख चुकी हूं कि वह पत्र आपके पते पर लिखें। फिर मेरे घर के पते पर क्यों पत्र लिखा?"

"नशे में लिखा होगा !"

"कैसा नशा !"

"प्रेम का नशा, वीना !"

"आप इन पत्रों के अंजाम से वाकिफ हैं। अगर मेरे पिताजी को इन पत्रों का पता लग गया तो वह मुझे घर से बाहर कर देंगे। फिर मैं किधर जाऊंगी...?"

"मेरे पास चली आना !"

"मजाक न करो जी !"

"बोलो। मेरे पास रहने में क्या परेशानी है?"

"मगर दीदी...?" अचानक वह चुप हो गई। "मैं एक अजीब झंझट में फंस गई हूं।" वह बोली।

"बात क्या है...?"

"मेरी और रंजन की शादी नहीं हो सकती।"

"क्यों?"

"आप पत्र तो पढ़ चुके हैं।"

"इन खतों से जाहिर होता है कि तुम्हें उस लड़के के सिवा किसी और से शादी नहीं करनी चाहिए। वह तुम्हें चाहता है। तुम उससे प्यार करती हो। लड़का पढ़ा-लिखा है, नौकर है और क्या चाहिए?"

"माता-पिता नहीं मानते...मैंने पूछ लिया है उनसे।"

"तो फिर क्या करोगी?"

"मैं आत्महत्या कर लूंगी !"

मैं खड़ा हो गया और कमरे में टहलने लगा।

"क्या सोच रहे हैं आप?"

"यही कि तुम मुझे धोखा दे रही हो?"

"धोखा और आपको...!"

"वीना ! मैं तुमसे बड़ा हूं। मेरी शादी हो चुकी है।"

"तो क्या हुआ...?"

"हुआ यह कि जो खत तुमने फाड़ डाले, वे तुम्हारे प्रेमी के नहीं थे।"

"आप यह क्या कह रहे हैं?" वीना के गाल हल्दी की तरह पीले हो गए।

"हां, हां, जो कुछ कह रहा हूं, ठीक कह रहा हूं। शुरू में जब तुम्हारे प्रेमी के पत्र आने लगे तो मैं उन्हें असली पत्र समझता रहा। न जाने, उन पत्रों को पढ़ कर मेरे दिल में द्वेष की भावना क्यों पैदा हुई? मेरे मन में खोज का अहसास जागा। मैं एक जासूस सा बन गया और मेरी नजर मुहरों पर पड़ी। मैंने मुहरों को देखा, परखा और मुझे मालूम हुआ कि ये पत्र दिल्ली से पोस्ट नहीं किए गए थे। बंबई से पोस्ट किए गए थे। लिफाफों पर कहीं भी दिल्ली की मुहर नहीं थी। तुम इसकी पुष्टि चाहती हो? उस दिन मुझे अहसास हुआ कि तुम किसी को नहीं चाहतीं, मुझे चाहती हो !"

"नहीं, नहीं, नहीं ! !" वह रोते हुए कहने लगी, "भला मैं आपको क्यों चाहूंगी? आप मेरे क्या होते हैं? क्या आप मुझसे प्यार करते हैं? इतने दिन मैं आपके पास आती-जाती रही, कभी आपने प्यार का एक भी शब्द मुझसे कहा? मैं रात के दस बजे आप के कमरे में आई। आपने अपने दिल की धड़कनों को मेरे दिल की धड़कनों से एकसुर न होने दिया। मैंने आपको अपने कमरे में बुलाया। आप न आए ! मैं जानती हूं, आप मुझे नहीं चाहते, मुझसे घृणा करते हैं ! और जब आप मुझसे घृणा करते हैं, तो मैं आप से क्यों प्यार करूं? मुझे आप से प्यार नहीं, बिलकुल प्यार नहीं !" यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

"रोने से क्या होगा?"

"दीदी कहां हैं?"

"फिल्म देखने गई है।

"देखो वीना ! किसी को चाहना बुरी बात नहीं। प्यार एक अनमोल जज्बा है। जिंदगी का खुशनुमा फूल ! तुम्हारे प्यार की कदर करने लगा हूं। पहले मैं तुम्हें नहीं चाहता था, अब चाहने लगा हूं। लेकिन यह प्यार का फूल एक सहरा में खिला है। यह फूल एक ऐसे चश्मे की तरह है जिससे तुम्हारी प्यास न बुझ सकेगी। क्या तुम्हारे लिए इतना काफी नहीं है कि मैं तुम्हें चाहने लगा हूं, मगर तुमसे उम्र में बहुत बड़ा हूं और मैं जिंदगी के ऐसे मोड़ पर खड़ा हूं जिसका अगला कदम मौत है ! क्या प्यार के इजहार से तुम्हारी तृष्णा न मिटेगी? और फिर दीदी..."

"बस, बस ! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। जो मिलना था, मिल गया। शायद इन चंद शब्दों में आपने मुझे वह सब कुछ दे दिया है, जिसकी वर्षों से मुझे प्रतीक्षा थी....!" यह कह कर वीना कमरे से, रोती हुई और आंसू पोंछती हुई बाहर निकल गई !!

मिट्टी

मसीह-उल-हसन रिज़वी

ट्रेन एक झटके के साथ उस ग्रामीण स्टेशन पर रुक गई। पूरे ग्यारह वर्ष के बाद फ्रैंच-कट दाढ़ी वाले खानबहादुर अल्लाह दाद खां अपने जाने-पहचाने वातावरण में सांस लेने लगे। उन्होंने दूसरे दर्जे के डिब्बे की खिड़की से सिर बाहर निकाला। दूर शायद एक मील परे से उनके पुरखों के जमाने की बनाई हुई वही नीले रंग की कोठी के पीले बरामदे, उसी तरह ऊंचे टीले पर अपने पैर जमाए खड़े थे। उन्होंने बिस्तर बांधा, छोटी अटैची हाथ में ली और झट से स्टेशन पर उतर पड़े। बिलकुल वही फजा, चारों ओर नीम और आम के बूर की वही महक, कोयल की कूक, मोरों की मनोहर चिंघाड़ और लाल ईंटों से बना स्टेशन का कमरा। वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़े। उन्होंने किसी कुली को आवाज नहीं दी। स्टेशन पर उन्होंने अपने बचपन से किसी कुली की सूरत नहीं देखी थी। कदम बढ़ाते वह आहिस्ता-आहिस्ता गेट से बाहर निकल आए। उन्होंने एक बार बिस्तर और अटैची को जमीन पर टिका दिया। बायां हाथ माथे पर रख कर, दूर-दूर तक देखने की कोशिश की। जब इस तरह जी न भरा तो उन्होंने अपनी ऐनक उतारी, शीशे साफ किए और फिर आंखें झपका कर दूर-दूर तक देखने का प्रयास किया। कस्बे को जाने वाली सड़क उसी तरह सीधी चलती हुई क्षितिज में खो गई। उन्होंने एक बार फिर अटैची और बिस्तर को उठाया और उसी प्रकार नपे-तुले कदमों से इक्कों के अड्डे की ओर बढ़े। उन्हें पसीना आ गया था। वह बार-बार जेब से रूमाल निकाल कर अपना मुंह और माथा साफ करते थे ...उफ, ओह...! खानबहादुर अल्लाह दाद को पिछले दिन याद आ गए ! वे दिन जब वह स्टेशन पर चढ़ते या उतरते, तो एक भीड़ उनके साथ होती, बंदूकधारी आदर-सहित पीछे चलता, एक मुलाजिम सामान लिए रहता। कुछ मुसाहिब होते, कुछ गरजमंद लोग और खानबहदुर अपना भारी-भरकम वजूद लिए उनके बीच में यूं चलते, जैसे ये सारे लोग, यह वातावरण, यह धरती और आकाश सब कुछ उनका है। लेकिन अब ग्यारह वर्ष बाद उसी स्टेशन पर उतरे थे, तो उनको पहचानने वाला भी कोई न था। यहां तक कि उस हलवाई के स्थान पर, जिससे उन्होंने मनों पूरियां खा डाली थीं, कोई और बैठा हुआ था। दुकान

का नक्शा ही बदल गया था। उस विशाल पीपल के नीचे, जहां एक बड़ा सा तख्त पड़ा रहता था, अब कुर्सियां और मेजें लगी हुई थीं। शायद उनका पुराना हलवाई मर चुका था या फिर उनकी तरह वह कहीं चला गया था, अपना घर-बार छोड़ कर, सारे नाते तोड़ कर....कौन जाने...?

एकदम खानबहादुर चौंक पड़े। सामने से अपना बदन घसीटता वह नीम-पागल फकीर चला आ रहा था, जिसे उन्होंने हमेशा सराय के बाहर भीख मांगते देखा था, लेकिन अब वह बूढ़ा हो गया था। उसकी भूरी सी जटाएं सफेद हो गई थीं। दाढ़ी के बाल भी जगह-जगह से पक गए थे। वह बड़ी तेजी से अपने शरीर को घसीटता, आंखों में पिछली यादों की चिंगारियां लिए बढ़ रहा था.."खानबहादुर साहेब, खानबहादुर साहेब, भला हो, राम भला करे !" खानबहादुर साहब खड़े हो गए। एक अपार खुशी उनकी रग-रग में फैल गई। "मातादीन, मातादीन, तुम अच्छे तो हो?" उन्होंने अपना पर्स खोला। उसमें से एक अठन्नी निकाली और बूढ़े मातादीन के हाथ में पकड़ा दी...वह फिर आगे बढ़े। इक्कों का अड्डा आ गया था।

"खानबहादुर साहेब !"

"खानबहादुर साहेब !"

"खानबहादुर साहेब !"

अड्डा हैरानी और खुशी की आवाजों से गूंज उठा। कई इक्के वालों ने उन्हें पहचान लिया था और वे तेजी से उनकी ओर बढ़ रहे थे। खानबहादुर अल्लाह दाद ने भी कई इक्के वालों को पहचाना। उनकी आंखों में आंसू आ गए। "बस्ती चलना है सरकार, खानबहादुर?" की आवाजें गूंज उठीं। खानबहादुर ने आंसू पोंछने के लिए जेब से रूमाल निकाला। उनके हाथ कैसे खाली हो गए थे? सामान कहां चला गया था? जब आंसू पोंछ कर उन्होंने ऐनक लगाई, तो सामान लिए दो इक्के वाले खड़े थे। पता नहीं कब उनकी बेखबरी में बिस्तर और अटैची दूसरे हाथों में पहुंच गए थे। उन्होंने दोनों इक्के वालों को देखा और हल्के से मुस्कुरा दिए। ये इक्के वाले भी अब उनकी तरह बूढ़े हो गए थे। उन सब की जवानी कहां हवा हो गई थी? जमाने को क्या हो गया था? आखिर भावनाओं पर काबू पाकर खानबहादुर ने गला साफ करते हुए पूछा—"सब कुशल तो है?"

"हां सरकार, सब कुशल है।"

"पंडित मथुराप्रसाद पोस्ट-मास्टर अच्छे हैं?"

"उनका स्वर्गवास हो गया, सरकार !" खानबहादुर को एक धक्का सा लगा। पंडित मथुराप्रसाद उनके बचपन के साथियों में से थे। उन्होंने हिम्मत करके दो-एक और आदमियों की कुशलता पता करना चाही, परंतु उनकी जुबान लड़खड़ाने लगी। लेकिन उन्होंने पूछ

ही लिया।

"शेख जुहूरुद्दीन मजे में हैं?" इक्के वालों ने एक-दूसरे की तरफ देखा।

"सरकार, वह हज करने गए थे, वहां से लौट कर...।"

"मर गए !" खानबहादुर ने वाक्य पूरा किया और माथे के पसीने को एक बार फिर रगड़ दिया। इसी दौरान इक्के वालों में सवारी ले जाने पर कुछ झगड़ा होने लगा। खानबहादुर ने इस बहस में दिलचस्पी लेते हुए कहा, "हम दोनों इक्कों में चलेंगे। एक में सामान और एक में हम।"

इस किस्से से निबट कर, खानबहादुर एक इक्के के पायदान पर पैर रख कर धप्प से उसके जिस्म के अंदर समा गए और एक बार उन्होंने फिर माथे को रगड़ा। इक्कों का अड्डा घने पेड़ों के नीचे था, जिनके पत्ते धीरे-धीरे हिल रहे थे। इस ताजा हवा ने खानबहादुर के शरीर को अभी पूरी तरह सुखाया भी नहीं था कि इक्के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सड़क पर खड़खड़ाते हुए दौड़ने लगे। इस खड़खड़ाहट में जो संगीत था, उससे खानबहादुर के कान भली भांति परिचित थे। ग्यारह वर्षों की जुदाई के बाद वह अपने कस्बे को फिर लौट रहे थे, उस कस्बे की ओर जिसका कण-कण उनके अपने खून में समाया था।

छह मील का लंबा सफर सामने था। खानबहादुर को कस्बे में पहुंचने की जल्दी थी। रास्ता काटे नहीं कट रहा था। वह हजारों यत्न करने के बाद, बड़ी मुश्किल से अपने बच्चों से पीछा छुड़ा कर, अपनी जन्मभूमि आ सके थे और रास्ता कट नहीं रहा था। वह इक्केवाले बदलू से, कई-कई बार एक ही बात कर चुके थे। वह उसे बतला चुके थे कि वह एक सप्ताह कस्बे में रहेंगे। अपनी चचेरी बहन के यहां ठहरेंगे और फिर बदलू के इक्के पर ही सवार होकर दूर, बहुत दूर, वाघा के उस पार लौट जाएंगे और फिर शायद कभी भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को लौट कर न आ सकेंगे। उम्र का क्या भरोसा? आज मरे कल दूसरा दिन ! बदलू ने उन्हें कस्बे के हजारों किस्से सुना डाले थे। उसने उन्हें जहां और बातें बतलाई थीं, वहीं एक बात यह भी बतलाई थी कि उनकी चचेरी बहन का लड़का कामिल खुर्शीद पढ़-लिख कर अजीब तरह का हो गया है, बिलकुल खबती, अपने से बेखबर और दूसरों से बेखबर...

यह सब सुन कर खानबहादुर को एक झुरझुरी सी आ गई थी। उन्होंने भी कराची में अपने इस सिर-फिरे भानजे के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था। अब वह ये सब अपनी आंखों से देखेंगे। मालूम नहीं, अभी कौन-कौन से इंकलाब बाकी हैं ! उनके लिए तो यही इंकलाब क्या कम था कि वह अपने घर से बेघर हो गए थे! जायदाद, हवेलियां, बाग-बगीचे—सब से वंचित, एक नये देश के वासी, जहां की हर चीज उनके लिए अजनबी थी। लोग अजनबी, भाषा अजनबी, चारों ओर अजनबीपन ही अजनबीपन ! रहे नाम अल्लाह

का ! दो इक्के आगे-पीछे तेजी से दौड़ते चले जा रहे थे। उसी तेजी से खानबहादुर के दिमाग में तूफान उठ रहे थे। एक के बाद एक, निरंतर, लगातार, अनंत...बचपन, जवानी, बुढ़ापा, देश-निकाला और फिर वापसी...

इक्के एकदम से रुक गए। पड़ाव आ गया था। ऊंची कुर्सी का कुआं उसी जगह मौजूद था। खानबहादुर के दिमाग ने छलांग मारी। जब वह नौजवानी में इस जगह रुकते थे तो कुएं पर जवान और कुंवारी लड़कियों के झुंड के झुंड पानी भरते होते थे। उनमें से एक लड़की उन्हें अब तक याद थी, जो उनके कस्बे ही से ब्याह कर उस गांव में आई थी। वह जब भी उस तरफ से गुजरते, वह लड़की कहीं न कहीं उन्हें दिखाई दे जाती। कुएं पर, मंदिर के आस-पास या उस छोटे तालाब के किनारे। पर आज वह लड़की और गांव की बहू कहां होगी? कहां होगी वह? उनके दिमाग में यह सवाल गूंजा। बदलू ने उनके खयालों की लड़ी को तोड़ दिया। "सरकार, पानी पिएंगे, ताजा-मीठा?"

खानबहादुर ने अभी तक मुंह जूठा नहीं किया था। मगर 'नहीं' कहने की उनकी हिम्मत न हुई। उन्होंने बदलू के हाथ से लोटा लिया और गटागट पानी पीते चले गए। उनकी प्यास बुझी ही न थी !

घोड़े ताजादम होकर फिर अपनी मंजिल की ओर दौड़ने लगे। उनकी मंजिल, जो खुद खानबहादुर की भी मंजिल थी। अब दूर परे कुछ जानी-पहचानी चीजें दिखाई देने लगी थीं। मंदिर का सुनहरी कलश, मस्जिद की मीनारें और उससे उधर, कस्बे के निकास पर बाएं हाथ की तरफ स्थित कब्रिस्तान। घोड़े दौड़ रहे थे। खानबहादुर ने इक्के के पट पर बैठे-बैठे पहलू बदला। अब उन्होंने अन्यमनस्क होकर अपने माथे को रगड़ना शुरू कर दिया था। बार-बार ऐनक के शीशे साफ करते थे। कभी आंखें फाड़ कर चारों ओर देखते और जब सब चीजें उन्हें अपने भाग्य की तरह धुंधलाई नजर आतीं, तो वह ऐनक को आंखों पर चढ़ा लेते। एक बार उन्होंने अपने भारी जिस्म को फिर हरकत दी और बदलू की ओर हाथ से इशारा किया, "इक्का रोक लो।"

बदलू ने लगाम खींच ली। इक्का रुक गया था। उसने प्रश्नसूचक नजरों से खानबहादुर की तरफ देखा, "क्या बात है, सरकार?"

"जरा कब्रिस्तान तक होते चलें।" बदलू ने हैरानी से खानबहादुर की ओर देखा और इक्के को सड़क से उतार कर कब्रिस्तान जाने वाली पगडंडी पर डाल दिया। "गधे ! मूर्ख!" ...गुस्से में खानबहादुर के मुंह से निकला, "कब्रिस्तान में इक्कों पर कौन जाता है?" लेकिन फिर उन्होंने झट अपने गुस्से पर काबू पा लिया। लहजा नरम करते हुए बदलू से कहा, "तुम इक्का रोको। मैं अभी आता हूं।"

एक मिनट, दो मिनट, आधा घंटा गुजर गया...बदलू को खानबहादुर का बोझिल जिस्म

कब्रिस्तान में इधर-उधर झूमता नजर आता, परंतु वह फिर किसी पेड़ की ओट में ओझल हो जाता। आखिर लंबे इंतजार के बाद बदलू को खानबहादुर नजर आए। वह अपने माथे और आंखों को रूमाल से रगड़ते, धीरे-धीरे चले आ रहे थे। बदलू के मन में बिजली का एक कौंधा सा लपका। वह इक्के से कूद पड़ा। तेजी से खानबहादुर की ओर बढ़ा और उनका हाथ पकड़ कर इक्के पर चढ़ा दिया। फिर स्वयं अपने स्थान पर आकर बैठ गया और बिना कुछ कहे-सुने घोड़े को चाबुक मार कर कस्बे की ओर चल पड़ा...सड़क पर पहुंच कर खानबहादुर को याद आया कि एक इक्का उनका सामान लिए उनके साथ आ रहा है। दोनों इक्के आगे-पीछे सड़क पर दौड़ने लगे। सूरज अब काफी ऊंचा हो गया था। खानबहादुर का रूमाल पसीने में भीग गया था। वह बराबर माथे को रगड़ते जा रहे थे। बदलू ने इक्के को धीमा कर दिया। वह अब पक्की सराय के सामने से गुजर रहा था। अब बजरिया आई, बरगद का बूढ़ा वृक्ष गुजरा। इक्के ने मोड़ लिया। सामने पुश्तैनी मकान का फाटक था। खानबहादुर के गले में कोई चीज आकर अटक गई। खड़खड़ाते हुए पहिये रुक गए। बदलू इक्के से कूद पड़ा।

"बड़े सरकार आ गए।"

"बड़े सरकार आ गए।"

"बड़े सरकार आ गए।"

फाटक के चारों ओर रहने वाले लोग दौड़ पड़े। यह अचानक खानबहादुर किधर से आ गए थे ! चुपचाप, न किसी से कहा, न सुना। कामिल खुर्शीद मकान के भीतर से दौड़ा, "मामाजी, आप ! मामाजी !" उसने खानबहादुर के गले में अपने मजबूत हाथ डाल दिए। खानबहादुर, उसके कंधे पर सिर रख कर आंसू बहाने लगे। चारों ओर लोग जमा हो रहे थे। अपने, पराये, पड़ोसी, अजनबी। खानबहादुर की बहन भी ड्योढ़ी में आकर खड़ी हो गई थीं। उनका सारा शरीर कांप रहा था। आवाज कांप रही थी, "भाई साहब, भाई साहब! आप ने सूचना नहीं दी, वरना कल्लू को स्टेशन भेज देती। भाई जान !" खानबहादुर ने अपनी बूढ़ी बहन के सिर पर हाथ फेरा। सीने से लगा लिया और यह छोटा सा काफिला ड्योढ़ी से गुजर कर सहन में आ गया और वहां से बड़े दोहरे दालान में जाकर बैठ गया। नये-पुराने, हर प्रकार के किस्से छिड़ गए। एकदम खानबहादुर की बहन चौंकी, "चाय लाओ, भाई साहब चायें के तो बड़े शौकीन हैं।"

खानबहादुर ने बड़े गौर से बहन को देखा और धीरे से मुस्कुरा दिए, जैसे उनकी वाणी मूक हो गई हो।

खानबहादुर ने चाय पी। कामिल खुर्शीद ने बाहर आकर बताया कि मीर साहिब और ठाकुर साहिब और चेयरमैन साहिब मिलने आए हैं। खानबहादुर जनानखाने से बाहर आकर

बैठक में बैठ कर बड़ी देर तक बातें करते रहे। पुरानी यादों को कुरेद कर खानबहादुर ने एक-एक की कुशलता पूछी, मगर अपनी कुशलता और हालात को टालते रहे। इस गप-शप में दोपहर ढल गई। खानबहादुर ने खाना खाया और आराम करने के लिए लेट गए। उन्होंने वर्षों बाद इस यादगारी दोपहर में अपने स्वर्गीय पिता, बड़े खानसाहब को अपने में देखा जैसे वह आए हैं। और उनके पसीने से भीगे माथे को चूम रहे हैं। होंठों के इस स्पर्श से उनकी आंख खुल गई। उनका दिल धक-धक कर रहा था। हड़बड़ा कर पलंग से उठ खड़े हुए। शाम को खानबहादुर बस्ती की ओर सैर को निकले। ग्यारह वर्ष। हां, पूरे ग्यारह वर्ष में बस्ती में बड़े-बड़े इंकलाब आए थे। पुरानी इमारतें गिर गई थीं। जो नहीं गिरी थीं, वे गिरने वाली थीं। उनके स्थान पर नयी-नयी इमारतें बन गई थीं और बनती भी जा रही थीं। खानबहादुर टहलते, लोगों से मिलते, चिराग जलते पंडित मथुराप्रसाद के मकान पर पहुंचे। खाली किवाड़ों की ड्योढ़ी पर उन्होंने आवाज दी। कोई जवाब नहीं मिला। उन्होंने फिर आवाज दी। अब ड्योढ़ी में रोशनी चमकी और पंडित मथुराप्रसाद की विधवा ने किवाड़ों की ओट में से पूछा, "कौन है?" "अल्लाह दाद...!"

पंडिताइन ड्योढ़ी से चबूतरे पर आ गईं। "खान भईया, तुम, अरे तुम !" दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे। खानबहादुर की आंखें झुकी हुई थीं। "हां भाभी, मैं हूं। अल्लाह दाद !" वह देर तक सब की कुशल-मंगल पूछते रहे। पंडिताईन ने उनके बच्चों की खैरियत पूछी। दोनों एक-दूसरे को हालात बताते रहे। फिर खानबहादुर दूसरे दिन आने का वायदा करके घर पहुंचे। बहन, सहन में नमाज पढ़ कर बैठी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वह उन्हीं के पास बैठ गए और इधर-उधर की बातें करते रहे। उनकी सांस बार-बार फूल जाती थी।

इतने में कामिल खुर्शीद आ गया और खानबहादुर उसके भविष्य की योजनाओं, उसके इरादों और उसके फार्म की सफलता के बारे में बातें करते रहे। उन्होनें एक बार आकाश की ओर देखा। ठंडी आह भरी और घुटनों पर हाथ रख कर खड़े हो गए। कामिल खुर्शीद ने प्रश्नसूचक नजरों से उनकी ओर देखा, "आराम, कीजिएगा, मामाजी....!" "हां भई, दो दिन से जाग रहे हैं, अब सोएंगे। शुभ रात्रि !" कामिल उनके साथ बाहर तक आया। बिस्तर लगाया और उनकी ओर से संतुष्ट होने के बाद, अपने कामों में व्यस्त हो गया। अभी रात अधिक नहीं गुजरी थी, मगर खानबहादुर सो गए। ग्यारह साल से इतनी गहरी नींद उन्हें कभी नहीं आई थी। जब वह सुबह, फजर की नमाज के लिए नहीं उठे तो उनकी बहन ने अंदर से उनको जगाने के लिए आदमी भेजा।

"सरकार, सरकार, सरकार!"

मगर सरकार गहरी नींद में सोए पड़े थे। बहन नंगे पांव बाहर को दौड़ पड़ीं। "भाई

साहब"... "मामाजी...!" देखते ही देखते फाटक के बाहर और अंदर चबूतरे पर, हर तरफ लोगों की भीड़ लग गई। खानबहादुर ग्यारह वर्ष के वनवास के बाद देश वापस आए थे। जिन लोगों ने एक दिन पहले उनसे मुलाकात नहीं की थी, वे भी उनसे मिलने के लिए दौड़ रहे थे। आखिर उन्हें उन हाथों ने गुस्ल दे दिया, जिनसे मिलने के लिए वह सैकड़ों मील का सफर तय करके अचानक कस्बे में आए थे। उनकी बूढ़ी बहन रो रही थीं। भांजा रो रहा था। बदलू रो रहा था। फिर किसी ने कहा, "शव का मुंह देख लो।" धीरे से किसी ने कफन सरका दिया। उनकी भूरी-सफेद, फ्रैंच-कट दाढ़ी के ऊपर होंठ मुस्कुराए जा रहे थे, जैसे उनके स्वामी ने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया हो। जैसे उनके बाप, बड़े खानसाहिब ने पितृ-प्रेम से चूम कर उन पर मुहब्बत की मुहर लगा दी हो।

फिर धीरे-धीरे अर्थी उस कब्रिस्तान की ओर चल दी जिसमें एक दिन पहले, स्वर्गीय खानबहादुर भटकते फिरे थे। बूढ़ी पठानी हवेली की ड्योढ़ी में खड़ी अपने सफेद दुपट्टे में आंसू सोख रही थीं और हौले-हौले कोई आयत पढ़ती जा रही थीं। आज आधी सदी के बाद, पुरानी दुनिया से उनके सारे रिश्ते-नाते टूट गए थे।

आशियां

नूर शाह

तारकोल की चमकती, बल खाती यह सड़क डल के सुंदर नीले किनारे के साथ-साथ ऐसे जाती है, जैसे झील की सुंदरी अपनी सुनहरी साड़ी पर रुपहला गोटा लगा कर उतर रही हो और फिर इस गोटे के किनारे सफेद विलायती गुलाबों की भरमार....बाहरी आदमकद ड्योढ़ी और उसके नीचे से गुजरने के बाद फर्लांग भर लंबी, तीर की तरह गुजरती हुई हसीन राह-गुजर !

दोनों ओर सफेदे के हरे-भरे, ऊंचे-ऊंचे पेड़ और उनके पांवों से स्पर्श करती हुई, पतली-पतली सी क्यारियां जिनमें सूरजमुखी और नरगिस अठखेलियां करते नजर आते हैं।

इस रास्ते से गुजरते चाल में जैसे एक जादुई कशिश के साथ हल्कापन भी आ जाता है। लगता है, जैसे कोई अनजाने ही, अचानक मंत्र-मुग्ध माहौल में फंस गया हो। कदम अपने आप आगे की ओर बढ़ने लगते हैं। आगे, और आगे और वह फर्लांग भर राह-गुजर एक नयी दुनिया में जाकर खत्म हो जाती है और सहसा रंगों और सुगंधों के तूफान में खोया हुआ परीलोक नजरों के सामने आ जाता है—वह छोटा सा लान, जिसके दायें कोने पर एक छोटा सा चश्मा उबल-उबल कर लान की दीवारों के साथ फैले हुए, तराशे हुए चिनारों की ठंडी छांव में धीरे-धीरे लपक-लपक कर बहता है। और सजी-संवरी हुई सुंदर क्यारियां और उन क्यारियों में फूलों की वह भरमार, कि नजर खो जाए ! बायें किनारे शगूफों की भरमार लिए शफतालू के वृक्षों की लंबी कतार और उन तिलस्मी दृश्यों के बीच वह एक जादूगरनी की तरह अपने तिलस्मी नजारे बिखेरे खड़ी है।

यह आशियां है..और आशियां कोठी का नाम है। शाम के धुंधलकों में इस लंबी और फैली हुई सड़क पर से गुजरते हुए कई बार मेरे दिल में यह इच्छा उभर-उभर कर दम तोड़ चुकी है कि काश...काश, डल के किनारे बसे हुए रंग और सुगंध के इस सुंदर माहौल में अपना भी एक आशियां होता !....अपना एक आशियां ! और मेरा यह आशियां एक सपने का नाम है। सपने, जो मेरे नहीं; सपने, जो कभी पूरे नहीं होते; सपने, जो साकार नहीं होते...और अपना एक आशियां ! और यह आशियां एक दिल का नाम है। दिल, जो मेरा

है और मैं अकसर सोचता रहता हूं। मेरा यह दिल किस चीज का बना हुआ है, मेरा दिल आखिर क्या है? फिर इस अंधेरे दिल की खिड़की से उत्तर उभरता है, मेरा दिल तनहाई का एक जंगल है, जिस के इर्द-गिर्द धूल से अटी हुई कांटेदार झाड़ियां हैं और इन झाड़ियों के सिरे नोकदार कांटों से भरे पड़े हैं। मैं कई बार इन कांटों से उलझा हूं। ये मेरे दिल के अंदर गड़ गए हैं और खून के छींटों से मेरा सपना दागदार हो चुका है। मेरा वह ख्वाब, जिसकी ताबीर आशियां है।

लेकिन यह तब की बात है जब आशियां से मेरा कोई संबंध नहीं था। अब आशियां से मेरा गहरा संबंध है। मैं सूरजमुखी और नरगिस को अठखेलियां करते देख सकता हूं। चश्मे का ठंडा-मीठा पानी पी सकता हूं। अब मैं आशियां के एक-एक क्षण का राजदार हूं। इसकी शामें मेरे बगैर अधूरी हैं। आशियां की शामें, जो बड़ी सुहावनी होती हैं। ठंडी शामें, ठंडी हवाएं, चश्मे का ठंडा पानी, जो लपक-लपक कर बहता है और...सफेद रंग की साड़ी में एक खिली हुई कली की भांति अपना सफेद जिस्म लिए शगुफता इस परीलोक में एक राजकुमारी से कुछ कम नहीं। जब संध्या के लंबे साये रात की ओर झुकने लगते हैं और रेडियोग्राम पर अंग्रेजी धुनें बजने लगती हैं तो सुनहरे रंग के ईरानी फर्श पर शगुफता की लहराती बांहें फैल जाती हैं और शरीर के हर हिस्से में गजब की लचक आ जाती है। लगता है जैसे नोश लब...शगुफता की मम्मी, मिसिज पांडे जिसने जिंदगी के अनगिनत उतार-चढ़ाव और दुख-सुख देखे हैं, अपनी बेटी को नोश लब के नाम से पुकारती है।

'नोश लब'—होंठों से पी जाने वाली !

कहते हैं कि अनेक दुख उठाने के बाद, अजब मलिक ने दूर से एक बस्ती के चिह्न देखे। उसकी ओर कदम बढ़ाते हुए उसे संतोष सा मिल गया। उसने किसी से पूछे बगैर दरवाजा खोल दिया और अंदर आया। उसने देखा कि कोई सुकुमारी सुनहरी तख्त पर सपनों में खोई है। वह सुकुमारी सपने से जागी और उसने एक पुरुष को अपने सिरहाने देखा, तो उसने गुस्से से कहा, "कौन हैं आप?"

वह ऊंची इमारत आशियां थी।

वह सुंदरी शगुफता थी, लेकिन वह मर्द अजब मलिक नहीं था बल्कि मैं था और मुझे मिसिज पांडे ने वहां आने के लिए कहा था, जो दो दिन पहले एक पार्टी में मिली थीं।

"मैं मिसिज पांडे से मिलने आया हूं।"

उसने घूर कर मेरी ओर देखा। उसकी आंखों में गुस्से की झलक थी....

"लेकिन आप बिना पूछे अंदर कैसे आ गए?" अगर मैं अजब मलिक होता, तो शायद वह मुझसे ऐसा प्रश्न न पूछती, लेकिन मैं अजब मलिक नहीं था, मैं तो...जाने दीजिए।

"मुझे खेद है।" मैंने संक्षिप्त से लहजे में कहा, चाहे मैं उसे बताना चाहता था कि

मैं अपने सपनों के महल में घुस आया हूं। परंतु मैं यह सब कुछ न बता सका, क्योंकि मेरा सपना टूट चुका था।

"मम्मी यहां नहीं हैं !"

इस बस्ती में आने के लिए मैंने सोच-सोच कर ही कितने दुख उठाए थे। शायद अजब मलिक ने भी नोश लब की तलाश में इतने दुख न उठाए हों। मेरे लिए आशियां अजब मलिक की नोश लब से कुछ कम न था और जब परीलोक से तारकोल की चमकती सड़क पर दोबारा लौट आया, तो मुझे महसूस हुआ कि मैं निश्चय ही अपने सपनों की नोश लब को अंदर छोड़ आया हूं।

और फिर ऐसा हुआ, मिसिज भाटिया की वर्षगांठ थी। खुदा जाने कौन सी वर्षगांठ थी, सारे हाऊस-बोट में मेहंदी के फूलों की सुगंध रमी हुई थी। सिगरेटों का मिला-जुला धुआं ऊपर ही ऊपर बिखर रहा था। सामने मिसिज भाटिया का नया चित्र लटक रहा था। अजीब सा महौल था, जैसे वह हाऊस-बोट न हो, कल्पना-लोक का कोई टापू हो। मिसिज भाटिया की किसी पेंटिंग पर बात हो रही थी। मिस्टर भाटिया प्रशंसा कर रहे थे। मैं खामोश था। मिसिज पांडे मेरे निकट आईं...

"खामोश क्यों हो, नींद आ रही है क्या?"

"नहीं तो," मैंने कहा।

"लेकिन तुम्हारी आंखें बता रही हैं।"

"आंख तो बहुत कुछ बताती हैं," मैंने मुस्कुराते हुए कहा।

"क्या?"

"पढ़ लीजिए।"

"तुम आर्टिस्ट लोग हमेशा उलझी-उलझी बातें करते हो, आओ जरा।"

"कहां?"

उसने कोई उत्तर न दिया। वह टेबल के सामने खड़ी हुई और दो गिलासों में जान हेग डाल दी। एक गिलास मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "तुमने उस दिन आशियां आने का वायदा किया था !"

'आशियां....आशियां !' मेरा दिल जोर-जोर से धड़का।

"आया तो था।"

"मुझ से किसी ने नहीं कहा। कौन था वहां?"

"शायद वह आप की...।"

"नोश लब होगी।"

"नोश लब?" मैंने हैरानी से कहा।

"हां, मेरी बच्ची शगुफता....हम उसे नोश लब के नाम से पुकारते हैं।"

मुझे शराब पीने की आदत नहीं, पर कभी-कभी किसी पार्टी में साथ देना पड़ता है। मैं सिर्फ ऐसी पार्टियों में शामिल होता हूं जिनका संबंध मेरे व्यवसाय से हो। मिसिज भाटिया की वर्षगांठ थी और कुछ नये चित्रों की प्रदर्शनी भी.... मैं भी आमंत्रित था और फिर कल्पना-लोक का टापू हो, जान हेग की बोतलें हों, मिसिज पांडे अपने हाथ से पिला रही हों, तो कौन कमबख्त इंकार कर सकता है ! ह्विस्की बेतहाशा बहती रही। मैंने न जाने कितने पैग उंडेल लिए।

जब रात काफी भीग गई और सब मेहमान जाने लगे, तो मैंने भी जाना चाहा, लेकिन मेरे कदम लड़खड़ा रहे थे। मिसिज पांडे ने मुझे सहारा दिया और अपनी कार में बिठा लिया।

"आप मुझे कहां ले जा रही हैं?" मैंने पूछा।

"आशियां," उन्होंने धीरे से कहा।

आशियां का नाम सुन कर, मैं जैसे गहरी नींद से जाग उठा। आशियां, मेरे सपनों का महल ! इसी महल में एक परी रहती है और उस परी का नाम नोश लब है...नोश लब !

मिसिज पांडे ने कार खड़ी कर ली। मेरा हाथ थाम लिया और मुझे ड्राइंग-रूम में ले गईं।

"तुम अभी सोईं नहीं?"

"मम्मी, तुमने आज बहुत देर कर दी !"

"जाओ, सो जाओ।"

"मम्मी यह...?"

"यह कैसर है, आर्टिस्ट। तुमने नाम सुना होगा ! पहले भी यहां आया था।"

"कैसर...।" उसने अब मेरी तरफ मुड़ कर कहा।

"नोश लब को भी चित्र बनाने का जनून है।"

मैंने चौंक कर देखा...।

नोश लब...होंठों से पी जाने वाली !

जैसे वह लड़की न हो, जान हेग की बोतल हो।

"अब तुम सो जाओ। कल अपने चित्र दिखाना।"

वह चली गई और मेरे दिल में एक हलचल सी हुई।

"सुनो।"

"कहिए।"

"यहां आओ।"

"मैं यहां ठीक हूं।"

"आ भी जाओ।"

"नहीं, अब मैं जाना चाहता हूं।"

"कहां?"

"घर।"

"तुम्हारा घर भी है?"

मेरा भी घर है? मैं अपने आप से पूछने लगा। हां, हां, घर है, लेकिन वहां न तराशे हुए चिनार हैं, न रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियां और न सफेद विलायती गुलाब...उसकी खिड़कियों पर परदे नहीं लटक रहे, कमरों में कालीन नहीं बिछे हैं। फिर भी वह मेरा घर है और उस घर में मेरी जिंदगी के अनगिनत क्षणों की कहानियां मेरे चित्रों में झलक रही हैं।

"क्या सोचने लगे?"

"घर के बारे में सोच रहा हूं।"

"क्या?"

"जाने दीजिए। मेरे घर के बारे में जान कर क्या करेंगी आप?"

मिसिज पांडे की एक लंबी हंसी फूटी, जैसे अचानक जल-तरंग बज उठे हों। मेरे दिल में एक बार फिर हलचल सी हुई। मैंने अपने दिल को संभाला और उठ खड़ा हुआ।

"तुम कितने भोले हो?"

"जी।"

"बैठ जाओ...यहां....मेरे पास।"

"जी।"

"आ भी जाओ।"

"नहीं।"

"तुम कुछ कहना नहीं चाहते? तुम्हारे मन में कोई इच्छा नहीं?"

फिर अपने मन से सवाल करना पड़ेगा। क्या निश्चय ही मैं कुछ चाहता हूं? निश्चय ही मेरे मन में इच्छा है, कोई अरमान है...? हां, एक बड़ी इच्छा है कि डल के किनारे अपना भी एक आशियां होता और उस आशियां में मेरा एक सुंदर स्टूडियो होता, ताकि मैं शांति और प्यार से अपने चित्रों का सृजन कर सकता !

"फिर सोचने लगे।"

"कुछ याद कर रहा था।"

"क्या?"

"एक अरबी लोक-कथा।"

"हमें भी सुनाओ !"

"अरबी लोक-कथा...! कहते हैं एक शहर में एक अजनबी..."

"मम्मी !" हम दोनों चौंक पड़े। दरवाजे पर शगुफता खड़ी थी।

"क्या है?" मिसिज़ पांडे ने तेज लहजे में कहा।

"मम्मी, अकेले डर लग रहा है !"

"तुम्हें डर लग रहा है ! अब मैं क्या करूं? जाओ, सो जाओ, मैं अभी आती हूं।"

वह फिर चली गई...इतने स्वपनिल माहौल में डर कैसा?

"कैसर !"

"मैं अब चलता हूं।"

"रुक जाओ, तुम यहां आराम से सो सकते हो।"

"नहीं...फिर आऊंगा।"

"कब?"

"कल शाम को।"

"वायदा !"

"वायदा।"

मैं आशियां से दूसरी बार चला आया। पहली बार निकाला गया था। अब की बार खुद निकला था। मैं चाहता, तो आराम से सो सकता था। अपने ख्वाबों के महल में घूम-फिर सकता था। लेकिन न जाने वह अरबी कहानी क्यों बार-बार याद आ रही थी ! कहते हैं, उस शहर में वह अजनबी था। रात बिताने के लिए वह एक सराय में घुस गया। वास्तव में, वह सराय न थी, एक बड़े अरबी सौदागर का महल था। जब उसे पता चला कि वह सराय नहीं, महल है, तो वह घबरा गया। लेकिन अरबी सौदागर ने उसके साथ प्यार का व्यवहार किया और अजनबी ने जब वहीं ठहरने का इरादा जाहिर किया, तो खूब मेहमान-नवाजी हुई। उसके सोने के लिए खूबसूरत बिस्तर बिछा दिया गया, लेकिन वह सारी रात न सो सका। सुबह उठा, तो अरबी सौदागर ने पूछा—"आंखें लाल क्यों हैं? नींद नहीं आई !"

अजनबी ने जवाब दिया, "मुझे आपके रेशमी बिस्तर पर नींद कैसे आ सकती थी, जबकि उसे देख कर मुझे अपने खेत याद आ रहे थे ! मैं मुलायम बिछौने पर कैसे बैठ सकता था जबकि मुझे अपने मोटे खुरदरे कपड़े याद आ रहे थे और...."

मैं रुकता, तो शायद आशियां में मेरी हालत उस अजनबी की सी ही होती। कहां रेशम का बिस्तर, गहरे गरम गद्देदार सोफे और कहां मेरा...! मैं जब घर पहुंचा, तो सामने

वाले मकान में मुर्गा बांग दे रहा था।

उठो ! सुबह हो गई...और मैं सोने के लिए जा रहा था। बड़े लोग अंधेरे में जागते हैं और उजाले में सोते हैं। आज उनके लिए मैं भी बड़ा आदमी बन गया था।

आदमकद ड्योढ़ी के अंदर कदम रखते ही, सफेद गुलाबों ने मेरा स्वागत किया। लगा, जैसे सफेदे के ऊंचे-ऊंचे पेड़ मुझे देखते ही झुक गए हों। अंदर पहुंचा तो नौकर से पता चला कि मिसिज पांडे अभी-अभी बाहर गई हैं।

"और नोश लब?" मैंने नौकर से पूछा।

"अंदर है।"

"कह दो, कैसर आया है...।" मैं ड्राइंग-रूम में बैठ गया।

शगुफता अंदर आई।

मेरे होंठ खामोश हो गए। वह शायद अभी-अभी नहा कर आ रही थी ! उसके बाल जैसे शबनम की बूंदों से भीग गए थे। उसकी आंखों में जैसे ऊपर खैयाम की सारी शायरी सिमट कर आ गई थी। होंठ, जैसे होंठ न हों, पंपोश की पत्तियां हों, गुलाब की पंखुड़ियां हों। इतने नाजुक, इतने खूबसूरत ! और अर्ध-नग्न उरोज जैसे उरोज न हों, अंगूर के दो गुच्छे हों, रसदार गुच्छे, मीठे और मजेदार...। मेरी आंखें पथरा गईं। एक क्षण की बात थी ! मेरे पास ब्रुश और रंग होते, तो मैं उस एक क्षण की कहानी को कैनवस पर उतार देता।

वह निकट आई, "मम्मी नहीं है।" उसके स्वर में गुस्से की झलक थी, लेकिन उसकी सांसों में कीकर के फूलों की महक थी।

"नोश लब !"

"मेरा नाम शगुफता पांडे है।"

नाम शगुफता पांडे नहीं हो सकता ! जान हेग होना चाहिए।

मैंने पलकें झपकाईं। नोश लब चली गई थी। मैं उसके कदमों के निशानों को देखता रहा और बस देखता ही रह गया।

"क्षमा करना, कैसर ! मैं जरा शापिंग करने गई थी।" मिसिज पांडे ने अंदर आकर कहा।

"नोश...नोश...नोश लब...शगुफता, कहां हो?" विचारों की लड़ी टूट गई।

"मम्मी, आ रही हूं।" दूर से आवाज आई।

"तुम कब आए, कैसर?"

"बस, आ ही रहा हूं।"

"आओ, बाहर बैठते हैं।"

हम बाहर आ गए। चिनारों की ठंडी छांव में बैठ गए। मैंने पहली बार चश्मे का ठंडा पानी पिया।

"कोई बात करो।"

"क्या बात करूं?"

"तुम कितने शर्मीले हो !"

मैंने बात का रुख फेर दिया—"आप के चश्मे का पानी बड़ा मीठा और स्वादिष्ट है।"

"तुम्हें पसंद आया?"

"मिठास और स्वाद किसे पसंद नहीं आएगा !"

"चश्मा तुम्हारा है। प्यास बुझा लो।"

"मैं प्यासा नहीं हूं।"

"कैसर, तुम मेरी बातें...." मिसिज पांडे अपना वाक्य पूरा न कर सकीं।

"क्या है, मम्मी?" शगुफता ने आकर कहा। मैंने मिसिज पांडे की ओर देखा और मुझे लगा, जैसे उनकी आंखें कह रही हों, तुम हमेशा बेवक्त आती हो। लेकिन आंखों की बातें शगुफता न समझ सकी।

"अपने चित्र कैसर को दिखाओ।"

"मम्मी !"

"हां, हां, ले आओ और अलिया से कह दो कि वह काफी बना कर ले आए।"

काफी के साथ-साथ शगुफता के चित्र भी आए। मैंने एक-एक चित्र देखा। फिर शगुफता की ओर देखा। वह मेरी राय जानने की प्रतीक्षा में थी, परंतु ऐसी खामोश और शांतिपूर्ण थी जैसे उन चित्रों का उसके साथ कोई संबंध ही न हो। कुछ चित्र निश्चय ही अच्छे थे और मैं चाहता था कि प्रशंसा करूं, लेकिन मैंने अपने अंदर के चित्रकार को सुला दिया। ये चित्र शगुफता के हैं और वह मेरे साथ बेरुखी से पेश आती है।

"कुछ जुबान से भी बोलो !" मिसिज पांडे ने कहा।

"कोई बात हो तो जुबान खोलूं।"

"क्या?" शगुफता चिल्लाई।

"पहली बात तो यह है कि इन चित्रों में गलत रंगों का प्रयोग किया गया है।"

"नहीं।" अब की बार आवाज धीमी थी।

"नोश लब, बात तो पूरी सुनो।"

"नहीं मम्मी, यह गलत कह रहे हैं।"

मैंने एक बार फिर शगुफता की तरफ देखा। सारे संसार की उदासियां उसके चेहरे

पर जमा हो गई थीं।

"मम्मी, मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती...अलिया..अरे अलिया, यहां आओ। यह चित्र मेरे कमरे में रख दो।"

मैं जिसे अपनी जीत समझता था, वह वास्तव में, मेरी हार थी।

एक साथ कई दिन गुजर गए। ये दिन जिंदगी के लंबे और खामोश रास्ते पर किसी को तलाश करते गुजर गए। मंजिल सामने थी। मंजिल दूर थी। दिल को कई बार टटोला। जमीन में झांका। अपने अंदर के चित्रकार को जगाया। धीरे-धीरे सपनों के टापू फिर जगमगाने लगे...कहते हैं कि बड़ी तलाश के बाद आखिर अजब मलिक ने नोश लब को पा लिया था। लेकिन नोश लब की मां नहीं चाहती थी कि अजब मलिक...!

जी हां, जब मैं वह चित्र लेकर आशियां गया, वही विचित्र सा चित्र, जिसमें एक कली थी, एक भंवरा था और एक चील थी। कली भंवरे की प्रतीक्षा में मग्न। भंवरा कली का इच्छुक और चील...मिसिज पांडे मौजूद नहीं थीं। शगुफता लान में बैठी पेंटिंग कर रही थी। मुझे देख कर मुस्कुराई।

"बहुत सुंदर है !"

उसने कहा, "आप बड़े दिनों बाद आए।"

"आप की मम्मी कहां हैं?"

"आप मम्मी से मिलने आए हैं?"

मैं चुप हो गया।

"यह आप क्या ले आए हैं?"

मैंने चित्र सामने रख दिया। उसने गौर से देखा और उदास स्वर में कहा, "मम्मी यह चित्र देखेंगी तो बहुत बुरा होगा।"

"मैं यह चित्र मिसिज पांडे के लिए नहीं लाया हूं।"

"फिर !"

"आप के लिए।"

वह चित्र लेकर चली गई।

अतीत के धुंधलकों में खोना मेरी पुरानी आदत है। बात आशियां की शामों की हो रही थी। आशियां की शामें, जो बड़ी सुहावनी होती हैं। जहां सुनहरी रंग के ईरानी फर्श पर शगुफता की लहराती बांहें फैल जाती हैं। शरीर के प्रत्येक हिस्से में लचक आ जाती है। यहां प्यार करने के लिए चित्रों का सहारा लेना पड़ता है। परंतु ये बातें अब पुरानी हो

चुकी हैं। आज शाम तक शायद पुरानी न थीं। आज मुझे आशियां की कोई इच्छा नहीं। वह इच्छा कि डल झील के किनारे बसे हुए रंगों और सुगंधों के सुंदर मेल में, अपना भी एक आशियां होता, अब दम तोड़ चुकी है। मेरा 'आशियां' तो मेरा घर है, जहां न तराशे हुए चिनार हैं, न फूलों की क्यारियां, न चश्मे का ठंडा पानी, न सफेदे के पेड़। ईरानी कालीन और नरम सोफे नहीं हैं। मुझे अपने घर का खुरदरा फर्श ही पसंद है। मैं तो उस अरबी लोक-कथा का अजनबी हूं।

आज, जब मैं रोज की तरह आशियां गया तो मिसिज पांडे अपने कमरे में थीं। मैंने अपने आने की सूचना भिजवाई, तो मुझे ऊपर ही बुला लिया गया। वह अपने बिस्तर पर लेटी हुई थीं और सामने जान हेग की बोतल खुली हुई थी।

"मिसिज पांडे, आप की तबियत !"

"तबियत मेरी ठीक है। बस सरदी महसूस हो रही है।"

मैंने गिलासों में शराब उंडेल दी। उन्होंने एक ही घूंट में अपना गिलास खाली कर दिया। मैंने दोबारा भरा और फिर भरता ही गया। मुझे खुद भी नशा होने लगा। कमरे की हर चीज निखरती नजर आई। शायद शराब पीने के बाद आदमी के दिमाग की राहें खुल जाती हैं। मैंने मिसिज पांडे की ओर देखा।

"यहां आओ।"

"नहीं।"

"आओ भी !"

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। "तुम्हारे मन में कोई इच्छा नहीं?"

"हां-हां, एक इच्छा यह तो है कि आप के आशियां जैसा अपना भी एक आशियां हो और उस आशियां में एक परी हो और उस परी का नाम नोश लब हो, मैं अजब मलिक बन कर....?"

"कैसर !"

"हां, मैं नोश लब को चाहता हूं और वह भी...।"

"कैसर, यह तुम क्या कह रहे हो? मेरी ओर देखो। मैं तुम्हें पसंद करती हूं। मेरे पास आओ। मेरे दिल के आशियां को आबाद कर दो। मेरी प्यास बुझा दो।"

"आप खुद ही चश्मा हैं।"

"मेरी बात समझो, कैसर...कैसर, आओ।"

"मैडम, आपने मेरा वह चित्र नहीं देखा।"

"कौन सा चित्र !"

"एक कली, एक भंवरा और एक चील। मैंने ठीक ही सोचा था। आप एक चील

हैं, बूढ़ी चील और..."

"कैसर !"

मैं कमरे से बाहर निकल आया। मेरा सारा नशा उतर चुका था। मैं नीचे आया, यह सोच कर कि शगुफता से मिलूंगा। उससे मिल कर भविष्य के बारे में फैसला करूंगा। शगुफता के कमरे का दरवाजा आधा खुला था। मैंने परदे की ओट से झांका...नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता...नोश का सिर अलिया के सीने से लगा हुआ था। मैं लौट आया। एक आवाज मेरे कानों से टकराई।

"अलिया, जानते हो मम्मी डैडी के मरने के बाद हर दूसरे-तीसरे महीने किसी न किसी को दोस्त बनाती हैं और अब कैसर...मुझे इस कैसर से बचाओ और मम्मी...उन्हें बाहर फेंक दो...तुम कितने अच्छे हो, अलिया, कितने सादा !...अलिया...आज़ से तुम अली मोहम्मद हो, अलिया नहीं..."

उसके बाद मुझसे कुछ भी न सुना गया।

और हां, अब मुझे ऐसे आशियां की कोई जरूरत नहीं, जहां...जहां...मेरा आशियां तो मेरा घर है। और मैंने अभी-अभी अपने छोटे से घर के बाहर एक बोर्ड टांग दिया है, जिस पर मैंने 'आशियां' लिखा है। रंगों और रोशनियों में बसे हुए परीलोक के आशियां से मेरा यह आशियां कितना अच्छा है, कितना सुंदर...!!!

उतरन

वाजिदा तबस्सुम

"निक्को अल्ला, मेरे को बहोत शरम लगती है।"

"ऐओ, इसमें शरम की क्या बात है? मैं नई उतारी क्या अपने कपड़े?"

"ऊं...।" चमकी शरमाई !

"अब उतारती है कि बोलूं अन्ना बी को?" शहजादी पाशा, जिसकी रग-रग में हुक्म चलाने की आदत रमी हुई थी, चिल्ला कर बोली। चमकी ने कुछ डरते-डरते, कुछ शरमाते-शरमाते अपने छोटे-छोटे हाथों से पहले तो अपना कुरता उतारा, फिर पायजामा ...फिर शहजादी पाशा के हुक्म पर झाग-भरे टब में उसके साथ कूद पड़ी।

दोनों नहा चुकीं तो शहजादी पाशा ऐसी मुहब्बत से, जिसमें अभिमान और स्वामित्व की गहरी छाप थी, मुस्कुरा कर बोली, "होर तू यह बता कि अब तू कपड़े कौन से पेन रई?" "कपड़े?" शहजादी पाशा हैरानी से चिल्ला कर नाक सिकोड़ते हुए बोली, "इत्ते गंदे, बदबू वाले? फिर पानी से नहाने का फायदा?"

चमकी ने जवाब देने के बजाय उलटा एक सवाल जड़ दिया, "होर आप क्या पैन रहे, पाशा?" "मैं?" शहजादी पाशा बड़े संतोष और गर्व से बोली, "वह मेरी बिस्मिल्लाह के वक्त चमक-चमक का जोड़ा मेरी दादी मां बनाए थे, वोईच, मगर तूने काये को पूछी?"

चमकी क्षण भर के लिए सोच में पड़ गई। फिर हंस कर बोली, "मैं सोच रई थी...।" शहजादी पाशा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "क्या?" कि एक-दम उधर से अन्ना बी की तेज चिंघाड़ सुनाई दी, "हो पाशा ! ये मेरे को हमाम में से भगाए को तुम इस उजाड़-मारी चोट्टी के साथ क्या बातें मारने ले बैठीं...? जलदी निकलो, नईं तो बी पाशा को अब्बी जा को बोलतीऊं।" अपनी सोची हुई बात चमकी ने जल्दी से कह सुनाई, "पाशा, मैं सोच रई थी कि कब्बी आप होर मैं 'ओढ़नी बदल' बहनां बन गए तो आप के कपड़े मैं भी पहन ले सकती ना?"

"मेरे कपड़े? तेरा मतलब है कि वो सारे कपड़े जो मेरे संदूकां भर-भर को रखे पड़े हैं !"

उत्तर में चमकी ने जरा डर कर सिर हिलाया। शहजादी पाशा हंसते-हंसते दोहरी हो गई। "ऐओ, कितनी बेवकूफ छोकरी है। आगे तू तो नौकरानी है, तू तो मेरी उतरन पहनती है। होर उम्र भर उतरन ही पहनेगी।"

फिर शहजादी पाशा ने अपार-प्यार से, जिस में अभिमान और गर्व अधिक, निष्कपटता कम थी, अपना अभी-अभी का नहाने के लिए उतारा जोड़ा चमकी की ओर उछाल दिया, "ये ले, यह उतरन पहन ले। मेरे पास तो बहोत कपड़े हैं।"

चमकी को क्रोध आ गया, "मैं काय को पहनूं, आप पहनो न मेरा जोड़ा।" उसने अपने मैले जोड़े की ओर इशारा किया। शहजादी पाशा गुस्से से हुंकारी, "अन्ना बी, अन्ना बी...!"

अन्ना बी ने जोर से दरवाजे को भड़भड़ाया और दरवाजा, जो सिर्फ हल्का सा भिड़ा हुआ था, पाटों-पाट खुल गया, "अच्छा, तो आप दोनों साहिबान अभी तक नंगेइच खड़े वे हैं...!" अन्ना बी नाक पर उंगली रख कर बनावटी गुस्से से बोलीं।

शहजादी पाशा ने झट स्टैंड पर टंगा हुआ नरम-नरम गुलाबी तौलिया उठा कर, अपने जिस्म के गिर्द लपेट दिया। चमकी यूं ही खड़ी रही। अन्ना बी ने अपनी बेटी की ओर जरा गुस्से से देखा, "होर तू पाशा लोगां के हमाम में काये कू पानी नहाने को आन तुरी?"

"ये इन्नो शहजादी पाशा ने बोले कि तू भी मेरे साथ पानी नहा।"

अन्ना बी ने डरते-डरते इधर-उधर देखा कि कोई देख न रहा हो। फिर जल्दी से उसे हमाम से बाहर खींच कर बोलीं, "जल्दी से जा, नौकरखाने में....नई तो सर्दी-वर्दी लग गई तो मरेगी। पेन मेरे कपड़े..." वह शरम से जरा सिमटी।

"अब ये चिक्कट गोंद कपड़े निक्को पेन। वह लाल पेटी में शहजादी पाशा परसों अपना कुरता-पायजामा दिए थे, वह जाकर पेन ले।"

वहीं खड़ी-खड़ी वह सात वर्ष की नन्हीं सी जान बड़ी गहरी सोच के साथ रुक-रुक कर बोली, "अम्मनी, जब मैं होर शहजादी पाशा एक बराबर के हैं तो उन्नों मेरे उतरन क्यों नई पहने?"

"ठहर जरा, मैं मम्मा को जाकर बोलतीऊं कि चमकी मेरे को ऐसा बोली....।"

लेकिन अन्ना बी ने डरा कर उसे गोद में उठा लिया। "आग्गे पाशा उन्ने तो छिनाल पागल होली गई है। ऐसे दीवानी को बातां काये को अपने मम्मा से बोलते आप? उसके संगात खेलना न बात करना। चुप उसके नाम पर जूती मार देओ आप।"

शहजादी पाशा को कपड़े पहना कर, कंघी-चोटी करके, खाना-वाना खिला कर, जब

सारे कामों से निश्चिंत होकर, अन्ना बी अपने कमरे में पहुंचीं तो देखा कि चमकी अभी तक नंगा झाड़ बनी खड़ी है। आव देखा न ताव, उन्होंने अपनी बेटी को धुनकना शुरू कर दिया।

"जिसका खाती, उसी से लड़ाइयां मोल लेती ! छिनाल घोड़ी ! अबी-कबी बड़े सरकार निकाल बाहर कर दिए तो किधर जाएंगे? इत्ते नखरे!"

अन्ना बी के हिसाब से तो यह बड़े भाग्य की बात थी कि वह शहजादी पाशा को दूध पिलाने के लिए रखी गई थी। उनके खाने-पीने का स्तर तो बेशक वही था, जो बेगमों का था कि भई वह नवाब साहिब की इकलौती बच्ची को दूध पिलाती थी। कपड़ा-लत्ता भी बेहिसाब था, कि दूध पिलाने वाली के लिए साफ-सुथरा रहना अनिवार्य था। और सब से ज्यादा मजे तो ये थे कि उनकी अपनी बच्ची को, शहजादी पाशा की बेहिसाब उतरन मिलती थी। कपड़े-लत्ते मिलने की बात तो तय थी ! हद यह कि अकसर चांदी के गहने और खिलौने तक भी उतरन में दिए जाते थे। इधर वह थी कि जब से जरा-जरा होश संभाल रही थी, बस यही जिद किए जाती थी कि मैं बी पाशा की उतरन क्यों पहनूं? कभी-कभार तो आईना देख कर बड़ी सूझ-बूझ के साथ कहती, "अम्मनी, मैं तो बी पाशा से भी अधिक सुंदर हूं ना ! फिर तू उन्हें मेरी उतरन पहना ना?"

अन्ना बी हर घड़ी टोकती थी, "बड़े लोग तो बड़े लोग ही ठहरे। अगर किसी ने सुन-गुन पा ली कि मुई अन्ना, ना असल की बेटी ऐसे-ऐसे बोल बोलती है, तो नाक-चोटी काट कर बाहर न कर देंगे?" वैसे भी दूध पिलाने का जमाना तो अरसा हुआ, बीत गया था। वह तो ड्योढ़ी की परंपरा कहिए, कि अन्ना लोगों की मरे बाद ही छुट्टी की जाती थी। लेकिन दोष भी क्षमा किए जाने योग्य हो, तो ही क्षमा मिलती है। ऐसा भी क्या? अन्ना बी ने चमकी के कान मरोड़ कर उसे समझाया, "आगे से कुछ बोली तो याद रख ! तेरे कू उमर भर बी पाशा की उतरन पहनना है। समझी कि नईं ! गधे की औल्याद !"

गधे की औलाद ने उस समय जुबान तो सी ली, लेकिन मन में लावा पकता ही रहा।

तेरह साल की हुई तो शहजादी पाशा की, पहली बार नमाजे कजा हुई। आठवें दिन गुलपाशी हुई तो ऐसा जरी वाला झिलमिलाता जोड़ा मम्मा ने सिलवाया कि आंख ठहरती नहीं थी। जगह-जगह सोने के घुंघरुओं की जोड़ियां टंकवाईं कि जब भी पाशा चलती तो 'छन-बन' पाजेबें सी बजतीं। ड्योढ़ी की प्रथा के अनुसार वह बेहद बढ़िया कीमती जोड़ा भी उतरन में दे दिया गया। अन्ना बी खुशी-खुशी वे सौगातें लेकर पहुंची, तो चमकी जो अपनी आयु से कहीं अधिक समझदार और स्वाभिमानी हो चुकी थी, दुख से बोली, "अम्मनी, मजबूरी नाते से लेना होर बात है, लेकिन आप ऐसी चीजां ले कर खुश मत हुआ करो।"

"अग्गे बेटा !" वह फुसफुसा कर बोली, "यह जोड़ा अगर बिकाने को भी बैठे, तो

दो सौ रुपये तो कहीं नईं गए। अपन लोगां नसीबे वाले हैं कि ऐसी ड्योढ़ी में पड़े।"

"अम्मनी," चमकी ने बड़ी हसरत से कहा, "मेरा जी बोलता कि मैं भी कभी बी पाशा को उतरन दूं?"

अन्ना बी ने सिर पीट लिया। "अग्गे, तू भी जवान हो गई है। जरा अक्ल पकड़। ऐसी-वैसी बातां कोई सुन लिया, तो मैं क्या करूंगी? मां, जरा मेरे बुड्ढे जूंड़े पर रहम कर।"

चमकी मां को रोता देख कर खामोश रह गई।

मौलवी साहब ने दोनों को साथ ही साथ कुरान शरीफ और उर्दू कायदा शुरू कराया था। बी पाशा ने कम और चमकी ने अधिक तेजी दिखाई। दोनों ने जब पहली बार कुरान का पाठ समाप्त किया था तो बड़ी पाशा ने उपकार के तौर पर, चमकी को भी एक हल्के कपड़े का नया जोड़ा सिलवा दिया था। चाहे बाद में उसे बी पाशा का भारी जोड़ा भी उतरन में मिल गया था, लेकिन उसे अपना वह जोड़ा जान से भी ज्यादा प्यारा था। इस जोड़े से उसे किसी प्रकार के अपमान का अनुभव नहीं होता था। हल्के जाफरानी रंग का जोड़ा...जो कितने ही सारे जगमगाते, चमचम करते जोड़ों से बढ़ कर था।

अब जब कि शहजादी पाशा जरूरत भर पढ़-लिख भी चुकी थीं, जवान भी हो चुकी थीं, उनका घर बसाने की चिंता की जा रही थी। ड्योढ़ी सुनारों, दरजियों, व्यापारियों का ठिकाना बन चुकी थी। चमकी यही सोचे जाती कि वह तो शादी के इतने बड़े हंगामे के दिन भी अपना वही जोड़ा पहनेगी जो किसी की उतरन नहीं था।

बड़ी पाशा जो बड़ी दयालु औरत थीं, हमेशा अपने नौकरों का अपनी औलाद ही की तरह ध्यान रखती थीं। इसलिए शहजादी पाशा के साथ वह चमकी के विवाह के लिए भी उतनी ही चिंतातुर थीं। आखिर नवाब साहिब से कह-सुन कर उन्होंने एक योग्य लड़का चमकी के लिए तलाश कर ही लिया। सोचा कि शहजादी पाशा की शादी के बाद इसी झोड़-झुमके में चमकी का भी निकाह पढ़ दिया जाए।

उस दिन जब शहजादी पाशा के निकाह को केवल एक दिन रह गया था और ड्योढ़ी मेहमानों से ठसाठस भरी पड़ी थी और लड़कियों का टिड्डी दल सारी ड्योढ़ी को सिर पर उठाए हुए था, अपनी सखियों के झुरमट में बैठी हुई शहजादी पाशा, पैरों में मेहंदी लगवाए चमकी से कहने लगी, "तू ससुराल जाएगी तो तेरे पैरों में मेहंदी लगाऊंगी।"

"ऐओ, खुदा न करे?" अन्ना बी ने प्यार से कहा, "इसके पांव आप के दुश्मनां छूएं। आप ऐसा बोले, सो बस है। बस इतनी दुआ करना पाशा कि आप के दूल्हा मियां जैसा शरीफ दूल्हा इसका निकल जाए।"

"मगर इसकी शादी कब हो रई जी....?" कोई चंचल लड़की पूछ बैठी।

शहजादी पाशा वही बचपन वाली अभिमान-भरी हंसी हंस कर बोली, "मेरी इत्ती सारी

उतरन निकलेगी, तो इसका दहेज तैयार समझो।"

उतरन...उतरन...उतरन...कई हजार सुईयों की बारीक-बारीक नोकें जैसे उसके दिल को बेंध गईं। वह आंसू पीते हुए अपने कमरे में चुपचाप पड़ गई। संध्या होते ही लड़कियों ने फिर ढोलक संभाली। एक से एक वाहियात गाना गाया जा रहा था। पिछली रात रत-जगा हुआ था। आज फिर होने वाला है। परली तरफ सहन में ढेरों चूल्हे जलाए बावर्ची लोग भांति-भांति के पकवान तैयार करने में व्यस्त थे। ड्योढ़ी पर रात ही से दिन का गुमान हो रहा था।

चमकी की रोती हुई सुंदरता संतरी जोड़े में और भी खिल उठी। यह जोड़ा वह जोड़ा है, जो उसे हीन-भावना के पाताल से उठा कर आकाश की ऊंचाइयों पर बिठा देता था। यह जोड़ा किसी की उतरन नहीं था। नये कपड़ों से सिला हुआ यह नया जोड़ा, जो उसे जीवन भर में बस एक ही बार नसीब हुआ था। वरना सारी उमर तो शहजादी पाशा की उतरन पहनते ही गुजरी थी। और चूंकि दहेज भी सारे का सारा उनकी उतरन का ही बना था, इसलिए शेष जीवन भी उसे उतरन इस्तेमाल करनी होगी। लेकिन बी पाशा, एक सैयदजादी और कहां तक पहुंच सकती है, यह तुम भी देख लेना। तुम एक से एक पुरानी चीज मुझे इस्तेमाल करने को दिए न ! अब तुम देखना...मलीदे का थाल उठाए वह दूल्हा वालों की कोठी में प्रविष्ट हुई। हर तरफ दीपमाला हो रही थी। यहां भी वही चहल-पहल थी, जो दुल्हन वालों के महल में थी। सुबह निकाह जो पढ़ा जाना था।

इतने बड़े हंगामे और इतनी बड़ी कोठी में, किसी ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। पूछती-पूछती वह सीधी दूल्हा मियां के कमरे में जा पहुंची। हल्दी-मेहंदी की रीतों-रस्मों से थके-थकाए दूल्हा मियां अपनी मसहरी पर लेटे हुए थे। परदा हिला, तो वह मुड़े और देखते के देखते रह गए।

घुटनों तक लंबा जाफरानी कुरता, कसी-कसी पिंडलियों पर मढ़ा हुआ तंग पायजामा, हल्की-हल्की कामदानी का कढ़ा हुआ जाफरानी दुपट्टा। रोई-रोई, भीगी-भीगी गुलाबी आंखें, छोटी आस्तीनों वाले कुरते में से झांकती कोमल-कोमल गदराई बांहें, बालों में मोतिये के गजरे पिरोए हुए, होठों पर एक कातिल सी मुस्कान ! यह सब नया नहीं था, लेकिन एक पुरुष जिसकी पिछली कई रातें किसी स्त्री की कल्पना में बीती हों, शादी से एक रात पहले बहुत खतरनाक हो जाता है, चाहे वह कैसा ही शरीफ हो।

रात, जो गुनाह का निमंत्रण होती है।

तनहाई, जो गुनाहों की हिम्मत बढ़ाती है। चमकी ने उन्हें यूं देखा कि वह जगह-जगह से टूट गए। चमकी जान-बूझ कर मुंह मोड़ कर खड़ी हो गई। वह तिलमिलाए से अपनी जगह से उठे और ठीक उसी के सामने खड़े हो गए। आंखों के कोनों से चमकी ने उन्हें

यूं देखा कि वह ढेर हो गए।

"तुम्हारा नाम?" उन्होंने थूक निगल कर कहा।

"चमकी !" और एक चमकीली हंसी ने उसके प्यारे-प्यारे चेहरे को चांद कर दिया।

"सचमुच तुम में जो चमक है, उसका तकाजा यही था कि तुम्हारा नाम चमकी होता।" उन्होंने डरते-डरते अपना हाथ उसके कंधों पर रख दिया। खालिस मरदाने लहजे में नहीं जो किसी लड़की को पटाने से पहले ख्वाहमखाह इधर-उधर की हांकते हैं, बल्कि कांपते हुए हाथ कंधे से हटा कर उसके हाथ को पकड़ते हुए बोले, "यह थाल में क्या है?"

चमकी ने जानबूझ कर उनकी हिम्मत बढ़ाई, "आप के वास्ते मलीदा लाई हूं। रत-जगा था ना, रात को।" और उसने बिना तलवार के उन्हें घायल कर दिया। "मुंह मीठा करने को।" वह मुस्कुराई।

"हम मलीदे-वलीदे से मुंह मीठा करने के कायल नहीं है। हम तो...हां...।" और उन्होंने होंठों के शहद से मुंह मीठा करने को होंठ बढ़ा दिए और चमकी उनकी बांहों में ढेर हो गई। उनकी पवित्रता लूटने...स्वयं लुटने...उन्हें लूटने के लिए।

विदा के दूसरे दिन ड्योढ़ी की प्रथा के अनुसार जब शहजादी पाशा अपनी उतरन, अपना सुहाग का जोड़ा अपनी अन्ना, अपनी खिलाई की बिटिया को देने गई, तो चमकी ने मुस्कुरा कर कहा, "पाशा, मैं जिंदगी भर आपकी उतरन इस्तेमाल करती आई, मगर अब आप भी...!" और पागलों की तरह हंसने लगी, "मेरी इस्तेमाल कर ली चीज अब जिंदगी भर आप भी...।" उसकी हंसी रुकती ही नहीं थी।

सब लोग यही समझे कि बचपन से साथ खेली सखी की जुदाई के गम ने, कुछ देर के लिए चमकी को पागल कर दिया है!

मि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित

उर्दू कहानियां समकालीन उर्दू साहित्य की चौबीस प्रतिनिधि कहानियों का अनूठा संकलन है। उर्दू कथा-साहित्य आज उपलब्धि के उस शिखर पर पहुंच चुका है, जहां एक ओर यह अपने पाठकों के बीच लोकप्रिय है तो दूसरी ओर विश्व साहित्य क्षितिज पर अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य से कदम मिला रहा है। ये कहानियां उर्दू कथा की इन उपलब्धियों की झांकी प्रस्तुत करती हैं। देश-प्रेम की नैतिकता की तारीफ, सांप्रदायिक दंगा और दंगाइयों के प्रति घृणाभाव, आम जनजीवन की विकृतियों पर प्रतिक्रिया, उर्दूभाषी जनपद की सभ्यता,संस्कृति और लोकाचार आदि का वास्तविक चेहरा इन कहानियों में साफ साफ उभरकर आया है। ये कहानियां वस्तु के स्तर पर रचनाकारों के यथार्थ दर्शन तथा उसकी जीवन-दृष्टि और शिल्प के स्तर पर उनके रचना कौशल का सबूत पेश करती हैं। मसलन ये कहानियां उर्दू के रचनाकारों द्वारा प्रस्तुत देश दशा का जीवंत चित्र हैं।

उर्दू के सम्मानित कथाकार रज़िया सज्जाद ज़हीर (1918-1979) ने यह संकलन तैयार किया। सैकड़ों कहानियों के अतिरिक्त इनके कई उपन्यास तथा अनुवाद कार्य भी प्रकाशित हैं। प्रगतिशील आंदोलन के काल में इन्होंने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद बहुभाषाविद् गुलवंत फारिग ने किया है। अनुवाद कला में इन्होंने अच्छी पहचान बनाई है। इनके कई अनुवाद कार्यों को पाठकों की काफी सराहना मिली है।

रु. 37.00

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया